RNI No.: MPHIN/2018/77137

ISSN 2582-483X

पाठशाला भीतर और बाहर

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष-3 अंक-9 सितम्बर 2021
तिमाही, भोपाल

सितम्बर, 2021 (वर्ष 3, अंक 9)

प्रकाशक

- **अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय**
  सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
  सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
  Web: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सम्पादकीय कार्यालय

- **सम्पादक**
  पाठशाला भीतर और बाहर
  अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
  प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव
  सोसायटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा,
  भोपाल, म.प्र. 462039 फोन-0755-4074060
  pathshala@apu.edu.in
  gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
  मो. 8226005057

डिज़ाइन एवं प्रिंट

- **गणेश ग्राफिक्स,**
  26-बी, देशबंधु परिसर,
  प्रेस काम्प्लेक्स,
  एम.पी.नगर, जोन-1
  भोपाल, म.प्र. 462011
  ganeshgroupbpl@gmail.com
  मो. 9981984888

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

पत्रिका में छपे लेखों में व्यक्त विचार और मत लेखकों के अपने हैं।
अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सम्पादकीय

एक लम्बे समय के बाद अब स्कूल खुलने लगे हैं और बच्चे स्कूल जाने लगे हैं। स्कूल का नियमित संचालन ज़रूरी है लेकिन साथ ही यह भी ज़रूरी है कि इस दौर में आवश्यक सभी सावधानियों को ध्यान में रखते हुए स्कूल व कक्षाओं को संचालित किया जाए। बच्चों से भी इन ज़रूरी सावधानियों के बारे में बात की जाए।

स्कूल बच्चों के लिए कितने महत्त्वपूर्ण हैं यह पिछले वर्षों के अनुभवों ने काफ़ी अच्छे-से जतला दिया है। न केवल बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए, बल्कि उनके सीखने-सिखाने के लिए भी स्कूल व कक्षा प्रक्रियाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इतने लम्बे समय तक स्कूल और कक्षा प्रक्रियाओं से दूर रहने के बाद अब बच्चे स्कूल लौटे तो हैं लेकिन बहुत कुछ भूलकर। इस सन्दर्भ में किए गए अध्ययन भी यही दर्शाते हैं। इसलिए स्कूलों के खुलने के साथ-साथ इसपर विचार ज़रूरी है कि उनके साथ सीखने-सिखाने की शुरुआत कैसे हो? ख़ासकर उन बच्चों के साथ जो सीखने के शुरुआती स्तर पर थे। कुछ बच्चे शायद अब स्कूल ही नहीं आना चाहें, हो सकता है कुछ बच्चों के साथ एकदम शुरुआती स्तर से काम करना पड़े, हो सकता है उन्हें कुछ ज़्यादा समय भी देना पड़े या फिर कुछ और भी। इन सभी में बच्चों के साथ बहुत ही धैर्य से काम करना पड़ सकता है। हमारे नियमित स्तम्भ, **कक्षा अनुभव** में शामिल बहुत-से लेख बच्चों के साथ किए जाने वाले काम की रूपरेखा बनाने में मददगार हो सकते हैं और उनमें कक्षा में किए जाने वाले कामों के बारे में कुछ ठोस सुझाव भी आपको मिल सकते हैं।

कक्षा अनुभव स्तम्भ में इस बार छह आलेख हैं। पहला आलेख *मोहल्ले में अपनी जगह : मोहल्ला एलएसी* है जिसका लेखन क्षमा यादव, खेमप्रकाश यादव और निदेश सोनी ने संयुक्त रूप से किया है। आलेख में उन्होंने बताया है कि स्कूलों में तालाबन्दी के दौरान मोहल्ला कक्षाएँ किस तरह समाज के ज़रूरतमन्द बच्चों की शिक्षा का एक ज़रिया बनी हैं। इन मोहल्ला कक्षाओं को कैसे संचालित किया गया, इस बारे में भी वे काफ़ी विस्तार से बताते हैं।

दूसरे आलेख की लेखिका हैं भारती पंडित और लेख है *कक्षा 1 और 2 में रचनात्मक लेखन की गतिविधियाँ।* भारती रेखांकित करती हैं कि अगर प्रारम्भिक कक्षाओं से ही बच्चों के साथ रचनात्मक लेखन की शुरुआत कर दी जाए तो आगे की कक्षाओं में पहुँचने तक इस कौशल में और पैनापन आता है। वे लेखन की उन गतिविधियों का भी ज़िक्र करती हैं जो बच्चों के साथ उन्होंने करके देखीं।

तीसरा आलेख, *बोलते चित्र : अधूरी बातों को पूरा करने का ज़रिया,* की लेखिका रुबीना ख़ान हैं। रुबीना ने वंचित तबक़े के विभिन्न समुदायों के बच्चों के बीच अभिव्यक्ति के एक सशक्त माध्यम के रूप में चित्रों का इस्तेमाल किए जाने की गतिविधियों पर अनुभवपरक बातें लिखी हैं।

चौथे क्रम में सुशांत पानी का आलेख *गणित कक्षा के कुछ अनुभव* है। सुशांत बताते हैं कि प्राथमिक स्तर पर गणित शिक्षण को लेकर कुछ रूढ़ मान्यताएँ हैं जिनपर विचार करने की ज़रूरत है। शुरुआती गणितीय संक्रियाओं को सन्दर्भयुक्त बनाने के साथ ही बच्चों द्वारा समाधान के विभिन्न प्रयासों का विश्लेषण करके समस्या या अवरोध को पहचानना बहुत ज़रूरी है।

महामारी के दौर में ऑनलाइन क्षमतासंवर्धन के अनुभव, इस स्तंभ का पाँचवाँ आलेख है। जिसकी लेखिका हैं अर्चना कुमारी। अर्चना ने लॉकडाउन के दौरान शिक्षकों के क्षमतासंवर्धन के लिए किए गए ऑनलाइन प्रयासों के बारे में अपने अनुभव रखे हैं। वे बताती हैं कि सहज अन्तःक्रिया की जगह ये प्रयास नहीं ले सकते लेकिन मौजूदा वास्तविकता के मद्देनज़र हम क्या बेहतर कर सकते हैं।

इसी स्तम्भ का छठा आलेख *मोहल्ला कक्षा और समुदाय : ये साझेदारी रंग लाएगी है,* इसके लेखक हैं अरविन्द जैन और फ़ैज़ मोहम्मद। एक शिक्षक द्वारा मोहल्ला कक्षाओं के संचालन के विचार को समुदाय ने कैसे मूर्त रूप देने में सहयोग किया, लेख इस बारे में बताता है।

शिक्षणशास्त्र स्तम्भ में पहला लेख *जेंडर संवेदनशील शिक्षकों का निर्माण,* मधु कुशवाहा का है। लेखिका छात्र-शिक्षकों के साथ इस विषय पर किए गए काम को विस्तार से साझा करती हैं। वे कहती हैं कि यद्यपि जेंडर समानता के प्रति संवेदनशीलता और समझ बनाने के लिए शिक्षा को एक बड़ा ज़रिया माना गया है लेकिन शिक्षक शिक्षा में इसे पर्याप्त जगह नहीं दी गई है, साथ ही इस विषय पर काम करने की जटिलताओं को भी वे रखती हैं।

दूसरा आलेख *लिखना : मौखिक से मौलिक की ओर,* अवनीश कुमार मिश्र का है। लेखक इस आलेख में लिखना सीखने के विभिन्न पहलुओं और तरीक़ों पर विस्तार से बात करते हैं। उनकी मान्यता है कि एक जटिल कौशल होने के नाते कक्षा में इसपर योजनाबद्ध ढंग से काम करने और विविध प्रयासों की ज़रूरत है।

तीसरा आलेख *प्राथमिक कक्षाओं में लिखना सीखना : कुछ अवलोकन,* कमलेश चंद्र जोशी का लिखा हुआ है। इसमें प्राथमिक कक्षाओं में लेखन गतिविधि के इर्दगिर्द की जाने वाली कुछ उन ज़रूरी प्रक्रियाओं का ज़िक्र किया गया है जिनपर आमतौर पर कक्षा में काम नहीं किया जाता। उन्होंने बच्चों के लेखन के कुछ नमूनों को लेकर उसपर व्यवहारिक बातचीत की है।

विमर्श स्तम्भ के अन्तर्गत पहला आलेख, *स्कूली शिक्षा में जनजातियों की भागीदारी : रूमानियत से परे कुछ विचारणीय मुद्दे,* अमित कोहली ने लिखा है। विभिन्न तथ्यों और रिपोर्टों की शोधपरक पड़ताल के आधार पर लेखक इस बात को गम्भीरता से उठाते हैं कि तमाम समावेशी प्रयासों के बावजूद जनजातीय समुदाय को शिक्षा के दायरे में लाने का लक्ष्य अभी भी अधूरा है।

इसी स्तम्भ का दूसरा आलेख *विचारों का स्वराज बरास्ते आलोचनात्मक चिन्तन : समाज विज्ञान शिक्षण में विवादास्पद मुद्दों की भूमिका,* ऋषभ कुमार मिश्र ने लिखा है। लेखक का विचार है कि विवादास्पद मुद्दे, सामाजिक अध्ययन शिक्षण के लिए एक प्रभावी विषयवस्तु हैं, लेकिन कक्षाओं में आमतौर पर इनसे बचा जाता है। इसका एक कारण निरपेक्ष रूप से इसपर संवाद स्थापित कर पाने में असमर्थ होना भी प्रतीत होता है। ऋषभ कहते हैं कि शिक्षकों की इस सन्दर्भ में तैयारी से शायद यह सम्भव हो पाए।

तीसरा आलेख *क्या गणित आपको अन्धविश्वास सिखाता है?* मुकेश मालवीय ने लिखा है। अपनी व्यंग्यात्मक शैली में मुकेश ने व्हाट्स-एप पर वायरल हुए एक मैसेज को आधार बनाकर उसकी गणितीय पड़ताल के बहाने ये बताने की कोशिश की है कि अतार्किकता और अवैज्ञानिकता किस तरह हमें चमत्कारों और अन्धविश्वास के जाल में जकड़ लेती है।

पुस्तक चर्चा स्तम्भ में इस बार फ़राह फ़ारुक़ी की पुस्तक *एक स्कूल मैनेजर की डायरी* की समीक्षा है और समीक्षक हैं सहीद मेव। स्कूल प्रबन्धन के विभिन्न पहलुओं और उनसे जुड़ी जटिलताओं को एक स्कूल मैनेजर की दृष्टि से लेखिका ने जितने जीवन्त तरीक़े से रखा है सहीद ने उसकी समीक्षा उतनी ही गहराई से की है।

इस अंक में **साक्षात्कार** स्तम्भ के अन्तर्गत नई *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* के विभिन्न मसलों पर अनुराग बेहार से टुलटुल बिस्वास की बातचीत दी गई है।

संवाद के अन्तर्गत इस बार पिछले अंक में प्रकाशित *बच्चों में पढ़ना-लिखना सीखने और बुनियादी गणितीय क्षमताओं के विविध आयाम* विषय पर हुई परिचर्चा का दूसरा भाग शामिल किया गया है। यह इस प्रश्न पर फोकस करना है कि भाषा और गणित सीखना क्यों महत्त्वपूर्ण हैं?

यह सोचा गया है कि पाठशाला के अगले कुछ अंकों का एक बड़ा हिस्सा हम किसी थीम पर केन्द्रित करें। आगामी अंक (अंक 11) का एक बड़ा हिस्सा गणित व उसकी शिक्षण प्रक्रिया पर केन्द्रित होगा। ख़ासतौर से कोविड-19 के बाद स्कूल में गणित सीखने-सिखाने का क्या सन्दर्भ रहेगा, उसमें क्या-क्या चुनौतियाँ आ सकती हैं? इन चुनौतियों के सन्दर्भ में क्या-क्या किया जा सकता है, आदि पर। इसके अलावा आगामी अंक में गणित शिक्षण से सम्बन्धित अन्य सामग्री भी शामिल की जा सकती है। ऐसी सामग्री जो पाठकों को गणित विषय पर सारगर्भित एवं कक्षा प्रक्रियाओं को समझने में मददगार हो। अपेक्षा है कि आप इस विषय पर सोचेंगे और लिखेंगे।

सम्पादक मण्डल

जेंडर संवेदनशील शिक्षकों का सृजन

मधु कुशवाहा

इस लेख में लेखिका उनके द्वारा पढ़ाए जा रहे जेंडर पाठ्यक्रम के अनुभवों को सामने रखते हुए रोज़मर्रा के जीवन में जेंडर पूर्वाग्रहों के मसलों पर ध्यान आकर्षित करती हैं। वे कुछ उदाहरणों को रखते हुए विद्यालयी दायरों के विभिन्न अवयवों में लैंगिक समरसता को पोषित करने के कुछ रास्ते भी सुझाती हैं, वे इन प्रयासों को पुख़्ता करने के लिए अध्यापक शिक्षा में व्यापक सुधार की बात भी करती हैं। सं.

सार संक्षेप

शिक्षा द्वारा जेंडर समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने में सभी का विश्वास है। यद्यपि शिक्षा में असीम सम्भावनाएँ हैं पर यह कोई जादुई छड़ी नहीं है। शिक्षा के द्वारा जेंडर समानता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते शिक्षा प्रक्रिया स्वयं जेंडर पूर्वाग्रहों से मुक्त हो। विद्यालय में जेंडर असमानता बहुधा छुपे हुए पाठ्यक्रम का हिस्सा होती है और बड़े पैमाने पर समाज में व्याप्त जेंडर पूर्वाग्रहों, जेंडर-आधारित श्रम विभाजनों को ही पुष्ट करती है अतः इसपर शिक्षकों, अभिभावकों, विद्यार्थियों व अन्य नीति निर्माताओं का ध्यान कम ही जाता है। शिक्षा द्वारा समाज में जेंडर समानता लाने का लक्ष्य हो या जेंडर पूर्वाग्रहों में परिवर्तन का, कोई भी लक्ष्य तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक अध्यापकों / अध्यापिकाओं में जेंडर संवेदनशीलता न हो। अतः मेरे दृष्टिकोण से सेवा-पूर्व अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम द्वारा भावी शिक्षकों में जेंडर की समझ विकसित करना सामाजिक परिवर्तन लाने का बहुत ही किफ़ायती और दूरगामी क़दम है।

शिक्षक प्रशिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण भाग अभ्यास शिक्षण है और इस आलेख में, मैं अपने उन अनुभवों के बारे में बात करूँगी जिनका मुख्य फ़ोकस अभ्यास शिक्षण के दौरान विद्यार्थियों का ध्यान उनके शिक्षण में मौजूद चेतन और अचेतन जेंडर पूर्वाग्रहों पर आकर्षित करना और उसपर कार्य करना रहा है। इसके साथ ही जेंडर पाठ्यक्रम के शिक्षण अनुभवों द्वारा शिक्षणशास्त्रीय दुविधाओं और चुनौतियों की तरफ़ भी ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करूँगी।

विगत तीन-चार दशकों से भारत में शिक्षा नीतियों का एक मुख्य उद्देश्य जेंडर समानता की प्राप्ति रहा है, परन्तु इसके क्रियान्वयन में हमें अपेक्षित सफलता नहीं मिली है। 'शिक्षा में जेंडर मुद्दे' *(राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005,* का अवलोकन है कि, "स्कूली शिक्षा समाजीकरण के दौरान सीखी जाने वाली जेंडर असमानता व सामाजिक नियंत्रण को और बढ़ाती है; वस्तुस्थिति यह है कि विद्यालय ख़ुद कुछ सीमाएँ (जेंडर-आधारित) बनाते हैं जो सम्भावनाओं को सीमित करने वाली होती हैं।"

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 का एक महत्त्वपूर्ण आयाम शिक्षा में जेंडर मुद्दों को सम्बोधित करना रहा है; परिणामस्वरूप, पाठ्यपुस्तकों में जेंडर पूर्वाग्रहों को समाप्त करने

का काम बहुत कुछ सफलतापूर्वक किया गया। नई पाठ्यपुस्तकें भाषा, चित्र, विषयवस्तु चयन में जेंडर संवेदी हैं और प्रस्तुतिकरण में जेंडर पूर्वाग्रहों से सचेत रूप से दूरी बनाती हैं।

किसी भी शैक्षिक सुधार के प्रयास की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हमने अपने शिक्षक / शिक्षिकाओं को किस सीमा तक इन सुधारों को अपनाने के लिए तैयार किया है और इन सुधारों को वास्तविक कक्षा में लागू करने हेतु ज़रूरी क्षमताओं से उन्हें किस सीमा तक लैस किया है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा जारी शिक्षक शिक्षा हेतु *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2009* का लक्ष्य व्यावसायिक रूप से दक्ष और मानवीय गुणों से युक्त शिक्षकों को तैयार करना है। यह पाठ्यचर्या जेंडर संवेदनशीलता की शिक्षा को सेवा-पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण में अनिवार्य रूप से शिक्षा के मूल आधार में शामिल करने की संस्तुति करती है और इसके पक्ष में तर्क देते हुए यह पाठ्यचर्या कहती है कि,

“शिक्षक शिक्षा के द्वारा जेंडर दृष्टिकोण का निर्माण करने हेतु एक ऐसे शिक्षणशास्त्रीय उपागम की आवश्यकता है जो शिक्षकों को न केवल जेंडर के सिद्धान्तों का व्यवस्थित अध्ययन कराए, बल्कि अनिवार्य रूप से उन्हें जेंडर भूमिकाओं के सम्बन्ध में समाज में अपनी स्थिति का विश्लेषण करने में मदद भी करे। छात्र अध्यापक / अध्यापिकाओं के लिए यह भी आवश्यक है कि वे ऐसे साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन करें जो प्रजातंत्र और शिक्षा के सम्बन्ध पर जेंडर दृष्टिकोण से विचार करता हो। शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम में ऐसे अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए जिनसे छात्र अध्यापक / अध्यापिकाएँ जेंडर सिद्धान्तों और वास्तविक जीवन / कक्षा-कक्ष में सम्बन्ध को देख पाएँ। साथ ही विद्यालयी पाठ्यक्रम को भी जेंडर लेंस से देख पाएँ।” *(एनसीएफ़टीई, 2009)*

जेंडर समानता व विद्यालय

यह कहा जाता है कि कोई भी व्यक्ति भविष्य में वैसा ही बनता है जिसकी उससे प्रत्याशा की जाती है। शिक्षक विद्यार्थियों से कैसी प्रत्याशा करते हैं इसका विद्यार्थियों के भविष्य की आकांक्षाओं पर निर्णायक प्रभाव पड़ता है। सामान्य तौर से अध्यापक / अध्यापिकाएँ यह मानते हैं कि विद्यालयी शिक्षा का मुख्य मक़सद लड़कों को सार्वजनिक जीवन के लिए तैयार करना है; लड़कों को नौकरी करनी है और परिवार का प्रदाता बनना है, वहीं लड़कियों के लिए मुख्य भूमिका घर के अन्दर माँ और पत्नी की है। वर्तमान सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य में लड़कियाँ भी शिक्षा प्राप्त करके नौकरी कर रही हैं, इसके बावजूद भी लड़कियों हेतु उपरोक्त लक्ष्य कम महत्त्वपूर्ण या कम बाध्यकारी माने जाते हैं। शिक्षक अपने विद्यार्थियों से जो प्रत्याशा करते हैं उसमें जेंडर एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। शिक्षकों की विद्यार्थियों से जेंडर्ड प्रत्याशा उनके कक्षा-कक्ष व्यवहारों, शिक्षण रणनीतियों को प्रभावित करती है। शिक्षकों की जेंडर्ड प्रत्याशा पुरुष विद्यार्थियों को ज़्यादा चुनौतीपूर्ण
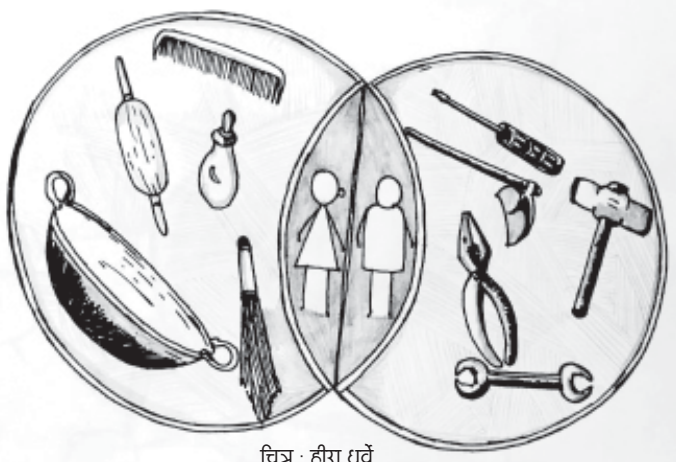
चित्र : हीरा धुर्वे

कार्यों के लिए तैयार करती है, वहीं लड़कियों को ऐसे कार्यों हेतु तुलनात्मक रूप से कम अवसर उपलब्ध होते हैं। यह प्रत्याशा लड़कियों से परम्परागत, रूढ़ भूमिकाओं को निभाने की अपेक्षा में परिलक्षित हो सकती है या शिक्षकों के अवचेतन मन में व्याप्त पूर्वाग्रह उनकी शिक्षण युक्तियों, चयनित उदाहरणों से दिखते हैं।

इसके अतिरिक्त विद्यालय में रोज़मर्रा के जीवन में लैंगिक पूर्वाग्रह (everyday sexism) या सूक्ष्म या छुपे हुए पूर्वाग्रह (micro aggression) एक बड़ी समस्या हैं (बेट्स, 2014)। इसके अन्तर्गत रोज़मर्रा होने वाले शाब्दिक या व्यवहारिक अपमान आते हैं। इरादतन या ग़ैर-इरादतन किए जाने वाले ये व्यवहार अधिकतर देखने में बेहद मामूली लगते हैं, परन्तु हाशियाकृत समूहों, प्रजातीय या जातीय अल्पसंख्यक समूहों, महिलाओं के ख़िलाफ़ अप्रत्यक्ष / प्रत्यक्ष रूप से नकारात्मक अभिवृत्ति को दिखाते हैं एवं इन समूहों के सदस्यों की नकारात्मक रूढ़ छवियों को बढ़ाते हैं और कार्यस्थल, स्कूल, या अन्य किसी स्थान पर इन समूहों के सदस्यों को असहज और अपमानित करते हैं।

प्रत्यक्ष अपमान और शोषण की तुलना में इन सूक्ष्म या छुपे हुए पूर्वाग्रहों से निपटना ज़्यादा चुनौतीपूर्ण होता है क्योंकि अधिकतर सूक्ष्म या छुपे हुए पूर्वाग्रह मज़ाक़, प्रशंसा या मासूम-सी दिखने वाली टिप्पणी के रूप में किए जाते हैं, पर इनमें उस समूह के लिए एक घृणा, अपमान की भावना छिपी हुई रहती है। जेंडर के सम्बन्ध में अगर बात करें तो हम पाते हैं कि विद्यालय में लैंगिक भेदभाव प्रदर्शित करने वाली (sexist) टिप्पणियाँ अधिकतर मज़ाक़ या मासूम कथन के रूप में अध्यापकों / अध्यापिकाओं द्वारा भी की जाती हैं। यद्यपि ये उनके अवचेतन मन के जेंडर पूर्वाग्रहों का प्रमाण हैं, पर बहुधा अध्यापक इस बारे में गम्भीरतापूर्वक नहीं सोचते हैं। इसीलिए ये सूक्ष्म या छुपे हुए जेंडर पूर्वाग्रह साल-दर-साल बेरोकटोक जारी रहते हैं। जेंडर समानता हेतु यह आवश्यक है कि विद्यालयी संस्कृति से सूक्ष्म जेंडर पूर्वाग्रहों को हटाया जाए, क्योंकि विद्यालय जब इस क़िस्म के व्यवहार को दुहराता है तो न केवल इन जेंडर पूर्वाग्रहों, रूढ़ धारणाओं का सामान्यीकरण करता है, वरन् पूर्वाग्रहों को ख़त्म करके सामाजिक परिवर्तन लाने की एक महत्त्वपूर्ण एजेंसी के रूप में अपनी अर्थवत्ता भी खो देता है।

जेंडर संवेदनशील शिक्षक प्रशिक्षण के अनुभव

विद्यालय में जेंडर असमानता बड़े पैमाने पर समाज में व्याप्त जेंडर पूर्वाग्रहों, जेंडर-आधारित श्रम विभाजनों को ही पुष्ट करती है, अतः इसपर शिक्षकों, अभिभावकों, विद्यार्थियों व अन्य नीति निर्माताओं का ध्यान कम ही जाता है। अतः इन मुद्दों को सम्बोधित करने के लिए मैंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत 'जेंडर, शिक्षा और समाज' पाठ्यक्रम को सन् 2006 से एक वैकल्पिक विषय के रूप में प्रस्तावित किया और तब से लगातार इस विषय को पढ़ा रही हूँ। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ने जेंडर सम्बन्धी पाठ्यक्रम को सन् 2014 में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम का एक अनिवार्य अंग बनाने की अनुशंसा की।

इस लेख में, मैं जेंडर पाठ्यक्रम शिक्षण के अपने एक अनुभव के साथ मुख्यतः उन अनुभवों के बारे में बात करूँगी जिनका मुख्य फ़ोकस अभ्यास शिक्षण के दौरान विद्यार्थियों का ध्यान उनके शिक्षण में चेतन और अचेतन जेंडर पूर्वाग्रहों पर आकर्षित करना और उसपर कार्य करना रहा है। मैं इस लेख में कुछ उदाहरणों के द्वारा अपनी बात रखने का प्रयास करूँगी।

उदाहरण 1

बीएड के शैक्षणिक सत्र 2015-16 के अभ्यास शिक्षण के तहत, वाराणसी के लड़कों के एक स्कूल 'अ' में एक छात्र अध्यापक कक्षा 6 को हिन्दी पढ़ा रहा था। मैं अभ्यास शिक्षण के अवलोकन हेतु कक्षा में पहुँची और सुपरवाइजर

हेतु नियत स्थान पर कक्षा में पीछे बैठकर विद्यार्थी की बनाई हुई पाठ योजना देखने लगी। विद्यार्थी काफ़ी प्रभावपूर्ण आवाज़ में धाराप्रवाह व्याख्या कर रहा था। व्याख्या मुख्य रूप से सीता के एक आदर्श भारतीय नारी के गुणों, यथा— कोमलता, सुकुमारता, और उनके त्याग व पतिव्रता, पर केन्द्रित थी। इसके अतिरिक्त, राम के पौरुषीय गुणों के बखान पर उक्त छात्र अध्यापक ने कुछ समय लिया और फिर उसने कक्षा में एक प्रश्न पूछा, 'एक पतिव्रता स्त्री में क्या-क्या गुण होने चाहिए?'
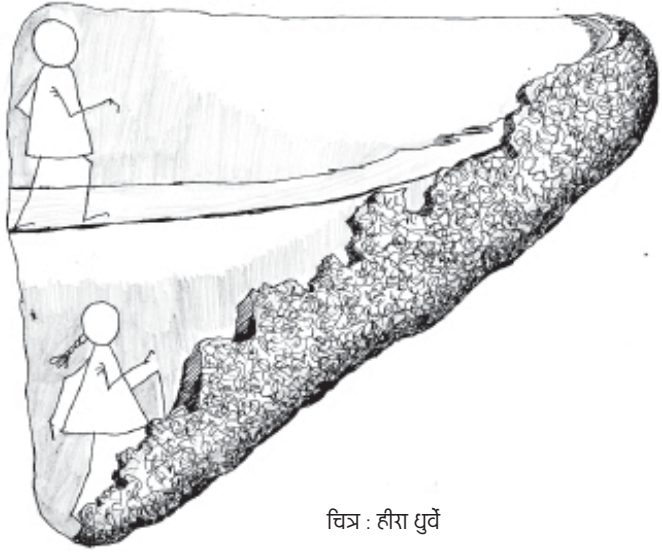
चित्र : हीरा धुर्वे

मैं थोड़ा आश्चर्यचकित हुई कि कक्षा 6 की हिन्दी की पाठ्यपुस्तक में इस प्रकार की विषयवस्तु है, क्योंकि *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* के बाद की एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें अपने ओरिएंटेशन में काफ़ी भिन्न हैं। अतः मैंने पास में बैठे एक विद्यार्थी से हिन्दी की पाठ्यपुस्तक माँगी और पाठ को देखा; पाठ का नाम 'वन के मार्ग में' तुलसीदास द्वारा रचित 'सवैया' था। पाठ में आठ पंक्तियाँ थीं :

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दए मग में दग द्वै।

झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥

फिरि बूझति हैं, "चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौं कित ह्वै?"

तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

"जल को गए लक्खनु, हैं लरिका परिखौ, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।

पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े॥"

तुलसी रघुबीर प्रियाश्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।

जानकीं नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥

पाठ में शामिल सवैया और अन्त में दिए गए प्रश्न-अभ्यास, भाषा की बात, अभ्यास कार्य-अनुमान और कल्पना में दिए गए किसी भी प्रश्न व किसी भी कार्यकलाप से इस बात का संकेत भी नहीं मिलता था कि पाठ का उद्देश्य सीता की एक पतिव्रता नारी के रूप में व्याख्या करना है। मुख्य रूप से पाठ के अन्त में निम्नलिखित प्रश्न दिए गए हैं :

"गरमी में चलने पर सीता की क्या दशा हुई?

राम ने थकी हुई सीता की किस प्रकार सहायता की?

पाठ के आधार पर वन के मार्ग का वर्णन अपने शब्दों में करो।"

अभ्यास कार्य 'अनुमान और कल्पना' विद्यार्थियों को कल्पना करने को कहता है कि, "गरमी के दिनों में कच्ची सड़क की तपती धूप में नंगे पाँव चलने पर पाँव जलते हैं। ऐसी स्थिति

में पेड़ की छाया में खड़ा होने और पाँव धो लेने पर बड़ी राहत मिलती है। ठीक वैसे ही जैसे प्यास लगने पर पानी मिल जाए और भूख लगने पर भोजन। तुम्हें भी किसी वस्तु की आवश्यकता हुई होगी और वह कुछ समय बाद पूरी हो गई होगी। तुम सोचकर लिखो कि आवश्यकता पूरी होने के पहले तक तुम्हारे मन की दशा कैसी थी?''

अतः यह सृजनात्मक लेखन कक्षा 6 के विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति, उनके गरमी के अनुभव या अन्य अनुभवों को अपने शब्दों में व्यक्त करने के लिए है और उसमें कहीं भी जेंडर पूर्वाग्रह नहीं दिखता है। सभी बच्चों ने, चाहे वो लड़का हो या लड़की, इन चीज़ों का अनुभव किया है और पाठ में दिया गया अभ्यास कार्य जेंडर समावेशी है।

एक बार यह निश्चित कर लेने के बाद कि मेरा छात्र अध्यापक अपने शिक्षण में अनजाने में ही पाठ के दायरे से न केवल बाहर है, बल्कि उसकी व्याख्या अनावश्यक रूप से जेंडर पूर्वाग्रहों को पोषित कर रही है। और वह इसके बिना भी पाठ को कक्षा के स्तर अनुसार रोचक ढंग से पढ़ा सकता है क्योंकि उसकी भाषा प्रभावी और ओजपूर्ण है और यह एक भाषा शिक्षक के लिए महत्त्वपूर्ण गुण है। मैंने ये टिप्पणियाँ उसकी पाठ योजना में लिखीं और साथ ही ये भी लिखा कि यदि उसका कोई प्रश्न / सन्देह आदि है तो वह मुझसे व्यक्तिगत रूप से कक्षा के बाद मिल सकता है। और मैं उम्मीद करने लगी कि छात्र अध्यापक मुझसे मिलने आएगा और सोचने लगी कि उसके क्या प्रश्न हो सकते हैं।

उम्मीद के मुताबिक़ छात्र अध्यापक आया और वह उसके पाठ पर मेरे द्वारा की गई टिप्पणियों से काफ़ी खिन्न लग रहा था। उसके अनुसार, अगर वह सीता को एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में पढ़ा रहा है तो इसमें क्या समस्या है? क्या सीता एक आदर्श भारतीय नारी नहीं हैं? आदि। उसके प्रश्नों से स्पष्ट था कि वह इसे समस्या मान ही नहीं रहा था। सो मैंने तय किया कि विस्तार से बात करने की आवश्यकता है; हमने निम्न बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की और अच्छी बात यह रही कि उस विद्यालय में अभ्यास शिक्षण कर रहे अन्य पाँच-छह छात्र अध्यापक भी इस चर्चा में शामिल हो गए :

- तुलसीदास ने यह साहित्य कब लिखा?
- क्या समय के साथ सामाजिक मूल्य और अपेक्षाएँ बदलती हैं?
- क्या साहित्य की व्याख्या भी बदले समय की अपेक्षाओं के अनुसार बदलनी चाहिए?
- क्या आपके पिता या दादा के लिए जो पुरुषोचित व्यवहार था आज भी वही है, या उसमें परिवर्तन आया है? क्या आप उन सारे पुराने मूल्यों / व्यवहारों का पालन करते हैं या करना ठीक समझते हैं?
- स्त्रियों से समाज की अपेक्षाओं में क्या कोई परिवर्तन आया है? अगर हाँ, तो क्या-क्या और क्या कुछ स्त्रियोचित व्यवहार अभी भी रूढ़ हैं? क्या इनमें कुछ परिवर्तन की ज़रूरत है?
- क्यों पाठ्यपुस्तक निर्माण / लेखन समिति ने इन्हीं पंक्तियों को चुना और अन्य महत्त्वपूर्ण प्रसंगों जैसे– सीता की अग्नि परीक्षा, राम द्वारा सीता का त्याग या सीता का अपहरण को छोड़ दिया?
- क्यों पाठ्यपुस्तक निर्माण / लेखन समिति ने इस पद्य को एक नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का निर्णय किया?
- पाठ के प्रश्न और अभ्यास कार्य में क्यों इस बिन्दु (सीता के आत्मत्याग, पतिव्रता गुणों) पर कोई सवाल या क्रियाकलाप नहीं दिया गया है?
- क्यों अभ्यास कार्य बच्चों को उनके अपने गरमी के मौसम में बाहर जाने के अनुभवों को राम और सीता को गरमी में वन जाते

समय क्या अनुभव हुआ होगा, उसके साथ जोड़कर देखने को कह रहा है?

यह एक लम्बी अनौपचारिक परिचर्चा थी जिसमें छात्र अध्यापकों ने खुलकर भाग लिया और अपने सवाल व सन्देहों को स्पष्ट रूप से रखा और मैंने यथासम्भव उनके सभी सवालों के जवाब दिए। साथ ही उन्हें 'शिक्षा में जेंडर के मुद्दे' *(राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* पढ़ने के लिए कहा और शिक्षा में जेंडर के मुद्दे पर अन्य सामग्री, प्रकाशित पेपर और अन्य आँकड़ों को भी देखने का सुझाव दिया।

उदाहरण 2

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर एक छात्र अध्यापिका कक्षा 7 में अँग्रेज़ी व्याकरण के अन्तर्गत संयोजक (conjunction) का प्रयोग पढ़ा रही थी। उसने बोर्ड पर निम्न वाक्य लिखा :

"Meera is a beautiful but intelligent girl".

मैंने विद्यार्थी की पाठ योजना पुस्तिका में शिक्षण सम्बन्धी अन्य टिप्पणी के साथ निम्न टिप्पणियाँ लिखीं, 'क्या आपको नहीं लगता कि आपके द्वारा लिया गया यह उदाहरण लैंगिक पूर्वाग्रह को पोषित करने वाला है? क्या यह इस धारणा को पोषित नहीं करता कि सुन्दर स्त्रियाँ बुद्धिमान नहीं हो सकतीं या स्त्रियों में सुन्दरता और बुद्धिमत्ता के दोनों गुण एक साथ पाया जाना दुर्लभ या असामान्य है? आपने इस उदाहरण में पुरुषवाचक संज्ञा का प्रयोग क्यों नहीं किया, यथा– Ramesh is a handsome but intelligent boy. क्या स्त्रीवाचक संज्ञा का चुनाव अचेतन रूप से अनायास हो गया आप कक्षा के बाद मिलें।' आशानुरूप विद्यार्थी आई और हमने एक लम्बी चर्चा की जिसमें अन्य विद्यार्थियों ने भी भाग लिया और उपरोक्त विशिष्ट उदाहरण के अतिरिक्त निम्न बिन्दुओं पर बातचीत हुई :

- भाषा में लैंगिक विभेद और पुरुष-केन्द्रित भाषा (androcentric language)
- भाषा किस प्रकार से समाज में व्याप्त जेंडर सत्ता सम्बन्ध को अभिव्यक्त करती है। (रोज़मर्रा के जीवन से विभिन्न भाषिक उदाहरणों (गालियों, अपशब्दों के विश्लेषण) से चर्चा को भाषा व सत्ता सम्बन्ध पर केन्द्रित करने में मदद मिली)
- और किस प्रकार से एक शिक्षक के रूप में हमारी ज़्यादा ज़िम्मेदारी है कि हम जेंडर समावेशी भाषा का इस्तेमाल करें और यह सुनिश्चित करें कि वो लैंगिक पूर्वाग्रहों से मुक्त हो।
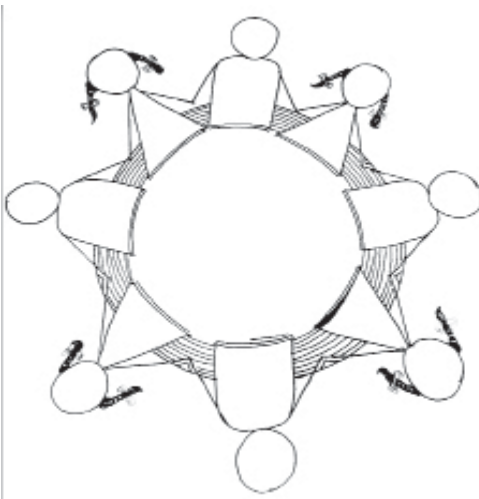
चित्र : हीरा धुर्वे

बातचीत बहुत ही सार्थक रही क्योंकि छात्र अध्यापकों ने अपनी मातृभाषा से इस प्रकार के लैंगिक पूर्वाग्रहयुक्त शब्दों, मुहावरों के अन्य उदाहरण भी दिए। साथ ही यह भी निकलकर आया कि उन्होंने पहले कभी भी भाषा और इसके प्रयोग को जेंडर लेंस से नहीं देखा था और सबने ये कहा कि अब आगे से भाषा के प्रयोग में वे विशेष सावधानी बरतेंगे।

उदाहरण 3

ऐसे ही एक अन्य सत्र में लगभग 20 बीएड विद्यार्थी मेरे साथ एक सह-शिक्षा वाले विद्यालय में अपना अभ्यास शिक्षण कार्य कर रहे थे। उनके उन्मुखीकरण सत्रों में मैंने जेंडर संवेदनशील व समावेशी भाषा के बारे में चर्चा की और यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि चूँकि शिक्षण मुख्यतः भाषिक माध्यम से होता है अतः यह बहुत ज़रूरी है कि एक शिक्षिका / शिक्षक की भाषा समावेशी हो क्योंकि इसका विद्यार्थियों के आत्म-प्रत्यय (self-concept) पर काफ़ी प्रभाव पड़ता है। यह विशेष रूप से रेखांकित किया कि इस विद्यालय में आपकी कक्षा में लड़के और लड़कियाँ दोनों ही विद्यार्थी के रूप में हैं, इसीलिए यह ज़रूरी है कि आपके सम्बोधन और शिक्षण की भाषा समावेशी हो। साथ ही उनसे यह भी कहा कि चूँकि पुरुष-केन्द्रित भाषा (पुरुषवाचक सर्वनाम व संज्ञा) का प्रयोग वे पहले से करते आए हैं, अतः इसके लिए उन्हें सचेत प्रयास करना होगा। साथ ही इस दिशा में अपनी तरफ़ से उन्हें हर सम्भव सहयोग का विश्वास दिलाया। विद्यार्थियों ने सहमति जताई और आने वाले दिनों में मैंने देखा कि एक पुरुष विद्यार्थी को छोड़कर लगभग सभी विद्यार्थी पाठ योजना लिखते समय और कक्षा शिक्षण के दौरान जेंडर समावेशी भाषा का प्रयोग करने का प्रयास कर रहे हैं, और इस सन्दर्भ में पाठ योजना में मेरे द्वारा अंकित टिप्पणियों को सकारात्मक ढंग से ले रहे हैं। परन्तु वह पुरुष विद्यार्थी लगातार पुरुषवाचक संज्ञा / सर्वनाम का ही प्रयोग कर रहा था और जब मैं उसे टोकती या पाठ योजना में इस बारे में टिप्पणी लिखती तो वह प्रत्यक्ष रूप से ज़्यादा कुछ न कहकर केवल विनम्रता से एक ही जवाब देता कि, 'इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है, इसमें (पुरुषवाचक सम्बोधन में) छात्राएँ भी शामिल हैं'। मैंने काफ़ी अलग-अलग तरीक़े और उदाहरणों से समझाने की कोशिश की, पर अपेक्षित सफलता नहीं मिली। अतः एक दिन उसकी कक्षा के पर्यवेक्षण के बाद मैंने उसकी पाठ योजना में निम्नलिखित टिप्पणी सायास लिखी :

'आप अपनी कक्षा में केवल कुछ तेज़ बच्चों पर ही ज़्यादा ध्यान देती हैं, एक शिक्षिका के रूप में आपका यह दायित्व है कि आप धीमी गति से सीखने वाले अन्य विद्यार्थियों पर भी समान रूप से ध्यान दें।'

सुखद आश्चर्य यह रहा कि वह विद्यार्थी आया और उसने माना कि जब यह टिप्पणी उसने अपने लिए पढ़ी तो उसे बहुत अजीब-सा लगा और वह यह नहीं मान पाया कि इस स्त्रीवाचक क्रियापद और संज्ञापद में वह भी शामिल है, और उसने कहा कि जेंडर समावेशी भाषा के प्रयोग के मेरे आग्रह को वह अब समझ पा रहा है।

उदाहरण 4

यह अनुभव शिक्षा संकाय में जेंडर, विद्यालय और समाज पाठ्यक्रम को पढ़ाने के दौरान का है। एक शिक्षक प्रशिक्षिका के रूप में इस अनुभव ने मुझे मेरे शिक्षणशास्त्रीय उपागम के बारे में पुनः सोचने एवं उसको कक्षा में विद्यार्थियों के सम्मुख न्यायोचित ठहराने के लिए विवश किया।

वाक़या यह है कि नारीवाद के प्रकार, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और मानव समाज हेतु इसके बहुमूल्य योगदान पढ़ाने के बाद की कक्षा परिचर्चा के दौरान एक पुरुष विद्यार्थी (काफ़ी संवेदनशील, अध्ययनशील) ने कहा, 'स्त्रियों पर अतीत में किए गए अन्याय (पुरुषों द्वारा) की विस्तृत चर्चा कुछ पुरुष विद्यार्थियों को असहज कर देती है। मैम, अगर आप पढ़ाने के दौरान

इसपर कम विस्तार से (tone down) बात करें तो ज़्यादा पुरुष विद्यार्थी इस वैकल्पिक पेपर को पढ़ेंगे और नारीवादी सन्देश उन तक पहुँच सकेगा।' मैंने तुरन्त इस मुद्दे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी और कहा कि अगली कक्षा में मैं इस मुद्दे पर अपनी बात रखूँगी और साथ ही अन्य विद्यार्थी भी अपने विचार रख सकते हैं। अगली कक्षा में मैंने उस विद्यार्थी के इरादे (intent) की प्रशंसा की और निम्न बिन्दुओं पर अपनी बात रखी :

- नारीवादी चेतना के विकास में इन सामान्य अनुभवों को साझा करने का महत्त्व।
- साथ ही इस बात पर भी बल दिया कि यह असहजता इस बात की द्योतक है कि आप वर्तमान स्थिति को बदलना चाहते हैं। जेंडर सत्ता सम्बन्धों में असन्तुलन की वजह से स्त्रियों व अन्य हाशियाकृत समूहों के ख़िलाफ़ हुए अन्याय की ज़िम्मेदारी आपकी व्यक्तिगत नहीं है, पर सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया में आपका व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों रूप से योगदान होगा। अन्याय या शोषण की व्यवस्थाएँ मानव ने बनाई हैं और इनमें बदलाव भी हम ही करेंगे।
- महिला विद्यार्थियों ने कहा कि अन्याय / शोषण की इन वैश्विक और ऐतिहासिक जानकारियों से नारीवादी विचारधारा के विकास के सन्दर्भ को समझने में उन्हें मदद मिली है और विशेष रूप से उनकी चेतना पितृसत्तात्मक व्यवस्था व विचारधारा के ख़िलाफ़ है न कि किसी व्यक्तिगत पुरुष के।

कुल मिलाकर यह बहुत ही गहन विचार विमर्श था और सन्तोषप्रद बात यह थी कि मेरे सभी विद्यार्थियों ने बेझिझक अपनी बात और सरोकारों को साझा किया और अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि तथ्यात्मक परिशुद्धता महत्त्वपूर्ण है और इसको परिपक्वता से स्वीकार करने में हमें कोई गुरेज नहीं होना चाहिए।

उदाहरण 5

यह अनुभव भी शिक्षा संकाय में जेंडर, विद्यालय और समाज पाठ्यक्रम के दौरान 'जेंडर और जाति' के मध्य सम्बन्ध पढ़ाने के दौरान का है।

चूँकि हम जानते हैं कि जेंडर, जाति और वर्ग जैसे पहचान के अन्य स्रोतों से आवश्यक रूप से सम्बन्धित है, और कई बार हम देखते हैं कि सामाजिक अन्तर्क्रिया में व्यक्ति अपनी जातीय / वर्गीय पहचान को अपनी जेंडर पहचान से ऊपर रखते हैं। उदाहरण के लिए, कामगार वर्ग की महिला / पुरुष के लिए उच्च मध्य वर्गीय महिला / पुरुष एक सम्भावित उत्पीड़क है। 'स्त्री', 'पुरुष' और यहाँ तक कि 'अन्य जेंडर' भी सजातीय श्रेणियाँ नहीं हैं और इन जेंडर पहचानों के साथ-साथ व्यक्ति की जातीय और वर्गीय स्थिति भी उसे प्राप्त विशेषाधिकारों अथवा वंचनाओं का स्रोत होती है, अर्थात एक उच्च जातीय स्त्री की तुलना में एक दलित / बहुजन स्त्री ज़्यादा उत्पीड़ित है।

शुरुआती कक्षाओं में जब मैं उपरोक्त सम्प्रत्ययों और जेंडर उत्पीड़न व अन्य क़िस्म के उत्पीड़न की संरचनाओं, जैसे– नस्ल, वर्ग, और विशेषकर जाति के सम्बन्ध को कक्षा में स्पष्ट करती हूँ तो उस समय पर मैंने देखा है कि विद्यार्थियों में एक क़िस्म की असहजता / तनाव-सा उत्पन्न होता है। जहाँ कक्षा की सभी महिला विद्यार्थी आरम्भ में जेंडर उत्पीड़न की संरचनाओं और अनुभवों से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं, पर जब कक्षा परिचर्चा जेंडर और जातिगत उत्पीड़न में सम्बन्ध पर आती है तो उच्च जातीय महिला विद्यार्थी थोड़ी असहज होती हैं लेकिन बहुधा ज़्यादा मुखरता से उसे कक्षा में व्यक्त नहीं करती हैं। वहीं दलित बहुजन पुरुष विद्यार्थी आमतौर पर जातीय उत्पीड़न के अनुभवों से अपना तादात्म्य तो बहुत जल्दी स्थापित कर लेते हैं, पर कई बार जेंडर उत्पीड़न और दलित पितृसत्ता के अनुभवों से इंकार करते हैं। पर सबसे मुखर विरोध कुछ

उच्च जातीय / वर्गीय पुरुष विद्यार्थियों की तरफ़ से आता है, जो जातीय और जेंडर दोनों क़िस्म के उत्पीड़न को अतीत में हुई घटना मानते हैं और भारत के एक 'महिमामण्डित' अतीत के राष्ट्रवादी संस्करण से कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

ऐसी स्थिति लगभग हर वर्ष आती है, जेंडर और जातीय / वर्गीय उत्पीड़न के सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए मैं तथ्यों, आँकड़ों की मदद लेती हूँ और साथ ही विद्यार्थियों को वैकल्पिक साहित्य पढ़ने के लिए देती हूँ। मेरी एक कारगर रणनीति विद्यार्थियों को आपसी तर्क-वितर्क / संवाद के अवसर और सहयोग प्रदान करना है; यथा– दलित / बहुजन महिला विद्यार्थी पुरुष सहपाठियों के तर्क के जवाब में दलित पितृसत्ता के अपने अनुभवों को कक्षा में बताती है साथ ही उनके जातीय उत्पीड़न के अनुभव पूरी कक्षा के लिए एक तरह से आईने का काम करते हैं। उच्च जातीय महिला विद्यार्थी ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक शोषण के अपने अनुभवों को साझा करके अपने उच्च जातीय पुरुष सहपाठियों के तर्क का जवाब देती हैं। बहुधा, ये सत्र तनावयुक्त होते हैं जहाँ काफ़ी ज़्यादा आवेश, ऊर्जा, तर्क-वितर्क और संवाद होता है। ऐसे सत्रों का संचालन चुनौतीपूर्ण होता है, पर विद्यार्थियों की समझ में इज़ाफ़ा करता है। कुछेक विद्यार्थी इन तर्कों से आवश्यक रूप से सहमत नहीं होते और अन्त में ये सहमति बनती है कि वे अपने दृष्टिकोण के पक्ष में तथ्य, प्रमाण और शोधपरक, विश्वसनीय लेख जब चाहें कक्षा में प्रस्तुत कर सकते हैं।

मैं लगातार अपने विद्यार्थियों (प्रशिक्षु अध्यापक / अध्यापिकाओं) को, कक्षा के अन्दर और बाहर, इस क़िस्म के संवाद की प्रक्रिया में शामिल करती हूँ। मेरे संवाद / शिक्षण की रणनीति निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रमुखता से आधारित होती है :

प्रजातांत्रिक शिक्षण : बहुत सारे अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि कक्षा का प्रजातांत्रिक प्रबन्धन विद्यार्थियों के अधिगम अनुभव में गुणात्मक परिवर्तन ले आता है, विशेषकर जब आपके विद्यार्थी युवा हों तो उपदेशात्मक शिक्षण के बजाय प्रजातांत्रिक माहौल में वार्तालाप एक प्रभावी शिक्षण रणनीति है। अपने अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि शुरुआती प्रतिरोध, तर्क के बाद अगर बातचीत ग़ैर-धमकी वाले (non-threatening) वार्तालाप के माहौल में हो तो अधिकतर युवा विद्यार्थी अपनी जेंडर सम्बन्धी अभिवृत्ति पर दुबारा विचार करते हैं और परिवर्तन के प्रति खुली सोच रखते हैं। मेरे अधिकतर विद्यार्थी ऐसी लम्बी चर्चा के बाद
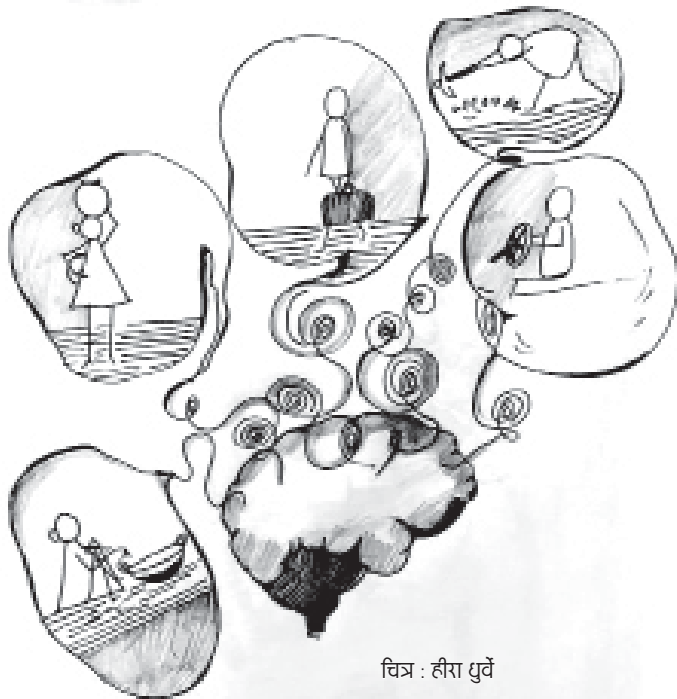
चित्र : हीरा धुर्वे

अकसर कहते हैं कि, 'मैंने पहले ऐसे कभी नहीं सोचा' या 'मुझे ऐसे कभी नहीं पढ़ाया गया', 'इस विषय पर मैं और ज़्यादा कहाँ से पढ़ सकती हूँ।'

क्रिटिकल चेतना[1] का विकास : क्रिटिकल सिद्धान्त सामाजिक और व्यक्तिगत विषमता में दमन और विशेषाधिकारों की भूमिका पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। क्रिटिकल चेतना का विकास विद्यार्थियों में, सामाजिक और राजनीतिक विरोधाभासों को उजागर करके, समाज और दुनिया की एक गहरी समझ विकसित करता है और उम्मीद करता है कि विद्यार्थी अपने जीवन में दमन का विरोध कर सकेंगे।

जेंडर विषमता के सन्दर्भ में विद्यार्थियों में क्रिटिकल चेतना विकसित करने के लिए यह आवश्यक है कि समाज में विभिन्न जेंडर पहचान वाले व्यक्तियों को कौन-कौन से विशेषाधिकार हासिल हैं अथवा वंचनाएँ मिलती हैं, का विश्लेषण किया जाए और विद्यालय किस प्रकार जेंडर असमानताओं को बनाए रखता है अथवा बढ़ाता है। विद्यार्थियों में क्रिटिकल चेतना लेंस के विकास के लिए निम्न गतिविधियाँ या कार्यकलाप मददगार होते हैं :

- **अपने जेंडर समाजीकरण के अनुभवों के बारे में बात करना** : पर इसके लिए यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि कक्षा में परस्पर विश्वास का माहौल हो ताकि विद्यार्थी अपनी जेंडर पहचानों और असमानता / दमन के अनुभवों के बारे में बात कर सकें। इसके लिए मैं जेंडर पाठ्यक्रम को आरम्भ करने से पहले ही विद्यार्थियों को यह स्पष्ट रूप से बताती हूँ कि इस कक्षा में हम व्यक्तिगत अनुभवों के बारे में बात करेंगे और अनुभवों को साझा करने की यह रणनीति नारीवादी शिक्षणशास्त्र का महत्त्वपूर्ण अंग है, साथ ही इन विद्यार्थी अनुभवों को हम सब कक्षा के सन्दर्भ के बाहर अन्य के साथ साझा नहीं करेंगे। यदि इन अनुभवों को किसी अन्य सन्दर्भ में शिक्षण के लिए प्रयोग करेंगे तो व्यक्तिगत सूचनाओं (personal identifiers) के बिना। मैं यह बात ज़ोर देकर दोहराती हूँ कि ऐसी स्थिति में अनुभव महत्त्वपूर्ण है न कि वह अमुक व्यक्ति।
- **क्रिटिकल चेतना बढ़ाने वाली गतिविधियों को डिज़ाइन और लागू करना** : इसके लिए मैं विद्यार्थियों के साथ कई गतिविधियाँ करती हूँ, जैसे– विद्यार्थी अपने जेंडर समाजीकरण के अनुभवों (पारिवारिक व विद्यालयी) के बारे में बात करें, जेंडर किस प्रकार पहचान के अन्य स्रोतों वर्ग, जाति से सम्बन्धित है– अपनी जेंडर (वर्गीय, जातीय) पहचान के कारण आपको क्या विशेषाधिकार प्राप्त हैं अथवा आपको इस पहचान के कारण किन वंचनाओं का सामना करना पड़ा, इस मुद्दे पर समूह चर्चा आयोजित करना, विद्यालय में या घर में कुछ ऐसे कार्य करना जो आपके जेंडर के लिए असामान्य समझे जाते हों और फिर अन्य विद्यार्थियों / अध्यापकों, अभिभावकों की प्रतिक्रिया को नोट करना एवं इसपर कक्षा में चर्चा करना, किसी फ़िल्म, लोकगीतों, विज्ञापनों पर जेंडर दृष्टिकोण से विश्लेषणात्मक चर्चा करना, आदि। कई बार विद्यार्थी भी कुछ क्रियाकलाप सुझाते हैं, उन्हें भी शामिल करने का प्रयास करती हूँ।

---

1. क्रिटिकल चेतना, ब्राज़ीलियन शिक्षाविद् और सिद्धान्तकार पाउलो फ़्रेरे द्वारा विकसित एक सामाजिक और शैक्षणिक सम्प्रत्यय है, जिसकी जड़ें उत्तर-मार्क्सवादी क्रिटिकल सिद्धान्त में हैं। फ़्रेरे के अनुसार, क्रिटिकल चेतना के विकास का लक्ष्य प्रजातांत्रिक समाज के निर्माण में वस्तु (objects) के रूप में नहीं, अपितु आत्म-चेतना युक्त व्यक्ति (subjects) के रूप में काम करना है। शिक्षा के क्षेत्र में इससे, फ़्रेरे का आशय विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच अन्तरपीढ़ी तुल्यता से है जिसमें दोनों सीखें, दोनों प्रश्न करें, दोनों चिन्तन करें और दोनों ही अर्थ निर्माण में सहभागिता करें। देखें, फ़्रेरे, पाउलो (1996) *उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र*, अनु. रमेश उपाध्याय, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली।

- **पहले किए जा चुके सफल प्रतिरोध के बारे में बताना** : जेंडर असमानता को ख़त्म करने में व्यक्तियों (रोल मॉडलों) और संस्थाओं द्वारा अतीत में किए गए सफल हस्तक्षेपों के बारे में बताने से विद्यार्थियों में यह समझ बनती है कि जेंडर असमानता समाज निर्मित है और व्यक्तियों के प्रयासों से मिटाई जा सकती है। साथ ही ये रोल मॉडल एक क़िस्म की आशावादिता का संचार भी करते हैं कि समाज द्वारा थोपी गई रूढ़ जेंडर भूमिकाओं और परिणामी असमानता, ग़ैर-बराबरी को समाप्त करना सम्भव है।

वास्तविक जीवन से सम्बन्ध

क्रिटिकल शिक्षणशास्त्र की आधारभूत प्रस्थापना है कि कक्षा / विद्यालयी शिक्षण का सम्बन्ध विद्यार्थियों के जीवन से होना चाहिए। शिक्षण का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध स्थापित करने में और उसे समाज के सन्दर्भ में अवस्थित करने में वास्तविक जीवन से लिए गए उदाहरण सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को अवसर दिया जाना चाहिए कि वे जेंडर समाजीकरण, जेंडर विभेद के अपने अनुभव / भोगे हुए यथार्थ (lived reality) को कक्षा में साझा करें। मेरी हमेशा यही कोशिश रहती है कि प्रशिक्षु अध्यापकों / अध्यापिकाओं के साथ इन मुद्दों पर बातचीत करूँ और व्यक्तिगत अनुभवों को साझा करने हेतु परस्पर विश्वास का माहौल प्रदान करूँ। चर्चा को शुरू करने के लिए बतौर शिक्षक मैं जेंडर समाजीकरण और असमानता के अपने अनुभव भी विद्यार्थियों से साझा करती हूँ। जातीय पहचानों के कारण प्राप्त विशेषाधिकारों / वंचनाओं का जेंडरगत असमानता के साथ अन्तर्सम्बन्ध है और चर्चा में इसे रेखांकित करना महत्त्वपूर्ण है। मेरे अनुभव से मैं यह कह सकती हूँ कि इन चर्चाओं का अपेक्षित परिणाम मिलता है।

उपरोक्त अनुभव के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि जेंडर संवेदनशील शिक्षण हेतु अध्यापकों / अध्यापिकाओं की तैयारी या उनका प्रशिक्षण बहुत ही ज़रूरी है, अन्यथा किताबों व पाठ्यक्रम में सुधार करने के अपेक्षित परिणाम नहीं मिलेंगे। शिक्षण एक जीवन्त क्रिया है और पाठवस्तु की व्याख्या हमेशा अध्यापकों / अध्यापिकाओं की आत्म-चेतना (subjectivity) के सापेक्ष होती है। अतः शिक्षकों में जेंडर असमानता के सम्बन्ध में क्रिटिकल चेतना न केवल एक बेहतर, जेंडर समावेशी कक्षा व स्कूल वातावरण का निर्माण करेगी बल्कि उनके विद्यार्थियों की जेंडर के प्रति अभिवृत्ति में बदलाव का ज़रिया बनेगी। और शिक्षा के द्वारा जेंडर समानता लाने व सामाजिक परिवर्तन का लक्ष्य प्राप्त करने का हमारा सपना पूरा हो सकेगा।

सन्दर्भ

Bates, Laura (2014). *Everyday Sexism.* Simon & Schuster Ltd. UK

NCERT (2005). *Position Paper National Focus Group on Gender Issues in Education.* NCERT, New Delhi

NCERT (2005). *National Curriculum Framework 2005.* NCERT, New Delhi

---

प्रो. मधु कुशवाहा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के शिक्षा संकाय में पिछले 20 वर्षों से अध्यापनरत हैं। इन्होंने शिक्षा के सामाजिक सन्दर्भ और शिक्षा के सामाजिक मुद्दों को अपने अध्यापन एवं शोध का विषय बनाया है।
सम्पर्क : mts.kushwaha@gmail.com

लिखना : मौखिक से मौलिक की ओर

अवनीश कुमार मिश्र

भाषा के विविध कौशलों में लिखने का कौशल, सीखने-सिखाने के लिहाज़ से थोड़ा जटिल है और कक्षा शिक्षण में यह विविध प्रयासों की माँग करता है। लिखने की प्रक्रिया में सोचने, बोलने और पढ़ने जैसी प्रक्रियाएँ भी साथ चलती हैं। सोचा और बोला हुआ लिखा जा सकता है, यह विश्वास और भरोसा बिठाने में समय लगता है। लिखने से पहले विचारों का संकलन, व्यवस्थापन और फिर लिखने के दौरान अपने लिखे हुए को देखना-पढ़ना और दिशा व प्रवाह बनाना भी एक कौशल है जो सीखना होता है। अवनीश कुमार ने अपने इस आलेख में लिखना सीखने-सिखाने के विभिन्न पहलुओं पर अनुभवजन्य टिप्पणियाँ की हैं। लिखना सीखने के चरण, उसके लिए प्रयुक्त सामग्री तौर-तरीक़ों पर लेखक ने विस्तार से लिखा है। साथ ही बच्चों के लेखन के विविध नमूनों से अपनी बात को समझाने का प्रयास किया है। सं.

भाषा एक ऐसा औज़ार है, जिसका उपयोग हम जीवन को समझने, उससे जुड़ने और अर्जित अनुभवों को व्यक्त करने के लिए करते हैं। वह अभिव्यक्ति के साथ हमारे सोचने, समझने और दुनिया को देखने का नज़रिया भी देती है। सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना भाषा के बुनियादी कौशल हैं, जो साथ-साथ बरते जाते हैं। इन बुनियादी कौशलों में तर्क, अनुमान, अभिव्यक्ति, कल्पना, अवलोकन आदि पहलू अन्तर्निहित होते हैं। एनसीईआरटी के हिन्दी पाठ्यक्रम में भाषा सीखने के कौशलों और उद्देश्यों के अनुसार "विद्यार्थियों में बोलने का कौशल इस सीमा तक विकसित हो चुका हो कि वे औपचारिक चर्चाओं में बेझिझक होकर बोल सकें। वे अपने विचारों और भावनाओं को स्पष्ट, व्यवस्थित और असरदार ढंग से अभिव्यक्त कर सकें। भाषा पर उनका इतना अधिकार हो चुका हो कि वे जीवन की विविध स्थितियों से आत्मविश्वासपूर्वक गुज़र सकें। विभिन्न प्रकार के औपचारिक व अनौपचारिक सन्दर्भों के अनुसार उचित शैली चुन सकें। भाषा को जानदार बनाने के लिए उर्दू और आंचलिक शब्दों का इस्तेमाल करने की समझ उनमें हो। पढ़ना, सुनना, लिखना, बोलना— इन चार प्रक्रियाओं में विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान की सहायता से अर्थ की रचना कर पाएँ और कही गई बात के निहितार्थ को भी पकड़ पाएँ।"

सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने का अन्तर्सम्बन्ध

सुनने और बोलने के कौशलों को परिवेश में जन्म से ही अर्जित किया जाता है। यह अर्जन अनवरत चलता रहता है। सांकेतिक भाषा से मौखिक भाषा और इन सबसे जुड़ी हुई लिखित भाषा की यात्रा जीवन में घटित होने वाली आश्चर्यजनक घटनाएँ हैं।

गुडमैन ने पढ़ने को मनोभाषाई अटकलों का खेल माना है। बच्चे पढ़ना तभी सीखते हैं जब वह उनके लिए मज़ेदार और रोचक होता है। इस प्रकार, विविध तरह के लेखन को समझने

के लिए बच्चों की आयु व स्तर के अनुसार रोचक, पठनीय और विविध टेक्स्ट, प्रिंट सामग्री परिवेश में उपलब्ध होनी आवश्यक है। इस दिशा में बाल साहित्य, रीडिंग कॉर्नर, विभिन्न प्रकार का टेक्स्ट, अख़बार, विज्ञापन, पोस्टर, दीवार पत्रिका, बाल अख़बार आदि के इस्तेमाल जैसे सराहनीय कार्य किए जा रहे हैं। यह अलग बात है कि इनका भाषा शिक्षण में कहीं बहुत ही सामान्य इस्तेमाल किया जा रहा है, कहीं नहीं भी किया जा रहा है तो कहीं बेहतर इस्तेमाल भी हो रहा है। जहाँ पर बेहतर इस्तेमाल हो रहा है, वहाँ बुनियादी कौशलों में काफ़ी विकास देखने को मिलता है। बेहतर इस्तेमाल से आशय बच्चों को सुनने-सुनाने का अवसर देना, प्रत्येक दिन पढ़ने की घण्टी का उपयोग, स्तर अनुसार विभिन्न प्रकार के रोचक टेक्स्ट की उपलब्धता, तय योजना अनुसार निरन्तरता में पर्याप्त समय, अवसर और आज़ादी देना आदि पहलू शामिल होते हैं। कुल मिलाकर जितना भाषा-समृद्ध माहौल उपलब्ध होता है, पढ़ने और मौखिक अभिव्यक्ति के अवसर उपलब्ध होते हैं, लिखने का प्रयास उतना ही सहज, सार्थक व सारगर्भित होता है। पढ़ने की प्रक्रिया में शामिल होने से अर्थ निर्माण, लिपि-ध्वनि सम्बन्ध की पहचान, शब्द भण्डार, प्रवाह, वाक्य संरचना की समझ, विविध लेखन शैलियों की समझ, साहित्यिक समझ और पढ़े हुए का जीवन में उपयोग कर पाने जैसे अनेक कौशल विकसित होते हैं। जिस प्रकार पढ़ना जीवन के विभिन्न पहलुओं और इसके बदलते रंगों को समझना है, उसी प्रकार लिखना अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषण है।

लेकिन वर्तमान में अधिकतर भाषा शिक्षण से जुड़ी मान्यताएँ इस समझ से बहुत अलग दिखाई देती हैं। जैसे– कक्षा एक-दो में पढ़ना-लिखना केवल लिपि ज्ञान तक ही सीमित रखना, मौखिक कौशलों पर कम ध्यान देना, पाठ्यपुस्तकों का बेहद कम इस्तेमाल होना, बच्चों के जीवन अनुभवों को भाषा संसाधन न समझना आदि। इसके साथ ही कुछ विसंगतियाँ भी इसके लिए ज़िम्मेदार हैं, जैसे– समझ और अर्थ के साथ पढ़ना-लिखना सीखने की शुरुआत न करना, अशुद्धियों का डर और व्याकरण की शिकायत, सोद्देश्य समूहन और संवाद की कमी, भाषा शिक्षण का केवल एक कालखण्ड तक सीमित होना, पुस्तकालय और भाषा-समृद्ध वातावरण का अभाव, भाषा सिखाने का एकमात्र साधन पाठ्यपुस्तक को मानना, भाषा नक़ल से सीखी जाती है ये मान्यता रखना, आदि। ये मान्यताएँ बच्चे के सीखने में कई तरह की चुनौतियाँ पैदा करती हैं।

इसके अलावा कक्षा शिक्षण की कुछ रूढ़ियाँ भी इसमें अपनी भूमिका निभाती हैं, जैसे– एकतरफ़ा आदेशात्मक शिक्षण, लाल स्याही और ग़लतियों पर ही निगाह रखना, आदि। जबकि इस सम्बन्ध में पाठ्यपुस्तक *(रिमझिम-1)* इस बात पर ज़ोर देती है, "यह किताब केवल एक पाठ्यपुस्तक ही नहीं, बल्कि बच्चों के साथ मिलकर कविता गाने, कहानी सुनने-सुनाने, भाषा के रोचक खेल खेलने का एक ज़रिया भी है। किताब में इस बात के संकेत भी मिलते हैं कि बच्चों से बातचीत करने के लिए, उन्हें स्वयं सोचकर कुछ कहने, पढ़ने-लिखने के लिए, बेझिझक होकर स्वयं को अभिव्यक्त करने का आत्मविश्वास पैदा करने के लिए घर और स्कूल में कितने ही अवसर ढूँढ़े जा सकते हैं।" इसी तरह *रिमझिम-5* कहती है, "शिक्षक से यह अपेक्षा भी की जाती है कि प्रत्येक बच्चे
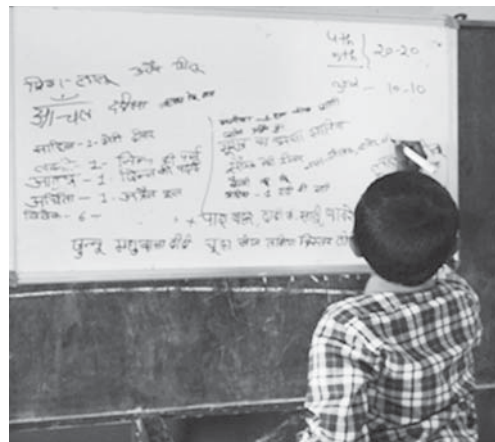
चित्र 1

के भाषाई कौशलों की जाँच ऐसे करे कि कोई भी बच्चा न छूटे। इन सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए यद्यपि इस पुस्तक में प्रचुर मात्रा में सामग्री दी गई है, लेकिन फिर भी दी गई विषय सामग्री से इतर सामग्री भी बच्चों को दें। क्योंकि भाषा के उद्देश्य एक पाठ्यपुस्तक से पूरे नहीं किए जा सकते। प्राथमिक स्तर के अन्त तक अपेक्षा है कि बच्चा क़िस्म-क़िस्म का लेखन कर सके और भाषा को प्रभावी बनाने के लिए उपयुक्त शब्द का चुनाव व उपयोग कर सके। इसीलिए उनका तरह-तरह की रचनाओं से परिचय हो यह महत्त्वपूर्ण होगा।

लेखन की आवश्यकता

किसी भी भाषा में, लेखन का अर्थ है मन की बातों / विचारों / उधेड़बुन को काग़ज़ पर उकेरना। आमतौर पर लेखन एक व्यक्तिगत मानसिक-मनोवैज्ञानिक और सौन्दर्यात्मक प्रक्रिया मानी जाती है। लेखन से तात्पर्य ऐसे चिह्न या आकृतियाँ बनाने से है, जिसे दूसरे समझ पाएँ। यह केवल इतना भर नहीं है, बल्कि लेखन भावों और विचारों की अभिव्यक्ति है। कुछ विचार ऐसे होते हैं जिन्हें हम बोलने की अपेक्षा लिखकर अभिव्यक्त करने में स्वयं को अधिक सहज महसूस करते हैं। यह भी कि वाचिक की अपेक्षा लिखना अधिक स्थाई क्रिया है। लिखे हुए को हम अपनी इच्छा से कभी भी, कहीं भी देख सकते हैं। आसान शब्दों में कहा जाए तो लिखना, कहने का एक ख़ास अन्दाज़ है। यह अपने-आप से जुड़ने और दुनिया को समझने का एक बेहतरीन तरीक़ा है। कृष्ण कुमार लिखते हैं, "लिखना एक तरह की बातचीत ही है। लिखते वक़्त हम किसी से संवाद कर रहे होते हैं, हालाँकि प्रायः वह व्यक्ति हमारे सामने नहीं होता। बहुत-सी बातें हम किसी सूचना, विचार या याद को सुरक्षित रखने के लिए लिखते हैं। यदि मैं अपने आज के अनुभव एक डायरी में लिखूँ तो मैं इन अनुभवों को किसी और दिन पढ़ने की आशा में सुरक्षित रख सकूँगा।"

लिखना विभिन्न उद्देश्यों के लिए होता है। सूची बनाना, रिपोर्ट लिखना, किसी सवाल का जवाब लिखना, सवाल लिखना या कविता और कहानी को लिखना, एक ही तरह का लिखना नहीं है। इनमें से हर उद्देश्य के लिए लिखने की प्रक्रिया में अन्तर होता है। लिखने के कौशल को विकसित करने के लिए बच्चों का ध्यान भाषा के अलग-अलग रूपों की ओर दिलाने की आवश्यकता होती है ताकि वे भाषा की बारीक़ियों को पकड़ सकें और लिखते समय उनका उचित उपयोग कर सकें। भाषा के इन विभिन्न रूपों को देखने-समझने का मौक़ा बच्चों को बाल साहित्य और विभिन्न प्रकार के टेक्स्ट से ही मिल सकता है।

पाठ्यपुस्तकों के रोचक अभ्यास प्रश्नों को केवल परीक्षा की तैयारी कराने तक सीमित न मानकर भाषाई दक्षताओं को निखारने के सन्दर्भ में उपयोग करने की आवश्यकता है। अतः कक्षावार या स्तरानुसार रोचक विषय सामग्री का चयन किया जाना चाहिए, साथ ही बच्चों को हिन्दी की विभिन्न शैलियों और रंगतों से परिचित होने के बाद उसी प्रकार के लेखन के अवसर भी दिए जाने चाहिए। पढ़ने की तरह ही लिखने में भी समझ शामिल है और समझ के साथ लिखने के लिए यह अपेक्षित होता है कि उसमें अपने विचारों, भावनाओं या अनुभवों को स्वयं अपनी भाषा में अपने तरीक़े से लिख सकें।

लिखने की शुरुआत

लिखना एक कौशल है और उसपर अधिकार हासिल करना तभी सम्भव हो पाता है जब बच्चों में अपने लेखन के प्रति आत्मविश्वास आता है, उन्हें प्रोत्साहन मिलता है। क़िस्म-क़िस्म के लेखन के नमूनों से गुज़रने का अवसर मिलता है।

बच्चों का अपने हाथ से एक छोटी लकीर खींचना उनके जीवन में पहली बार घटित होने वाली दिलचस्प घटना है और एक बड़ा क़दम है। मिट्टी के खिलौने बनाना, मिट्टी में बार-बार उँगली फिराना, सुलझी बातों की उलझी आकृतियाँ बनाना, खेल-खेल में सृजन करना, स्कूल में दीवार का इस्तेमाल करने जैसी

गतिविधियों द्वारा हाथ की माँसपेशियों को लचीली बनाने और संरचना को गढ़ने में मदद मिलती है। शुरुआती प्रयासों से ही जब बच्चा आड़ी तिरछी रेखाएँ खींचना आरम्भ करता है, तभी से वह अपने विचारों को प्रकट करना भी शुरू कर देता है। गोदा-गादी लेखन भले ही मानक भाषा के फ्रेम में नहीं समझा जाता, पर उसमें बच्चों की अपनी दुनिया के अनुभव होते हैं। ध्वनि और उसके निर्धारित चिह्नों में सम्बन्धों की समझ धीरे-धीरे विकसित होती है। बच्चे जब कभी ध्वनि और संकेतों के सम्बन्ध को समझ ही रहे होते हैं, कई बार वे शब्दों को अधूरा ही छोड़ देते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि कई बार बच्चे के मस्तिष्क में बातें इतनी जल्दी-जल्दी आगे बढ़ती हैं कि उनकी कलम उस गति का मुक़ाबला नहीं कर पाती। ऐसी स्थिति में उनका सार्थक प्रिंट, बाल साहित्य आदि सामग्रियों से जुड़ाव जितना अधिक होगा और पढ़ने-लिखने के निरन्तर मौक़े जितने अधिक मिलते रहेंगे, उतना ही उनका लेखन परिपक्व होगा। सामान्य-सी बातचीत को, रोज़मर्रा के शब्दों, उनके नाम, आदि को लिखने का हिस्सा बनाए जाने की ज़रूरत है। शब्दों / अक्षरों से खेलने व ग़लती करने की आज़ादी, अवसर और समय देना उचित प्रतीत होता है। यह पूरी प्रक्रिया अपार धैर्य, समय और ऊर्जा की माँग करती है। लेखन में रुचि पैदा होना इस बात पर निर्भर करता है कि सुझाए गए तरीक़े कितने आकर्षक, लुभावने और रोचक हैं। लेखन की शुरुआत में किसी तरह के जवाब की कोई आधिकारिक माँग, अनुशासन या नियम नहीं होना चाहिए। मुक्त लेखन के अवसर, प्रोत्साहन और लेखन पर ढेर सारी बातचीत, उनकी भावनाओं व विचारों को समझने का प्रयास करना चाहिए।

लेखन से पहले की तैयारी

लेखन को विकसित करने के लिए उससे सम्बन्धित अनेक गतिविधियाँ हो सकती हैं, जैसे– शुरुआत के लिए किसी ऐसी कहानी का चुनाव करना जिसे सभी बच्चे जानते हों, उसपर संवाद करना, उसमें से किसी एक पात्र का चित्र बनाना और उसपर चार-पाँच वाक्य लिखना, अव्यवस्थित वाक्यों को व्यवस्थित करते हुए एक क्रम में लगाना, किसी पढ़े हुए पाठ को संक्षेप में अपने शब्दों में लिखना, किसी नई कहानी का लेखन करना, किसी कहानी पर अपनी टिप्पणी लिखना, किसी एक शीर्षक पर आधारित सभी बच्चों के मौलिक लेखन को एक हैण्डबुक की शक्ल देना, किसी प्रासंगिक विषय पर प्रश्नोत्तरी (क्यों और कैसे) तैयार करना, किसी अधूरी कहानी का अपनी कल्पना और अनुमान के आधार पर अन्त तय करना, छोटी टीम में लिखित रूप में कहानी तैयार करना (एक-एक वाक्य जोड़ते हुए कहानी

चित्र 2

चित्र 3

चित्र 4

चित्र 5
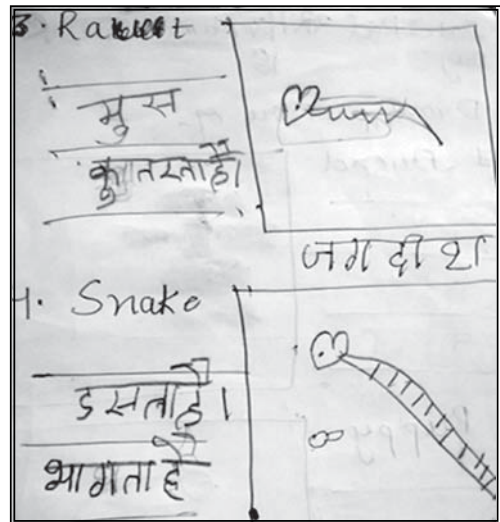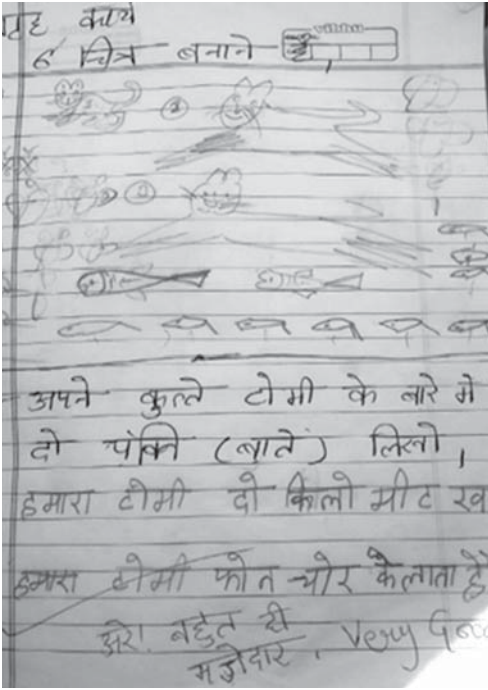
पूरी करना) आदि। नमूने के तौर पर कक्षा तीन के बच्चों के लेखन की समझ को जानने के लिए परिवेश से जुड़ी कविता, कहानी, पत्र लेखन और चित्रों का सहारा लिया गया। एक ही विषय पर बच्चों की समझ और जवाब अलग-अलग तरह के थे। जिन स्कूलों में इस तरह के लेखन के अवसर निरन्तरता में उपलब्ध कराए जाते हैं, वहाँ के बच्चों की लेखन की समझ अपेक्षाकृत बेहतर दिखाई देती है।

लेखन की प्रक्रिया

लिखी हुई किसी सामग्री को जस का तस उतार देना या केवल प्रिंट के रूप में लिखी सामग्री या पढ़े हुए को लिखना 'उत्पाद लेखन' है। उत्पाद लेखन का उद्देश्य है कि कैसे सही तरीक़े से लिखना है इसमें ज़ोर शुद्धता पर होता है। इसमें छात्रों को नक़ल करने के लिए पाठ दिया जाता है और आमतौर पर पाठ्यपुस्तकों के पाठों का उपयोग किया जाता है, जो लेखन के लिए कई तरह के बने-बनाए मॉडल सुझाते हैं। जैसे– यदि एक औपचारिक पत्र का अध्ययन करते हैं, तो बच्चों का ध्यान पैराग्राफ़ के महत्त्व और औपचारिक अनुरोध करने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली भाषा (जैसे– 'यदि आप होंगे तो मैं आभारी रहूँगा') पर दिलाया जाता है। विचारों को एक बँधे हुए फ्रेम में रखना सीखने के लिए ई-मेल, औपचारिक पत्र, रिपोर्ट लेखन आदि में इसका प्रयोग किया जाता है।
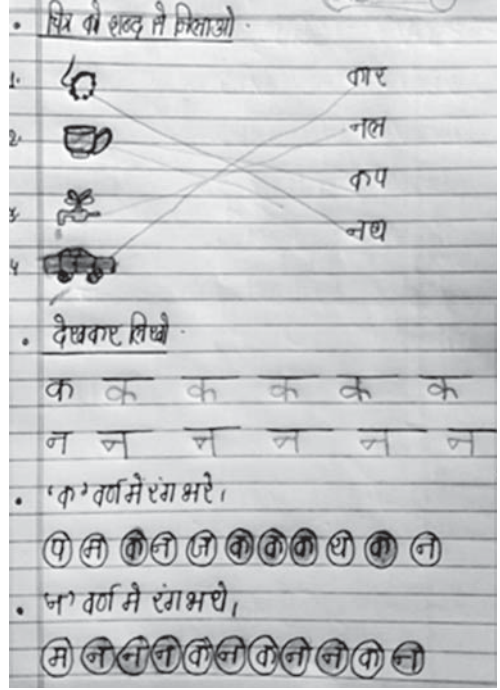
एक अन्य तरह का लेखन प्रक्रियात्मक लेखन है। इसमें बच्चों को लिखने की स्वतंत्रता होती है कि वे क्या लिखना चाहते हैं। यह उनके सोचने के कौशल को विकसित करता है और उनकी रचनात्मकता को सुव्यवस्थित और बेहतर बनाने की दिशा में सहायक होता है। इसमें सोचने, योजना बनाने, लिखने, सुधार करने और सम्पादन करने के अनेक अवसर मिलते हैं। जिससे बच्चे यह समझ बना पाएँ कि वे क्या लिखने जा रहे हैं। यह भी समझ पाएँ कि टेक्स्ट अपने अन्तिम संस्करण में आने से पहले ड्राफ्ट कैसे बनता है, उसमें किस तरह से संशोधन किया जाता है, सम्पादित कैसे किया जाता है, और अपने काम पर कैसे प्रतिक्रिया दी जाती है व दूसरों से कैसे प्राप्त की

जाती है। इस प्रक्रिया में व्याकरणिक शुद्धता पर उतना ज़ोर नहीं दिया जाता, जितना कि लिखने के प्रति सजगता, सहजता और सन्दर्भ पर। इसमें लेखन के शिल्प के अनुरूप विचारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। कभी भावों की और कभी-कभी इसमें कल्पनाओं, वास्तविकताओं, जीवन के विभिन्न पहलुओं, सामाजिक स्थितियों, घटनाओं आदि का समावेश होता है। पाठक को सोचने के लिए, सूचना-जानकारी देने, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष पहलुओं को शामिल करते हुए किसी उद्देश्य विशेष से परिचित कराने के लिए, मनोरंजन के लिए, किसी समस्या से अवगत कराने, पाठकों की विचारधारा को समृद्ध करने और उनका विश्वास जीतने एवं उसे बनाए रखने आदि के लिए इस तरह के लेखन का प्रयोग किया जाता है। सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि बच्चा जो सन्देश कहना चाहता है वह सही रूप से सम्प्रेषित हो जाए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक बेहतरीन कविता, कहानी, आदि किसी एक दिन के लेखन का परिणाम नहीं होती, बल्कि कई प्रक्रियाओं के बाद कोई रचना स्थायित्व पाती है। यहाँ तक कि किसी किताब को कोई नाम देने, किसी कहानी या कविता को कोई उचित शीर्षक देने में भी अनेक बार संशोधन करना पड़ता है। *सीखने के प्रतिफल* दस्तावेज़ कहता है कि "लिखना एक सार्थक गतिविधि तभी बन पाएगी जब बच्चों को अपनी भाषा, कल्पना, दृष्टि से लिखने की आज़ादी मिले। बच्चों को ऐसे अवसर मिलें कि वे अपनी भाषा और शैली विकसित कर सकें, न कि ब्लैकबोर्ड, किताबों या फिर शिक्षक के लिखे हुए की नक़ल करते रहें।" प्रक्रियात्मक लेखन में बच्चों के स्वतंत्र सोचने, अभिव्यक्त करने की झलक देखी जा सकती है। इस प्रकार के लेखन में उनके परिवेश और पूर्व अनुभव की झलक भी आसानी से दिखाई दे जाती है।

लिखने का विस्तार

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अनुसार, "लिखने का महत्त्व सर्वविदित है, लेकिन पाठ्यचर्या में इसको लेकर नवाचार अपनाने की ज़रूरत है। शिक्षकों का ज़ोर इस बात पर होता है कि बच्चे सही तरीक़े से लिखें। लिखने के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति को महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता। शिक्षकों को इस रूप में प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है कि वे लेखन को लेखन की तरह समझें, न कि कार्यालयी कौशल की तरह। आरम्भिक वर्षों में लिखने की क्षमता का विकास, बोलने, सुनने और पढ़ने की क्षमता की संगति में होना चाहिए। ऐसे प्रयास भी आवश्यक हैं जिनसे पत्र लेखन और निबन्ध लेखन की घिसी-पिटी गतिविधियों पर रोक लगाकर शिक्षा में कल्पना और मौलिकता को महत्त्वपूर्ण भूमिका दी जाए।" प्रारम्भिक स्तर पर मुख्यत: मौखिक रूप से सीखी गई भाषा को सुदृढ़ करने के लिए संवाद लेखन, घटनाओं, अनुभवों, यात्रा विवरण, मित्र को पत्र आदि का उपयोग करना चाहिए। आँखों देखी घटनाओं को शब्दबद्ध करने से बच्चों में यह अहसास पैदा होता है कि बोले हुए को भी शब्दों और वाक्यों में फ्रेम किया जा सकता है। इस उम्र में बच्चों के लेखन के सारे प्रयास शब्द की ध्वनि और बोले गए ढंग (शैली / उच्चारण) या परिवेश के शब्दों से प्रभावित होते हैं। यदि बच्चे सुलेख लिख रहे होते हैं तो वहाँ सही उच्चारण, सही परिवेशीय
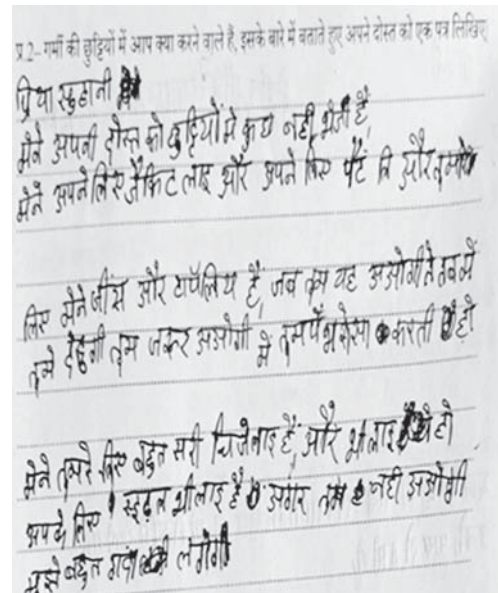
चित्र 6 : पत्र लेखन का नमूना

शब्दों का चयन बहुत मायने रखता है। लेकिन यह समझना भी ज़रूरी है कि लिखित भाषा का मतलब केवल बोलने वाली भाषा को लिख देना भर नहीं है। यह कहीं अधिक सतर्कता और समझ की माँग करता है। मौखिक बातचीत में बात करने वाले आमने-सामने होते हैं और यह एक साझे सन्दर्भ पर होती है। लेकिन लिखित भाषा में इसी संवाद को प्रस्तुत करने के लिए हमें बातचीत के साथ ही साथ उस विषय के सन्दर्भ, संवाद के दौरान की स्थिति और इस दौरान होने वाले हाव-भाव, संकेतों और इशारों को भी लिखना होता है। हम पाएँगे कि दोनों में उपयोग किए गए शब्दों और वाक्यों की बुनावट भी भिन्न होती है। लिखने के विस्तार के रूप में स्वयं से लेखन का एक वाक्य बनाना, साधारण सवालों के जवाब अपने शब्दों में देना, एक पत्र या किसी व्यक्ति या घर का वर्णन करना, आदि इस स्तर के छात्रों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण रचनात्मक दक्षता है। लिखने को सहज बनाने में पत्र लेखन एक उपयोगी प्रक्रिया हो सकती है। यह बच्चों को मौखिक रूप से सीखी गई भाषा का उपयोग करने का अवसर देता है और उन्हें वाक्यों को जोड़ने एवं उसके क्रम के साथ परिचित भी कराता है। इससे पत्र का ढाँचा समझने, उसे लिखने व उसकी प्रक्रिया और उद्देश्य को समझने में मदद मिलती है। इस सन्दर्भ में कक्षा तीन के बच्चों द्वारा शुरुआती पत्र लेखन के कुछ नमूने देखे जा सकते हैं। (चित्र 6)

जैसे-जैसे लेखन का विकास होता है उसी तरह से विचारों में भी उत्तरोत्तर प्रगति होती नज़र आती है। फिर ये विचार ही उसके लेखन को बेहतर और परिष्कृत करते चलते हैं– सरल वाक्यों से साधारण विवरणों तक, फिर उससे आगे विस्तृत विवरणों और संवादों तक। भाषा परिवेश में बिखरी पड़ी है। उसका उपयोग करते हुए नए शब्दों से गुज़रना और उनका उचित प्रयोग करना भी ज़रूरी है।

लेखन के दौरान की उधेड़बुन

शिक्षार्थी अपनी रचना के पहले मसौदे या ड्राफ्ट को लिखते हैं। संशोधन की प्रक्रिया तब शुरू होती है जब छात्रों के पास एक स्तर का काम पूरा हो चुका होता है। इसमें तैयार हुए पाठों को देखने और विचारों को पुन: व्यवस्थित

मेरी अध्यापिका
मेरी अध्यापिका का नाम श्रीमती अन्जा
शर्मा है मेरी अध्यापिका सरीक है मेरी
अध्यापिका हमे पढ़ाती है। मेरी अध्यापिका
मेरी अछ अध्यापिका खेल खीलाती है।
मेरी अध्यापिका स्मार्ट लगती है मेरी
अध्यापिका अपने घर से अच्छी बन
आती है। जब हमे बिस्कुट लाती है तब
हम [illegible] कैती है मेरी अध्यापिका
बहुत सारी चिजे लती है मेरी
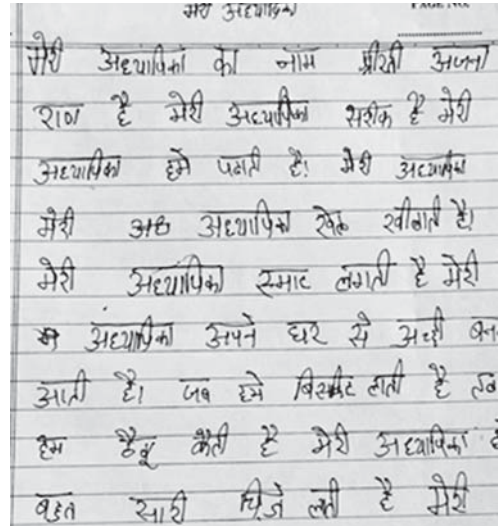
चित्र 7

करने, वाक्यों को जोड़ने, बदलने या हटाने का काम किया जाता है। यह काम बच्चों के साथ मिलकर किया जाता है। किसी मुद्दे या विषय पर समूह में और व्यक्तिगत रूप से गहराई से बात करने पर अलग-अलग तरह के जवाब आते हैं। यह भी कि मौखिक संवाद में अधिक विचार आते हैं, लिखित में शब्दों, वाक्यों और विराम चिह्नों की उधेड़बुन में विचार और भाव सीमित होते जाते हैं। अतः बेहतर लिखने में यह काफ़ी मददगार होता है कि उस विषय पर पहले बातचीत कर ली जाए।

यह भी देखा गया है कि किसी विषय के जवाब कम पंक्तियों में लिखने के टास्क पर बच्चे बेहतर और व्यवस्थित क्रम में लिखते हैं। अधिक लिखने की स्थिति में बोरियत महसूस करते हैं और यदि विषय रोचक न हो तो वे लिखना बीच में ही छोड़ देते हैं। बच्चों के सोचने और कोशिश करने में शिक्षक को मार्गदर्शक की भूमिका में रहना चाहिए। वे बच्चों को कोई संकेत दे सकते हैं और उनसे आगे भी प्रश्न पूछ सकते हैं, और इस तरह उन्हें ज़्यादा गहराई से

सोचने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं, साथ ही उन्हें उत्तर ढूँढ़ने और ख़ुद के अधिगम की ज़िम्मेदारी उठाने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

संशोधन की इस प्रक्रिया में फ़ीडबैक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। फ़ीडबैक ऐसा हो, जिससे लेखन के प्रति छात्रों में एक सकारात्मक दृष्टिकोण बने। ड्राफ्ट पर फ़ीडबैक देते समय निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखा जा सकता है। छात्र के पास कहानी के लिए क्या विचार था, छात्र ने संवाद कैसे लिखे, क्या छात्र ने रिपोर्ट के मुख्य बिन्दुओं को लिखा था, क्या छात्र ने व्यवस्थित क्रम में लिखने का अच्छा प्रयास किया था? इस बात पर ध्यान देने की ज़रूरत है कि फ़ीडबैक अस्पष्ट या पक्षपाती न हो, नहीं तो बच्चे सीखना बन्द कर सकते हैं। हर एक छात्र को व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग फ़ीडबैक देना भी काफ़ी मददगार हो सकता है। यह फ़ीडबैक मौखिक या लिखकर दिया जा सकता है। इस प्रक्रिया में छात्र किए गए काम का एक दूसरे से आदान-प्रदान कर सकते हैं और उसपर टिप्पणी भी कर सकते हैं। जाँच के काम को सबसे पहले छात्रों द्वारा स्वयं से, उसके बाद

चित्र 8 : प्रश्नों के उत्तर के नमूने

चित्र 9

छात्रों के समूह में, मित्रों व बड़े भाई-बहन द्वारा और फिर शिक्षकों द्वारा किया जाना चाहिए।

लेखन को अन्तिम रूप देना

फ़ीडबैक के अनुरूप संशोधन करने के बाद बच्चे एक और मसौदा लिखते हैं और पुनः संशोधन की प्रक्रिया में शामिल होते हैं। यह क्रम तब तक नहीं रुकता जब तक कि विचारों के क्रम और सामग्री में एकरूपता नहीं आ जाती। इस प्रकार बच्चे कई ड्राफ्ट लिखने के बाद व्याकरण, वर्तनी और विराम चिह्न को अपनी क्षमता अनुसार जाँच करके काम को व्यवस्थित और फ़ाइनल रूप देते हैं। कहना ग़लत न होगा कि यदि सामान्य बातचीत, चित्र, कविता, कहानी, घटना, अनुभव, यात्रा वृत्तान्त, त्योहार, मेले, भ्रमण, विज्ञापन, पोस्टर, बाल साहित्य, आदि विभिन्न प्रकार के लेखन का अवसर दिया जाता है तो लिखने की प्रक्रिया को रोचक और आकर्षक बनाया जा सकता है। लिखने की प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि लेखन प्रक्रिया में काफ़ी स्तरों पर बातचीत और फिर संशोधनों की पूरी सम्भावना निहित होती है। उसे सही दिशा देने, प्रोत्साहित करने, फ़ीडबैक देने और स्वयं को शामिल करने के दायित्व का निर्वाह करना अति आवश्यक होता है। बच्चों द्वारा किए गए काम को
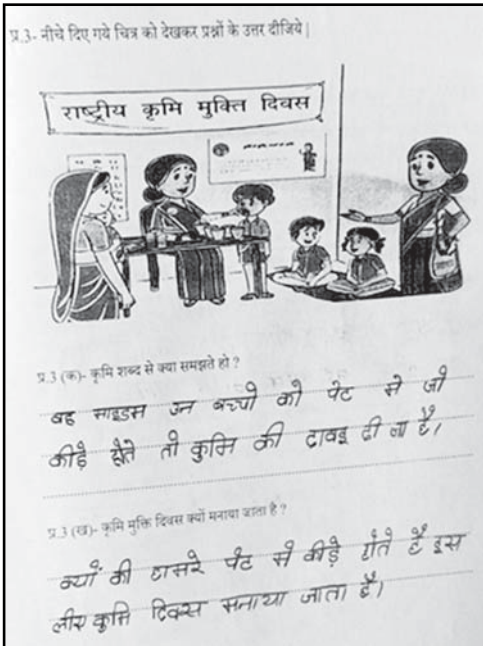
चित्र 10

चित्र 11

यदि दीवार पत्रिका, बाल अख़बार, बाल पत्रिका के साथ स्कूल के भाषा-समृद्ध वातावरण में चस्पा किया जाता है और उसे दूसरे द्वारा पढ़ा जाता है तो वे उमंग, उल्लास और आत्मविश्वास से लबरेज़ नज़र आते हैं। उनमें यह विश्वास भी जन्म लेता है कि मैं भी बेहतर लिख सकता हूँ और यह समझ बनती जाती है कि बेहतर को अधिक बेहतर बनाने की गुंजाइश हमेशा रहती है।

लेखन की इस पूरी प्रक्रिया से गुज़रते हुए यह प्रयास किया जाना ज़रूरी है कि लिखना केवल पाठ्यक्रम तक सीमित न होकर जीवन का अभिन्न हिस्सा बन जाए। लिखना सृजनात्मक अभिव्यक्ति है और यह तभी सम्भव हो पाता है जब बच्चों को पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता, समय, अवसर और आज़ादी दी जाती है।

सन्दर्भ

1. लेखन प्रक्रिया में रणनीतिक संरचना पर उद्धरण, *greelane.com/hi/मानविकी/अंग्रेज़ी/writing-process-composition*

2. लेखन प्रक्रिया, *wikicareer.in/wiki/writing_process*

3. खानसिर, अली अकबर, *भारत में भाषा Jul 2012, अंक 7*

4. *भाषा और साक्षरता (प्रामाणिक लेखन)* : TESS-India.edu.in

5. *लेखन कौशल - विकास एवं मॉनीटरिंग* : TESS-India.edu.in

6. *सीखने के प्रतिफल,* एनसीईआरटी, 2017

7. कुमार कृष्ण : *बच्चों की भाषा और अध्यापक,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली

अवनीश कुमार मिश्र विगत पाँच वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पीएचडी करने के बाद एक वर्ष तक सहायक प्रोफ़ेसर के रूप में हिन्दी साहित्य विषय में अपनी सेवाएँ दी हैं। भाषा और साहित्य से जुड़े अनेक शोध पत्र लिखे हैं। पढ़ने-लिखने में निरन्तर दत्तचित्त रहते हैं। तीन साल से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में काम कर रहे हैं।

सम्पर्क : avanish.mishra@azimpremjifoundation.org

प्राथमिक कक्षाओं में लिखना सीखना कुछ अवलोकन

कमलेश चंद्र जोशी

स्कूल में लिखना-पढ़ना सिखाना सबसे बुनियादी कौशल हैं और ये पूरे पाठ्यक्रम को सीखने, समझने का आधार बनते हैं। लेख में एक बुनियादी कौशल 'लिखना' सिखाने के बारे में शिक्षकों के आम दृष्टिकोण की चर्चा की गई है। साथ ही बच्चों के कुछ लेखन नमूनों की मदद से यह बताने का प्रयास किया गया है कि लेखन को समृद्ध बनाने के लिए उनके लेखन को कैसे समझा जाए और व्यक्तिगत रूप से बच्चों से क्या चर्चा की जाए? इस प्रक्रिया के अलावा लेखक ने लेखन में विषयवस्तु की स्पष्टता और रचनाशीलता को पुष्ट करने के लिए कुछ और भी अनुभव-आधारित महत्त्वपूर्ण तरीक़े सुझाए हैं। सं.

विद्यालय भ्रमण के दौरान कभी-कभी कुछ शिक्षकों से उनके स्कूलों में बातचीत होती है। वे बच्चों के लेखन कार्य को भी दिखाते हैं और बताते हैं कि बच्चे अपने मन से अच्छा लिख लेते हैं। आगे वे यह भी बताते हैं कि वे अपनी कक्षाओं में बच्चों को लिखने के मौक़े भी देते हैं और बच्चों से कहानियाँ, अनुभव आदि लिखवाते हैं। इस बातचीत में कहीं इस बात का जवाब नहीं मिल पाता कि अच्छा लिखने को कैसे समझे। जब उनसे पूछते है कि बच्चों को लिखने का मौक़ा देने से उनके पढ़ने-लिखने में क्या प्रगति देखने को मिलती है? और उन्हें बच्चों के लेखन के बारे में क्या बातें समझ में आती हैं? तब उनका कहना होता है कि बच्चों की लिखित अभिव्यक्ति बढ़ रही है और बच्चे शुरुआत में कुछ ही वाक्य लिखते थे, अब ज़्यादा वाक्य व पैराग्राफ़ लिख रहे हैं। यहाँ महसूस होता है कि कक्षा में बच्चों को लिखना सिखाने पर योजनाबद्ध व सुविचारित ढंग से काम करने की ज़रूरत है। इसके साथ इस बात की भी आवश्यकता महसूस होती है कि बच्चों की लिखने की प्रगति पर एक समझ के साथ ग़ौर करने और उसे पाठ्यक्रम से जोड़कर देखने पर भी समझ बनाने की ज़रूरत है।

कक्षा में बच्चों के लिखने पर शिक्षकों से बातचीत के दौरान यह भी महसूस हुआ कि वे अभी बच्चों के लेखन को एक 'प्रक्रिया' के रूप में देखने की बजाय शायद मात्र उत्पाद के रूप में देख रहे हैं। यह इस रूप में भी देखा जा रहा है कि बच्चों ने जो लिख लिया

चित्र : शुभम लखेरा

वह अपने-आप में ठीक है, अब इसपर कोई सुधार करने की गुंजाइश नहीं है। यहाँ शिक्षकों से बात की जाती है कि बच्चों के लेखन को एक 'प्रक्रिया' के रूप में देखें और यह समझें कि बच्चे अभी लिखना सीख रहे हैं। इसमें उनकी किस तरह से मदद की जाए, इसपर विचार करें और लेखन को अच्छे-से समझें।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

यह भी देखने को मिलता है कि जब शिक्षक साथी बच्चों के लिखे को देखते हैं तो अकसर ध्यान केवल वर्तनी व व्याकरण की अशुद्धियों पर ही जाता है। जबकि यह ध्यान देने की ज़रूरत है कि उसकी विषयवस्तु व उसके संगठन को भी समझने का प्रयास किया जाए। उसके अनुरूप उन्हें फ़ीडबैक देने का प्रयास किया जाए। इसमें इन बातों का ध्यान रखा जाए कि बच्चों ने इसे किसके लिए लिखा है? और वे किसके लिए लिख सकते हैं? किन जगहों पर दोहराव हो रहा है? उनके लेखन में कहाँ-कहाँ पर बात स्पष्ट नहीं हो रही है? और कहाँ पर इसे और बेहतर बनाया जा सकता है? आदि।

एक बार एक प्राथमिक शाला में जाना हुआ। वहाँ के शिक्षक साथी हमारे अच्छे परिचित हैं। बच्चों के साथ काफ़ी मेहनत से काम करते हैं। उनके विद्यालय में अधिकतर अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चे पढ़ते हैं और वे तीसरी व चौथी कक्षा के बच्चों के साथ काम करते हैं। चौथी कक्षा में क़रीब बाईस बच्चे नामांकित हैं। उस दिन कक्षा में उन्नीस बच्चे उपस्थित थे। शिक्षक से औपचारिक बातचीत के बाद मैं चौथी कक्षा में बैठ गया। उन्होंने बच्चों की हाज़िरी लेने के उपरान्त उन्हें लिखने का कार्य दिया। उन्होंने एकलव्य द्वारा प्रकाशित बच्चों की चित्रात्मक पुस्तक *चूहे को मिली पेंसिल* से दो वाक्य ब्लैकबोर्ड पर लिखे– एक चूहा था। उसे एक पेंसिल मिली। चूहे ने पेंसिल को कुतरना चाहा। पेंसिल ने कहा, 'मुझसे एक चित्र बनाओ'...।

चित्र : शुभम लखेरा

आगे उन्होंने बच्चों से कहा कि आप इन वाक्यों के आधार पर एक कहानी बनाओ। इस तरह से लिखना बच्चों के लिए नियमित बात थी क्योंकि वे अकसर ही लिखते थे। इसके प्रमाण कक्षा में भी मिल जाते थे। उनकी रचनाएँ एक फ़ाइल

में भी संकलित थीं और कुछ को एक चार्ट पर चिपकाकर अख़बार के रूप में कक्षा में लगाया गया था। जब शिक्षक ने यह कार्य बच्चों को दिया तो मेरे मन में विचार आया कि अगर वे कक्षा में बच्चों से इन वाक्यों पर थोड़ी बातचीत कर लेते तो शायद बच्चों को आगे सोचने-विचारने के कुछ और संकेत मिल जाते। हो सकता है कि इसमें शिक्षकों के मन में यह दुविधा रहती हो कि बच्चों को लिखने के बारे में विचार विकसित करने के लिए उनसे कुछ बात की जाए या उन्हें स्वतंत्र ही छोड़ दिया जाए कि वे अपने-आप लिखें। पर मेरा मानना है कि बच्चे अभी लिखना सीख रहे हैं इस कारण बात करने से उन्हें लिखने व विचारों को संगठित करने पर और समझ मिल जाती है। नहीं तो यह देखने को मिलता है कि कुछ बच्चे कुछ ही पंक्तियों के बाद अटक जाते हैं या अपने साथियों का ही लिखा हुआ उतार देते हैं। वैसे भी हम उनके विचार जानने के लिए उनसे बात कर ही रहे हैं और लेखन को एक प्रक्रिया के रूप में देख रहे हैं। हाँ, यह ज़रूर हो सकता है कि कभी-कभार उनसे बिना संकेत दिए हुए लिखवाया जाए। यह शिक्षक पर निर्भर करता है कि वह अपने बच्चों के स्तर को देखते हुए इस बात को तय करें कि कब एवं कैसे लिखवाएँ? साथ ही यह कि बच्चों के लिखने का टास्क किस प्रकार का है? कभी-कभी ऐसा होता है कि टास्क में ही कुछ संकेत दिए होते हैं। उसके आधार पर भी बच्चे लिख सकते हैं।

फिर कक्षा पर वापस लौटते हैं। थोड़ी ही देर में सभी बच्चों ने कहानी को अपने अनुभवों व कल्पना से पूरा किया और शिक्षक ने कापियाँ जाँचकर हस्ताक्षर भी कर दिए। उन्होंने बच्चों से कहा, 'आपने अच्छा लिखा है।' और बात उससे ज़्यादा आगे नहीं बढ़ पाई। परन्तु मैं बच्चों की रचनाओं को थोड़ा गहराई से समझना चाहता था कि इन बच्चों ने क्या लिखा है? ऐसा क्यों लिखा है? और इसे बेहतर कैसे बनाया जा सकता है? इस कारण मैंने शिक्षक से कहा कि अगर वे बच्चों की लिखी हुई कहानियाँ संकलित कर मुझे दे दें तो अच्छा रहेगा। इस तरह बच्चों की रचनाएँ मैंने ले लीं जिसके कुछ उदाहरण निम्नवत हैं (यहाँ वर्तनी में सुधार कर प्रस्तुत किया जा रहा है) :

एक चूहा था। उसे एक पेंसिल मिली। चूहे ने पेंसिल को कुतरना चाहा। पेंसिल ने कहा, 'मुझसे एक चित्र बनाओ'। चूहे ने ग़ुस्से में पेंसिल तोड़ दी। चूहा दूसरी पेंसिल लाया। चूहे ने एक चींटी बनाई।

-फ़िज़ा

एक चूहा था। उसे एक पेंसिल मिली। चूहे ने पेंसिल को कुतरना चाहा। पेंसिल ने कहा, 'मुझसे एक चित्र बनाओ'। चूहे ने कहा मुझसे चित्र नहीं बनेगा। पेंसिल ने कहा जाओ एक काग़ज़ ले आओ। जाते-जाते चूहे को रास्ते में एक चोर मिला। उसने कहा तुम कहाँ जा रहे हो। एक काग़ज़ लेने जा रहा हूँ। उसमें चित्र बनाऊँगा। चूहा कोशिश कर रहा था।

-अंजुम

एक चूहा था। उसे एक पेंसिल मिली। चूहे ने पेंसिल को कुतरना चाहा। पेंसिल ने कहा, 'मुझसे एक चित्र बनाओ'। उसने कहा मैं तो जानवर हूँ, मैं लिखना जानता नहीं हूँ। पेंसिल ने कहा जैसे तुम्हें बनाना हो बना लो। मैं कुछ नहीं कहूँगी। चूहा मान गया। ठीक है फिर तुम्हें अच्छे-से बनाना आ जाएगा। तुम बहुत अच्छा बनाते हो। मेरी सलाह है। तुम्हारी बहन है? चूहे ने कहा मेरे माँ-बाप भी नहीं हैं। पेंसिल ने कहा मेरे घर रहोगे। वह कहने लगा मुझे डाँटोगी तो नहीं। चूहा ख़ुश हो गया। आप कितने अच्छे हो। खाना खाओगे, चलो बहुत भूख लगी है। खाना खाकर पढ़ोगे। चूहा कहने लगा है ठीक है।

-इरम समाँ

एक चूहा था। उसे एक पेंसिल मिली। चूहे ने पेंसिल को कुतरना चाहा। पेंसिल ने कहा, 'मुझसे एक चित्र बनाओ'। चूहे ने पेंसिल से चित्र बना दिया। पेंसिल ने कहा मुझे सही नहीं लग रहा है। दुबारा बनाओ। चूहे ने कहा मुझे ये ठीक लग रहा है। पेंसिल ने कहा मुझे पकड़कर चलाओ। चूहे ने कहा मुझे पेंसिल पकड़ना नहीं आता। पेंसिल ने कहा मैंने तो तुम्हें पकड़ना बता दिया। चूहे ने पेंसिल को पकड़कर पेंसिल को तोड़ दिया। पेंसिल बोली तुमने मुझे क्यों तोड़ दिया। क्योंकि तुमने मुझे चित्र बनाने को कहा।

–गुलाबजहाँ

एक चूहा था। उसे एक पेंसिल मिली। चूहे ने पेंसिल को कुतरना चाहा। पेंसिल ने कहा, 'मुझसे एक चित्र बनाओ'। पेंसिल बोली तुम्हें चित्र बनाना आता है। पेंसिल बोली मुझसे नहीं आता है। पेंसिल बोली जैसा चाहे बना दो। चूहा बोला सही है। अच्छा तुम बताओ मुझे तुम कुतरना क्यों चाहते थे। चूहा बोला मुझे कुछ भी खाने को नहीं मिलता। पेंसिल बोली मुझे भी नहीं मिलता। बच्चे मुझसे ही काम करते हैं। चूहा बोला मैं तो कपड़े और चीज़ कुतर लेता हूँ। जब मुझे कोई पाल लेता तो मुझे रोटी भी मिल जाती तो मैं खा लेता। पेंसिल बोली मुझे देर हो रही है। अब मैं चलती हूँ। चूहा बोला ठीक है फिर मिलेंगे।

–गुलचमन

घर ले जाकर मैंने इन कहानियों को दो-तीन बार पढ़ा और इन रचनाओं में बच्चों के प्रयास को थोड़ी गहराई से देखने पर उनके लेखन में उनके मनोभाव और कल्पनाशीलता दिखाई दी। उनकी कक्षा की बातों की झलक दिखाई पड़ी। अगर उसपर थोड़ा ग़ौर करें तो समझ में आता है कि यदि कक्षा में बच्चों को स्वतंत्र रूप से चित्र बनाने व लिखने को कहा जाता है तो वे यह कहते हैं कि हमसे नहीं बनेगा। यह कई बार अनुभव हुआ है और ऐसा भी लगा कि कुछ बच्चे इससे थोड़ा खीझ जाते होंगे। यही बात उनके लेखन में दिखाई पड़ती है, जब चूहा कहता है, मुझसे नहीं बनेगा। कहीं चूहा पेंसिल भी तोड़ देता है। यह बातें हमें फ़िज़ा, अंजुम, गुलाबजहाँ,

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

गुलचमन के लेखन में दिखाई पड़ती हैं। हमें इसी तरह यह बात भी दिखाई देती है कि अकसर कक्षा में शिक्षक बच्चों से कहते हैं– जैसा बने, वैसा बना लो। यही बात बच्चों के लेखन में भी दिखाई दी। जैसे– इरम का लेखन, जिसमें वह चूहे की तरफ़ से लिखती है कि मुझे बनाना नहीं आता तो पेंसिल उसे कहती है जैसा भी बने बना लो। इस तरह समझ में आता है कि बच्चे किस तरह से कक्षा या घर के अनुभवों को अपने लेखन में आसानी से ले आते हैं और वे अनुभव वाक्य के रूप में आ जाते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि बच्चे भाषा को कैसे पकड़ते हैं और उनका मस्तिष्क किस तरह सक्रिय रहता है। इसी तरह यह भी देखने को मिलता है कि बच्चों के दिमाग़ में भी अच्छे चित्र की एक समझ है। जो चित्र सुघड़, साफ़ सुथरा और वास्तविक जैसा होगा, वह अच्छा चित्र होगा। तभी तो गुलाबजहाँ के लेखन में जब चूहा चित्र बनाता है तो पेंसिल कहती है मुझे सही नहीं लग रहा, दुबारा बनाओ। परन्तु चूहा कहता है, मुझे ये ठीक लग रहा है। इस तरह द्वन्द्व की बातें भी दिख जाती हैं। बच्चों के लेखन में हम यह भी ग़ौर कर सकते हैं कि कक्षा में पढ़ी गई किताबों के वाक्य, आसपास घटी घटनाएँ, चरित्र भी उनके लेखन में दिख जाते हैं। जैसे– फ़िज़ा का चूहा चींटी बनाता है। इरम के लेखन में चूहा कहता है– मेरे माँ-बाप नहीं हैं। इरम और गुलचमन ने लिखने का अच्छा प्रयास किया। उनके लेखन में पात्रों के बीच बातचीत को लिखा गया है।

इस प्रकार की कक्षा प्रक्रिया से यह भी महसूस हुआ कि बच्चों से लेखन कार्य करवाने से पूर्व अगर शिक्षक कुछ बातचीत कर लेते तो शायद बच्चों को कहानी पर और सोचने का मौक़ा मिलता। इस तरह से उन्हें लिखने की रूपरेखा बनाने में मदद मिल जाती। यह बहुत ज़रूरी होता है जिसमें बच्चों के अनुभव व विचार सुनने को मिलते हैं और उसपर बात हो पाती

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

है। दूसरी बात यह है कि यदि बच्चों के लिखे हुए पर कक्षा में बातचीत होती तो भी बच्चों को सोचने-समझने का मौक़ा मिलता जो उनके आगे के लिखने में मददगार होता। तीसरी बात अगर बच्चों के लिखे हुए पर उन्हें एक फ़ीडबैक दिया जाता तो बच्चों को अपने लेखन को फिर से देखने का मौक़ा मिलता। सम्पादन की बात होती। फिर शायद वे आगे और बेहतर लिख पाते।

इस तरह से इस क्रम में लेखन पूर्व संवाद, लेखन के दौरान इनपुट, लेखन पर संवाद, फ़ीडबैक एवं सुधार, पुनर्लेखन व सम्पादन की बात हो जाती। मुझे लगता है कि इस तरह के नियमित अभ्यासों से बच्चों को लिखने की इन प्रक्रियाओं की जानकारी मिलती और उन्हें एहसास होता कि वे अपने लिखे हुए को और बेहतर बना सकते हैं। इसमें कुछ और जोड़ सकते हैं या कुछ घटा सकते हैं।

अब हम बच्चों को उक्त उदाहरणों पर दिए जाने वाले सम्भावित फ़ीडबैक के बिन्दुओं को समझने का प्रयास करते हैं :

फ़िज़ा ने लिखा, चूहे ने ग़ुस्से में पेंसिल तोड़ दी। यहाँ यह स्पष्ट नहीं हुआ कि उसने पेंसिल क्यों तोड़ी? फिर उसने लिखा, चूहा दूसरी पेंसिल लाया। वह दूसरी पेंसिल क्यों लाया? जब उसने पहली पेंसिल तोड़ दी। फिर चूहे ने चींटी

बनाई। चींटी कैसे बनाई? उससे आगे क्या हुआ? ये बातें फ़िज़ा और लिखती तो उसे अपने लेखन को और सुगठित करने में मदद मिलती।

अंजुम ने अन्त में यह लिखा कि चूहा कुछ कोशिश कर रहा था। इसमें कोशिश करने के बाद आगे क्या हुआ? इसपर अंजुम को सोचने के लिए कहा जा सकता है।

इरम ने जो कहानी बनाई उसमें यह स्पष्ट नहीं होता कि चूहे ने चित्र बनाया कि नहीं। उसने यह बात नहीं लिखी। उसका इस ओर ध्यान दिलाया जा सकता था। उसमें माँ-बाप भी आ गए। उस से इन बातों को भी स्पष्ट करने के लिए बात करनी पड़ेगी जिससे उसके लिखे हुए में एक अर्थ निर्मित हो।

गुलाबजहाँ से यह बात की जा सकती है कि जब चूहे ने पेंसिल का चित्र बना दिया तो उसने ऐसा क्या बनाया जो पेंसिल को ठीक नहीं लगा, जबकि चूहे को यह ठीक लग रहा था। तो क्या देखकर चूहे ने कहा कि उसे ठीक लग रहा है? इस तरह से वह आगे और सोच सकती है और लेखन को बेहतर बनाने का प्रयास कर सकती है।

गुलचमन ने लिखा, पेंसिल बोली मुझे नहीं आता है। तब आगे उसने क्या बनाया? आगे कुतरने की बात भी आई। उससे इन दोनों बातों को स्पष्ट करने के बारे में बात करनी पड़ेगी। इस तरह से अन्य बच्चों से भी उनके लिखे हुए पर बातचीत की जा सकती है। अकसर होता यह है कि बच्चों से लिखवाने का काम तो कक्षा में किया जाता है पर उसपर हम उनसे बात नहीं कर पाते, समालोचनात्मक फ़ीडबैक नहीं दे पाते, न ही हम उनके लेखन को सुधार के नज़रिए से देख पाते हैं।

कुल मिलाकर कहने का अर्थ यह है कि हम बच्चों से लिखने के उपरान्त इस तरह से भी बात करें जिससे उन्हें आगे और सोचने का मौक़ा मिले और उनके लेखन में सुधार हो व एक सुगठता दिखाई पड़े। बच्चों के लेखन में सुधार के अन्तर्गत वर्तनी व व्याकरण की बात भी आती है। शायद इसपर हमारा ध्यान सबसे पहले जाता भी है। इनपर भी बच्चों से बात कर उसमें सुधार के प्रयास किए जा सकते हैं परन्तु मूलभूत सुधार विषयवस्तु की स्पष्टता व कल्पनाशीलता को बढ़ाने के होने चाहिए। वर्तनी व व्याकरण में सुधार की बात सबसे अन्त में आती है, और वर्तनी का सुधार पढ़ने-लिखने के सतत क्रम में बच्चे धीरे-धीरे स्वयं कर लेते हैं।

इसके साथ ही इस बात पर पूरी सहमति है कि उन्हें लिखने के विविध मौक़े देने चाहिए और उन्हें यह एहसास दिलाना चाहिए कि वे किसके लिए और क्यों लिख रहे हैं। साथ ही यह भी समझने की आवश्यकता है कि बच्चों के लिखने में समृद्धता तभी आएगी जब वे कक्षा में नियमित रूप से पढ़ेंगे। इसलिए ज़रूरी है कि बच्चों के लिखने के लिए नए विचार देने और उनकी शब्दावली को समृद्ध करने के लिए नियमित तौर पर कक्षा में उन्हें स्वतंत्र रूप से पढ़ने का मौक़ा दिया जाए। शिक्षक भी समझें कि पढ़ना और लिखना आपस में जुड़ी प्रक्रियाएँ हैं जो कि एक दूसरे को समृद्ध करती हैं।

अन्त में ज़रूरी बात यह भी लगती है कि प्राथमिक कक्षाओं में आमतौर पर यह देखने को नहीं मिलता है कि शिक्षक भी किसी चित्र, घटना या अनुभव पर ख़ुद लिखकर बच्चों को दिखाएँ। ऐसा करने से भी बच्चों को नए विचार मिलते हैं और लिखने की समझ बढ़ती है। इसी तरह, शिक्षक बच्चों के साथ कुछ अच्छे लेखन के नमूने भी दिखा सकते हैं। उसपर चर्चा कर सकते हैं कि इस लेखन में क्या अच्छा लग रहा है। बच्चों के साथ इस तरह के प्रयासों से ही बच्चों को लिखना सिखाने में और जीवन्तता आ पाएगी।

कमलेश चंद्र जोशी प्राथमिक शिक्षा से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयों– शिक्षक शिक्षा, बाल साहित्य, प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता आदि में गहरी रुचि। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर में कार्यरत।
सम्पर्क : kamlesh@azimpremjifoundation.org

स्कूली शिक्षा में जनजातियों की भागीदारी

रूमानियत से परे कुछ विचारणीय मुद्दे

अमित कोहली

सभी को शिक्षा मिले यह विचार काफ़ी मायने रखता है लेकिन इसके साथ जुड़े महत्त्वपूर्ण सवाल यह हैं कि क्या सभी को एक जैसी शिक्षा मिले? और यह भी कि शिक्षित करने के माध्यम, तरीक़े कैसे हों? इस लेख में लेखक देश में जनजातियों के लिए किए गए शिक्षा के प्रयासों को सामने रखते हैं और कहते हैं कि ऐसे कई सरकारी और ग़ैर-सरकारी प्रयासों के बावजूद इन समुदायों के अधिकांश बच्चे उच्च शिक्षा तक नहीं पहुँच पाते। वे इस सन्दर्भ में स्कूल के मौजूदा ढाँचे, उसमें अपनाए जाने वाले शिक्षण के तरीक़ों, शिक्षण की विषयवस्तु आदि पर चर्चा करते हैं और कहते हैं कि जनजातियों की शिक्षा को लेकर इन सभी पर पुनर्विचार की ज़रूरत लगती है। लेख के अन्त में वे इस दिशा में क्या किया जा सकता है उसपर भी अपने विचार रखते हैं। सं.

भारत के 28 राज्यों व 8 संघ क्षेत्रों के तक़रीबन 15 फ़ीसदी भू-भाग पर अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती हैं। जनजातियों की आबादी भारत की कुल जनसंख्या का 8.6 फ़ीसदी है[1], जो मैदान, जंगल, पहाड़ जैसे विविध भौगोलिक और पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में रहती है। कुल ग्रामीण आबादी का 11.3 फ़ीसदी और शहरी आबादी का 2.8 फ़ीसदी हिस्सा अनुसूचित जनजातियाँ हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी सुविधाएँ, आदि पैमानों पर जनजातियाँ भारत के अन्य सामाजिक समुदायों से पिछड़ी हुई हैं। इस पिछड़ेपन के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारण हैं। जनजातीय समुदायों की बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच, आय, सामाजिक-आर्थिक हैसियत, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे मानकों पर पर्याप्त भिन्नता नज़र आती है।

विकास की मुख्यधारा और 'उनका' सम्मिलन

औपनिवेशिक काल में अँग्रेज़ों ने जनजातियों के विकास के लिए कोई ख़ास प्रयास नहीं किए। रेल की पटरियाँ बिछाने और औद्योगिक इस्तेमाल के लिए वनों की बेतहाशा कटाई हुई। खेती का रकबा बढ़ाने के लिए भी जंगल काटे गए। जनजातीय समूहों के विरोध को बेरहमी से कुचला गया। अप्रत्यक्ष शासन और सैनिक दमन की वजह से जनजातीय बहुल क्षेत्रों में कृषि, वाणिज्य और उद्योग के साथ-साथ स्वास्थ्य और शिक्षा का वैसा आधुनिकीकरण नहीं हुआ, जैसा अँग्रेज़ शासित अन्य प्रान्तों का हुआ। हालाँकि, ईसाई मिशन ने जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य के ज़रिए जनकल्याण के काम किए। मोहनदास करमचन्द गाँधी (1869-1948) ने अपनी 18 बिन्दुओं वाली रचनात्मक कार्यों की सूची में जनजातियों के विकास को शामिल किया। गाँधी के समकालीन ठक्कर बप्पा (1869-1951) अस्पृश्यता निवारण पर काम करते हुए भील जनजाति के कल्याण के लिए भी लम्बे समय तक जुटे रहे। पेशे से वकील शरद चन्द्र राय (1871-1942) ने जनजातियों के अधिकारों की रक्षा के लिए बहुत काम किया। मिशनरी से मानवविज्ञानी बने वेरियर एल्विन (1902-1964) ने जनजातीय जीवन के कई छिपे हुए पहलुओं

1. चन्द्रमौली, सी (2013, मई)। *शैड्यूल्ड ट्राइब्स इन इंडिया — एज़ रीविल्ड इन सेंसस 2011।* गृह मंत्रालय, भारत सरकार।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

को उजागर करके मुख्यधारा के लोगों को चकित किया। दीर्घकालीन शोध के आधार पर एल्विन का मानना था कि जनजातियों का विकास उनकी अपनी प्रतिभा-योग्यता की धारा को लेकर होना चाहिए, उसके विपरीत या समानान्तर नहीं। जबकि गोविन्द सदाशिव घुर्ये (1893-1983) जैसे समाजशास्त्रियों ने इस विचार का विरोध करते हुए कहा कि जनजातियों का मुख्यधारा में पूर्ण सम्मिलन ही उनके कल्याण का मार्ग है।[2] वेरियर एल्विन ने आज़ादी के बाद भारत की नीतियों पर गहरा असर डाला। जवाहरलाल नेहरू ने उनके विचारों को स्वीकार करते हुए जनजातीय विकास की योजनाएँ बनाईं, जिनमें परम्परा, रीति-रिवाज और आचार-व्यवहार को बरक़रार रखते हुए मुख्यधारा के साथ नियंत्रित और योजनाबद्ध सम्मिलन का रूमानी विचार अन्तर्निहित था, जो आज़ादी के बाद तमाम नीतियों और योजनाओं में एक सम्भ्रम के रूप में नज़र आता है।

जनजातीय परम्परा, जीवन शैली, संस्कृति आदि का जितना भी गुणगान किया जाए, समूचे राष्ट्र के लिए जब योजनाएँ बनती और लागू की जाती हैं तो 'व्यापक हित' सामने रखा जाता है। हितों में टकराव की स्थिति में 'व्यापक' का ध्यान रखने के क्रम में 'सीमित' की उपेक्षा हो जाती है। विकास योजनाओं में जनजातियों की यही गति हुई है। आज अधिकांश जनजातियों का न तो तथाकथित मुख्यधारा में पूर्ण सम्मिलन हो पाया है और न ही जनजातीय संस्कृति, जीवन शैली और मूल्यों-मान्यताओं को आधुनिकीकरण के प्रभावों से सुरक्षित रखा जा सका है।[3]

विकास का अमल

विविध जनजातियाँ सामाजिक-सांस्कृतिक व आर्थिक विकास के अलग-अलग पायदानों पर हैं। किन्हीं क्षेत्रों में कुछ जनजातीय समूह आधुनिक खेती को अंगीकार कर चुके हैं तो कहीं किसी अंचल में अब भी झूम खेती या शिकार व संग्रहण जारी है। शिक्षा तक सबकी पहुँच और उसका लाभ लेने के मामले में भी यह फ़र्क़ है। उचित होगा कि इस विविधता को ज़ेहन में रखकर ही हम स्थिति का विश्लेषण करें।

आज़ादी के साढ़े छह दशक बीत जाने के बाद भी अनुसूचित जनजातियों की लगभग आधी आबादी तक बिजली नहीं पहुँची है।[4] बिजली के न होने से बच्चों की पढ़ाई प्रभावित होती है और रेडियो-टेलीविज़न, मोबाइल फ़ोन जैसे संचार माध्यमों का उपयोग असम्भव हो जाता है। कोरोना महामारी के दौर में ऑनलाइन शिक्षण तक अनुसूचित जनजातियों की पहुँच कम होने का एक कारण बिजली का न होना भी है। बुनियादी सुविधाओं के अभाव या अलभ्यता की वजह से उस समुदाय को अतिरिक्त ऊर्जा, समय और / या धन ख़र्च करना पड़ता है, जो अन्यथा बचाया जा सकता था और उसका उपयोग शिक्षा प्राप्त करने, नए कौशल सीखने व जीवन स्तर उन्नत बनाने के लिए किया जा सकता था। इस अर्थ में बुनियादी सुविधाओं का अभाव अनुसूचित जनजाति जैसे वंचित समुदायों को तंगहाली के दुष्चक्र में उलझाए रखता है और सकारात्मक सामाजिक गतिशीलता के मौक़े छीन लेता है। इसे हम अशिक्षा और वंचना के पुनरुत्पादन का भँवर भी कह सकते हैं।

---

2. सहाय, बी एन (1998)। 'एप्रोच टू ट्राइबल वेलफ़ेयर इन पोस्ट इन्डिपेन्डेन्स एरा' *इंडियन एन्थ्रोपोलॉजिस्ट*, 28(1), 73-81।
3. संविधान का 73वाँ संशोधन, पंचायत (अनुसूचित क्षेत्र में विस्तार) अधिनियम, 1996।
4. चन्द्रमौली, सी (2013, मई)। *शैड्यूल्ड ट्राइब्स इन इंडिया — एज़ रीविल्ड इन सेंसस 2011*। गृह मंत्रालय, भारत सरकार।

तालिका 1 : विविध शैक्षिक मापदण्डों पर अनुसूचित जनजातियों की स्थिति[5]

संकेतक	सम्पूर्ण भारत	अनुसूचित जनजाति
साक्षरता दर (कुल)	73.0%	59.0%
सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) (उच्चतर शिक्षा, 18–23 वर्ष)[6]	26.3%	17.2%
कक्षा बारहवीं पास करने की दर (2016) (सभी बोर्ड)	77.9%	68.2%
कक्षा दसवीं पास करने की दर (2016) (सभी बोर्ड)	78.7%	65.0%

तालिका 2 : अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों का सकल नामांकन अनुपात व शालात्याग की दर (2016–17)[7]

स्तर	सकल नामांकन अनुपात	शालात्याग की दर (बालक)[8]	शालात्याग की दर (बालिका)[9]
प्राथमिक – कक्षा 1–5 (6–10 वर्ष)	101.6	8.57	8.51
उच्च प्राथमिक – कक्षा 6–8 (11–13 वर्ष)	95.7	9.46	9.70
माध्यमिक – कक्षा 9–10 (14–15 वर्ष)	73.5	8.86	8.90
वरिष्ठ माध्यमिक– कक्षा 11वीं–12वीं (16–17 वर्ष)	42.7	27.41	26.51
उच्च शिक्षा (18–23 वर्ष)	15.4	8.94	7.87

क्रमशः अगली कक्षाओं में जाते हुए सकल नामांकन घटने और शालात्याग की दर बढ़ने के आर्थिक कारण ज़रूर होते हैं, लेकिन यह कारक हर जाति समूह के ग़रीब विद्यार्थियों पर लागू होगा। जबकि अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए ग़रीबी के अलावा एक बड़ा कारण शाला-संस्कृति से अलगाव भी है। अनुसूचित जनजातियों के जो विद्यार्थी तमाम प्रतिकूलताओं के बावजूद 10वीं और 12वीं तक शालाओं में बने रहते हैं, उनमें से क्रमशः 65 और 68.2 फ़ीसदी बच्चे ही बोर्ड परीक्षाओं में सफल हो पाते हैं। कुल विद्यार्थियों के औसत से इन आँकड़ों का फ़र्क़ निर्विवाद रूप से प्रमाणित करता है कि अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के लिए शाला में बने रहना और बोर्ड परीक्षाओं में सफल होना भारत के औसत विद्यार्थी की तुलना में कठिन है।

हर पैमाने पर हम देख सकते हैं कि अनुसूचित जनजातियाँ सम्पूर्ण भारत से पिछड़ी हुई हैं। अकादमिक पिछड़ेपन के कारणों की तह तक पहुँचने के लिए हमें जनजातियों के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं के साथ-साथ उनके विकास के लिए किए जा रहे प्रयासों में अन्तर्निहित मान्यताओं, धारणाओं और समझ को भी देखना होगा।

स्कूली शिक्षा : आधुनिकीकरण की मुहिम

बकौल *इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटैनिका,* आधुनिक होने का अर्थ है वैज्ञानिक सोच और तार्किकता का उत्तरोत्तर विकास, नौकरशाही का आविर्भाव, तेज़ी से शहरीकरण, राष्ट्र-राज्यों का उदय और वित्तीय लेनदेन का विकास।[10]

ऐतिहासिक वास्तविकता है कि स्कूल नामक संस्था का जन्म, विकास एवं सार्वभौमिकरण औद्योगीकरण के समानान्तर हुआ है। इसका उद्देश्य नौनिहालों को आधुनिक सामाजिक-

5. जनजातीय कार्य मंत्रालय (2021)। वार्षिक रिपोर्ट 2019–20। भारत सरकार।
6. उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (2019, अगस्त)। *ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन 2018–19*।
7. जनजातीय कार्य मंत्रालय (2021)। वार्षिक रिपोर्ट 2019–20। भारत सरकार।
8. कक्षावार आँकड़े, उम्र लागू नहीं, आँकड़े प्रतिशत में।

राजनैतिक मूल्यों में दीक्षित करना, आधुनिक औद्योगिक उत्पादन, वितरण एवं उपभोग की प्रक्रिया में रचनात्मक योगदान देने के लिए प्रशिक्षित करना और राष्ट्र-राज्य की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में विचारशील और सहभागी नागरिक की भूमिका निभाने के लिए तैयार करना है। समाज के हर वर्ग, हर हिस्से तक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने वाले तमाम अभियान समाज को आधुनिक बनाने की मुहिम चला रहे हैं। किसी भी राष्ट्र-राज्य में लोकतांत्रिक शासन पद्धति की सफलता इस बात पर निर्भर होती है कि मतदाता एक 'व्यक्ति' के रूप में मतदान करे। फ्रांसीसी क्रान्ति के बहुचर्चित दस्तावेज़ *पुरुष एवं नागरिक अधिकार घोषणापत्र* के सभी सत्रह बिन्दु व्यक्ति और व्यक्ति के रूप में नागरिक की बात करते हैं। इसी तरह, एडम स्मिथ (1723-1790) अपनी पुस्तक *एन इन्क्वायरी इन्टू द नेचर एंड कॉज़ेज़ ऑफ़ द वेल्थ ऑफ़ नेशन्स* (1776) में व्यक्ति और बाज़ार के सम्बन्धों पर कहते हैं कि आर्थिक समृद्धि के लिए 'स्वतंत्र व्यक्ति' होना बेहद ज़रूरी है। यानी, लोकतंत्र में मतदाता के रूप में और बाज़ार में ख़रीददार व श्रमिक के रूप में 'व्यक्ति' का अस्तित्व अपरिहार्य है। जबकि जनजातियों में समुदाय और नातेदारी महत्त्वपूर्ण है, सांस्कृतिक रूप से वे स्वयं का विचार एक 'व्यक्ति' के रूप में नहीं कर सकते।[11] स्कूल और विद्यार्थी, दोनों की सफलता इसी में है कि भोजन जुटाने या खेती करने के तौर-तरीक़े और रहन-सहन जैसी भौतिक तब्दीलियों से लेकर भाषा और सोच विचार के ढाँचों जैसी अमूर्त मानसिक प्रक्रियाओं और व्यक्तिवाद व स्वतंत्रता जैसे मूल्यों तक में 'आधुनिकता' के अनुकूल परिवर्तन घटित हों।

समाज को 'आधुनिक' बनाने के स्कूल के मिशन और जनजातीय विद्यार्थी की सांस्कृतिक पहचान के बीच एक द्वन्द्व नज़र आता है। ऐसा नहीं है कि इस द्वन्द्व को पहचाना नहीं गया है या समाधान की कोशिशें नहीं की जा रही हैं। व्यक्ति, संस्था और शासन के स्तर पर इसपर विचार किया जा रहा है और स्कूली शिक्षा को जनजातियों से आने वाले विद्यार्थियों के लिए भी समावेशी बनाने की कोशिशें की जा रही हैं।

किसका, किसमें समावेश ?

समावेशी शिक्षा एक खुली और व्यापक संकल्पना है, जिसमें विविध सोच, समझ और पद्धतियाँ शामिल हैं। मोटेतौर पर कहा जा सकता है कि समाज के विविध तबक़ों के बच्चों को स्कूल में परायापन न लगे, इसलिए की जाने वाली सुविचारित कोशिशों को समावेशी शिक्षा कहते हैं।

जो समुदाय या उनके भाग, 'पिछड़े' माने जाते हैं, उन्हें आधुनिकता की चौखट में आवृत्त करने का सुचिन्तित और संवेदनशील प्रयास समावेशी शिक्षा के रूप में फलीभूत होता है। शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों से लेकर शाला की कार्य संस्कृति तक सभी में अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के समावेशीकरण का अर्थ उन्हें शाला के व्यापक उद्देश्यों के अनुकूल बनाना और उनके जीवन के हर पहलू का आधुनिकीकरण करना है। इस रूप में समावेशी शिक्षा 'पिछड़े समुदायों' के आधुनिकीकरण का लक्ष्य साधने के औज़ार के रूप में काम करती है। यह सवाल पूछा नहीं जाता कि स्कूली शिक्षा में हम किसका समावेश कर रहे हैं और किस उद्देश्य से? आधुनिकता के बहते प्रवाह में यह सवाल पूछना भी बेमानी हो जाता है कि वह समाज ख़ुद समावेशीकृत होना चाहता भी है या नहीं? कोई नहीं पूछता कि एक संस्था के रूप में शाला ख़ुद जनजातीय मूल्यों, मान्यताओं और जीवनदृष्टि के अनुकूल होने या स्वयं का जनजातीयकरण होने देने के लिए प्रस्तुत है या नहीं? क्या समावेशीकरण एकतरफ़ा हो सकता है?

9. कक्षावार आँकड़े, उम्र लागू नहीं, आँकड़े प्रतिशत में।
10. स्निडेयर, एस एल (2016, मई 20)। मॉडर्निटी. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका। https://www.britannica.com/topic/modernity.
11. जनजातीय समूहों में मौजूद नातेदारी को सामन्ती ढाँचे की नातेदारी से अलग देखे जाने की ज़रूरत है। जनजातियों में मनुष्यों का आपसी सम्बन्ध शोषण या शासन पर आधारित नहीं होता, जबकि सामन्ती व्यवस्था इसी पर टिकी होती है।

भाषा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ' विषय पर गठित *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र* (जून 2010) कहता है :

> *"यद्यपि भारत में राज्यों की स्थापना भाषा के आधार पर हुई है तो भी अजजा की राजनीतिक शक्तिहीनता ने जनजातीय भाषाओं पर आधारित राज्यों के निर्माण की रोकथाम कर दी। बड़े राज्यों में उन्हें अल्पसंख्यक का दर्जा देकर सीमित कर दिया गया और विद्यालय में राज्य की भाषा सीखने को बाध्य किया गया।"* [12]

आज़ाद भारत में, उत्तर-पूर्वी राज्यों को छोड़कर, जनजातीय अस्मिता और उनकी भाषा को स्कूली शिक्षा में सम्मानजनक स्थान नहीं मिला है। भाषाओं के आधार पर राज्यों के गठन की वजह से जनजातीय भाषाएँ हाशिए पर सिमट गईं। अकसर बच्चों के घर की भाषा अलग होने की वजह से अकादमिक क्षमताओं के विकास के साथ-साथ स्कूल में टिके रहने की अवधि पर नकारात्मक असर पड़ता है। समाधान के रूप में बच्चों के घर की भाषा को स्कूल में जगह देने की कोशिशें की जा रही हैं।

बहुभाषी कक्षा को समावेशी व समृद्ध कक्षा माना जाता है। ग्रामीण पृष्ठभूमि के शिक्षक-शिक्षिका आमतौर पर दो भाषाओं में संवाद कर सकते हैं, इसमें अधिकांशतया एक स्कूल की माध्यम भाषा होती है और दूसरी उनके घर की भाषा। स्कूली शिक्षा के प्रसार की वजह से द्विभाषी शिक्षकों की तादाद सिमटती जा रही है। अधिकांश जनजातीय क्षेत्रों में एक ही जनजाति

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

सघन रूप से निवास नहीं करती। जहाँ भील हैं वहाँ भिलाला भी रहते हैं, जहाँ गोण्ड हैं वहाँ कोरकू और भारिया भी हैं। घर से विविध भाषाएँ लेकर आने वाले बच्चे वास्तविक अर्थ में बहुभाषी कक्षा की रचना करते हैं। विरले ही ऐसी शिक्षिकाएँ होंगी जो तीन या अधिक भाषाओं में बातचीत कर सकती हैं। ऐसे में बहुभाषी शिक्षण प्रक्रिया अकादमिक विमर्श का एक महँगा अलंकार सिद्ध होती है, जो जनजातीय इलाक़ों के हर सार्वजनिक स्कूल को मुहैया करा पाना नामुमकिन है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ' विषय पर गठित *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र* (जून 2010) तस्दीक करता है कि भारत के कई इलाक़ों में ऐसे गाँव हैं जहाँ एक से अधिक जनजातीय भाषाएँ बोली जाती हैं। लेकिन फ़ोकस समूह की सिफ़ारिश बहुभाषी कक्षा के अव्यवहारिक अमल की न होकर द्विभाषी कक्षा की है।[13] हालाँकि, यही फ़ोकस समूह जनजातीय भाषाओं के सम्मान की ज़रूरत को रेखांकित करते हुए कहता है : "अजजा की भाषाओं की यह अवमानना अजजा के ज्ञान और सांसारिक दृष्टि की अवमानना का भी कारण बनती है।"[14]

---

12. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली। (2010)। 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ'। *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र*, 26।
13. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली। (2010)। 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ'। *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र, 32।*
14. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली। (2010)। 'अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों की समस्याएँ'। *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र*, 26-27।

बहुभाषी शिक्षण प्रक्रिया में अन्तर्निहित है कि शुरुआती वर्षों में बच्ची को शाला के माहौल, संस्कृति, आदि से जुड़ने में मदद की जाए। जनजातीय भाषा परिवेश की बच्ची को 2-3 वर्षों के भीतर स्कूल की माध्यम भाषा आत्मसात करनी होगी, इसके अलावा उस बच्ची के पास कोई विकल्प नहीं है क्योंकि अगली कक्षाओं में राज्य की माध्यम भाषा और उच्च शिक्षा में अँग्रेज़ी का ज्ञान अनिवार्य होगा। प्राथमिक स्तर के बाद बहुभाषी शिक्षण की गुंजाइश नहीं है। बहुभाषी शिक्षण प्रक्रिया के ज़रिए बच्चों को घर की भाषा छोड़कर स्कूल की भाषा आत्मसात कराने की अस्वाभाविक और कष्टकारी प्रक्रिया को सरल बनाने की कोशिश की जाती है। इस अर्थ में बहुभाषी शिक्षण पद्धति विविध भाषाओं को बोलने वाले बच्चों को स्कूल की माध्यम भाषा तक लेकर आने का एक फ़नलनुमा औज़ार है। एक तरह से यह कुनैन की कड़वी गोली को मीठी चाशनी में लपेटकर खाने लायक़ बनाने की प्रक्रिया भी है।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

बच्ची के घर की भाषा या बहुभाषी शिक्षण पद्धति के ज़रिए प्राथमिक कक्षाएँ मनोरंजक ज़रूर हुई हैं। ऊपर हमने सकल नामांकन दर व शालात्याग और बोर्ड परीक्षाओं में प्रदर्शन को देखा कि कैसे प्राथमिक शिक्षा का चरण पूरा करते ही जनजातीय विद्यार्थियों का शाला में बने रहना और अच्छा प्रदर्शन करना अधिकाधिक मुश्किल होता जाता है। आँकड़े जो तस्वीर दिखाते हैं, उसके पीछे बेशक अनेक कारण हैं और उसे किसी एक वजह में समेट देना उचित नहीं। लेकिन, आँकड़े यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि जनजातीय विद्यार्थियों के शाला में समावेशन के माक़ूल नतीजे नहीं मिल रहे हैं।

उच्चतर कक्षाओं में पाठ की भाषा उत्तरोत्तर परिमार्जित होती जाती है। जनजातीय समुदायों से आने वाले बच्चों के घर और परिवेश में उस परिमार्जित भाषा का न तो कोई स्थान होता है, न अवसर और उपयोगिता, लिहाज़ा ऊँची कक्षाओं में जनजातीय विद्यार्थियों के लिए भाषा की कठिनाई बढ़ती जाती है और वे विषयवस्तु समझ नहीं पाते। उच्चतर कक्षाओं में जनजातियों के विद्यार्थियों का प्रदर्शन क्रमशः कमज़ोर होने का यह एक बड़ा कारण है। ज़रूरी है कि यहाँ भाषा को सिर्फ़ घर की भाषा बनाम स्कूल की भाषा या व्यवहारिक भाषा बनाम मानक भाषा के सीमित सन्दर्भ में देखने के बदले भाषा के भीतर मौजूद सत्ता और वर्ग विभाजन की परतों को भी देखने की कोशिश की जाए। बासिल बर्नस्टाइन (1924-2000) ने भाषा के कोड सिद्धान्त पर शोध किया है। भाषा में अर्थबोध के ढाँचों को वे 'कोड' कहते हैं। शोध के आधार पर बर्नस्टाइन कहते हैं कि श्रमिक वर्ग की भाषा सन्दर्भ-आधारित और विशिष्टतापरक होती है, जिसे वे 'सीमित कोड' कहते हैं; इसके विपरीत मध्यम वर्ग की भाषा सन्दर्भ से स्वतंत्र और सार्वभौमिक होती है, जिसे वे 'विस्तृत कोड' कहते हैं।[15]

हमने ऊपर चर्चा की कि अनुसूचित जनजाति की विद्यार्थी को प्राथमिक कक्षाओं में अपने घर की भाषा में शिक्षण के अवसर मिलने पर भी

15. सेडोवनिक, ए (2001)। 'बासिल बर्नस्टाइन : प्रॉसपेक्ट्स'। *द क्वार्टरली रिव्यू ऑफ़ कम्पैरेटिव एज्युकेशन, XXXI(4)*, 687।

अगले 2-4 बरसों में उसे प्रादेशिक भाषा और फिर माध्यमिक कक्षाओं की सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद अँग्रेज़ी आत्मसात करनी होती है। यहाँ भाषा का तात्पर्य शब्दकोशीय अर्थ-ग्रहण तक सीमित नहीं है, बल्कि जैसा बर्नस्टाइन इंगित करते हैं, उस बालिका को अगर स्कूल में बने रहना और उच्च शिक्षा प्राप्त करनी हो तो पहले प्रादेशिक और फिर अँग्रेज़ी भाषा में अर्थबोध के ढाँचे एवं विस्तृत कोड को आत्मसात करना होगा। यानी उसे अपने भाषाबोध के सन्दर्भ-आधारित और विशिष्टतापरक 'सीमित कोड' वाले ढाँचे से बाहर निकलकर प्रादेशिक और अँग्रेज़ी भाषा के सन्दर्भ से स्वतंत्र और सार्वभौमिक 'विस्तृत कोड' वाले भाषाई स्वरूप से अन्तरंग होना होगा। पाठकों को पढ़ने में यह जितना कठिन लग रहा है, उससे कहीं अधिक मुश्किल भाषाओं के वर्ग विभाजन की खाई को सफलतापूर्वक पार करके सत्ता की भाषा को व्यवहार में अंगीकार करना है।

मसला भाषाओं की सामाजिक हैसियत का भी है। जनजातीय समुदाय उत्पीड़न, दमन और उपेक्षा का शिकार रहे हैं। ज़ाहिर है कि जनजातीय भाषा बोलने वाले व्यक्तियों की सामाजिक-राजनैतिक हैसियत मानक कन्नड़, हिन्दी या अँग्रेज़ी बोलने वाले व्यक्तियों से कम मानी जाती है। शालेय आचार-व्यवहार, संस्कृति, पाठ्यपुस्तकें और अधिकांशतया शिक्षकों की भाषा वही होती है जो उत्पीड़क और दमनकर्ता की रही है। अनुसूचित जनजाति की विद्यार्थी से अपेक्षा की जाती है कि शाला में आते ही, या अगर वहाँ बहुभाषी शिक्षा पद्धति है तो फिर 2-4 बरसों में, अपनी भाषा छोड़कर सत्ता की भाषा अपना ले। शोषित वर्ग द्वारा अपने उत्पीड़क का भाषाबोध अपनाने की प्रक्रिया से गुज़रते हुए उसे न सिर्फ़ हज़ारों बार विफलता और निराशा के दौर से गुज़रना होता है, बल्कि सहपाठियों एवं शिक्षकों की नज़रों में उपहास का पात्र बनना और अपमानित भी होना होता है।

ज्ञान और अज्ञान

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के विषय पर बना *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र* कहता है : "शिक्षा के लक्ष्य समाज की अपेक्षित सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से निर्देशित होते हैं।"[16] हम जानते हैं कि ऐतिहासिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं के ज़रिए जनजातीय समुदाय हाशियाकृत किए गए हैं। शिक्षा के लक्ष्य जिन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से निर्धारित होते हैं, उनमें जनजातीय समुदायों की हैसियत सीमित है। ज़ाहिर है कि उनके पारम्परिक ज्ञान को मान्यता मिलना आसान नहीं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 को भारत के शैक्षिक इतिहास में एक प्रगतिशील क़दम माना जाता है। उसके तमाम दस्तावेज़ों

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

16. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली। (2009)। 'पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें'। *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र,* 25।

में जनजातियों, उनके आचार-व्यवहार, संस्कृति, परम्परा, भाषा, ऐतिहासिक शोषण, अलगाव, विस्थापन आदि का सहानुभूतिपूर्वक उल्लेख है। इन समुदायों से आने वाले बच्चों के स्कूली शिक्षा से वंचित रहने, पिछड़ने और बाहर होने के प्रति सरोकार है और ऐसे बच्चों के स्कूली वातावरण में समावेशीकरण के अनुकूल माहौल बनाने, पाठ्यपुस्तकों के पाठों और चित्रों को पूर्वाग्रह मुक्त और समतामूलक होने, स्कूल के उत्सवों-त्योहारों, आदि में प्रतीकों को समावेशी बनाने व शिक्षिकाओं से संवेदनशील होने की अपेक्षाओं का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। लेकिन जनजातियों के मूल्यबोध, उदाहरणार्थ– 'सामुदायिकता' के बदले आधुनिक मूल्य 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' व 'लोकतंत्र', को शिक्षा के लक्ष्यों में स्थान मिला है। पाठ्यचर्या में उस बच्ची के पारम्परिक ज्ञान का कोई स्थान नहीं है, जो उसके जनजातीय समुदाय में सदियों से विकसित होता रहा है। पाठ्यचर्या में सिर्फ़ यही कोशिश नज़र आती है कि जनजाति से आने वाली बच्ची कैसे आधुनिक ज्ञान और आधुनिक मूल्यों को अंगीकार कर ले। इसे समावेशीकरण का नाम देते हुए शैक्षिक प्रक्रियाओं को थोड़ा कम कठोर, कम कठिन और थोड़ा कम कड़वा बनाने की कोशिशें की गई हैं।

स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाए जाने वाले पाठों में आमतौर पर शहरी मध्यम वर्ग की जीवनदृष्टि झलकती है। विगत एक-दो दशकों से निम्नवर्गीय और ग्रामीण परिवेश की छवियों को पाठों में शामिल करने की जद्दोजहद की गई है, जो स्वागतयोग्य है और इसके नतीजे भी उत्साहवर्धक हैं, लेकिन इसकी सीमाएँ हैं। इतिहास, समाजशास्त्र, भौतिकी या रसायन विज्ञान जैसे विषयों में 'जनजातीय ज्ञान' की कितनी जगह है, इस सवाल पर चर्चा करने से पहले यह सवाल उठ खड़ा होगा कि क्या 'जनजातीय ज्ञान' भी कुछ होता है? घर और गाँव में बड़े-बुजुर्गों की बताई बातें शाला के ज्ञान से जुदा होती हैं। बेशक उसमें तथाकथित अन्धविश्वास, लोक मान्यताओं का पुट हो सकता है, इसलिए उसे 'आधिकारिक ज्ञान' मानने में शिक्षाविद् संकोच करते हैं। लेकिन सदियों से जनजातियाँ अपने बीमारों का इलाज कर रही हैं, खेती, बागवानी कर रही हैं, पशुपालन और पशुओं की नस्लों का संवर्धन कर रही हैं, अपनी संस्कृति, साहित्य और कलाओं को न सिर्फ़ सँजोकर रख रही हैं बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसे परिमार्जित भी करती आई हैं। लकड़ी की कारीगरी, धातुकर्म, कपड़ा बुनने, रँगने और पहनने के सलीक़े का विकास... क्या ये सब 'ज्ञान' नहीं? शिकार करने और मछली पकड़ने या जंगल से फल, फूल और पत्तियाँ इकट्ठा करने का काम बग़ैर किसी विज्ञान और तकनीक के किया जा सकता है? पाठ्यपुस्तकों में जिस विज्ञान को आधिकारिक ज्ञान बताकर पढ़ाया जा रहा है उसी के चलते रासायनिक उर्वरक, जीवाश्म ऊर्जा, संचार क्रान्ति, बेलगाम बाज़ार, आत्मकेन्द्रित व्यक्तिवाद तथा अलगावकारी राष्ट्रवाद का आविष्कार हुआ है। क्या हम दावा करने की स्थिति में हैं कि मानव जाति के लिए आधुनिक विज्ञान जनजातियों के पारम्परिक ज्ञान– जिसे पाठ्यपुस्तकें ज्ञान मानती ही नहीं– से श्रेष्ठ है?

शिक्षा के लक्ष्य

शिक्षा के लक्ष्य यानी आधुनिक ज्ञान और मूल्यों का अंगीकरण, और शिक्षा की प्रक्रिया– यानी सचेत-संवेदनशील समावेशीकरण की कोशिशें, रूपान्तरित होकर पाठ्यपुस्तकों में सम्भ्रम व कक्षा-कक्ष में दिशाहीनता की शक्लों में उजागर होती हैं। सचेतनता और संवेदनशीलता के बावजूद इन पाठ्यपुस्तकों के ज़रिए जनजातीय समुदाय से आई विद्यार्थी को यह जवाब नहीं मिलता कि पढ़-लिखकर वह अपना गुज़र-बसर जंगल में शिकार और फल-फूल-पत्ते इकट्ठा करते हुए करे, जंगल काटकर खेती करे, या अपना पारम्परिक आवास छोड़कर शहर में अजनबियों के बीच बस जाए? इस मूलभूत सवाल का जवाब न मिलने की दो वजहें नज़र आती हैं। एक तो यह कि जनजातियों

के पारम्परिक रहन-सहन, अर्थव्यवस्था, मूल्य-मान्यताएँ और ज्ञान का शिक्षा के लक्ष्यों व उनकी प्राप्ति के लिए बनी पाठ्यचर्या में कोई स्थान नहीं है। इसे विनम्रतापूर्वक अज्ञान क़रार देकर शिक्षा के विमर्श से ओझल कर दिया गया है। दूसरे, आधुनिक मूल्यों– जो आमतौर पर जनजातियों के परम्परागत मूल्यों के मुख़ालिफ़ या अलहदा होते हैं– को अपनाने को शिक्षित होना माना जाता है। इसलिए शिक्षा के विमर्श से लेकर विकास की राष्ट्रीय नीति बनाने तक में यह भ्रम बना रहता है कि जंगलों को बचाया जाए, जंगल काटकर खेती का रकबा बढ़ाया जाए या फिर खदानों और उद्योगों का विकास करने के लिए जनजातीय बसाहटों के हरित आवरण की बलि दी जाए?

समाधान के रास्ते

ऊपर हमने जायज़ा लिया और पाया कि भारत में जनजातियों की शैक्षिक प्रगति के लिए सरकारी और ग़ैर-सरकारी स्तर पर की जा रही कोशिशें अपेक्षानुरूप नतीजे नहीं दे पाई हैं। लिहाज़ा पुनर्विचार की ज़रूरत है। आधुनिक लोकतंत्रात्मक राष्ट्र-राज्यों में प्रत्येक समुदाय को अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप निर्णय करने का सीमित अधिकार ही मिलता है। जनजातीय समूहों के पास इतनी राजनैतिक शक्ति नहीं कि वे मुख्यधारा को अपनी शर्तों पर पुनर्परिभाषित कर सकें। सार्वजनिक शिक्षा का प्रचलित स्वरूप है– सरकार के हाथ में शिक्षा का नियंत्रण। इसमें यह मान्यता अन्तर्निहित है कि लोकतांत्रिक राष्ट्र-राज्यों में जनमत से चुनी हुई सरकारें सार्वजनिक कल्याण के कार्य करती हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक विविधताओं वाले भारत जैसे राष्ट्र-राज्यों में विविध समाजों की आकांक्षाएँ परस्पर भिन्न या कभी-कभी विपरीत भी होती हैं। स्वाभाविक है कि सरकारी नियंत्रण वाली एकरूप शिक्षा सबका समान भला नहीं कर सकती।

क्या हम यह कल्पना कर सकते हैं कि सार्वजनिक स्कूली शिक्षा को सरकार के नियंत्रण से मुक्त करके समुदायों के हाथ दे दिया जाए? यहाँ समुदायों के नियंत्रण में शिक्षा देने का आशय यह है– शिक्षा के लक्ष्यों का निर्धारण, पाठ्यचर्या निर्माण, कक्षा-कक्ष की प्रक्रियाओं की पुनर्रचना से लेकर आकलन और प्रमाणीकरण तक और शाला का स्थान, समय, अवकाश जैसे प्रबन्धकीय निर्णयों से लेकर शिक्षकों की अर्हता-योग्यता तक का फ़ैसला समुदायों के ज़िम्मे हो। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान औपनिवेशिक शिक्षा के बरअक्स राष्ट्रीय शिक्षा को खड़ा करने के सफल प्रयास स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हो चुके हैं। वर्तमान में 'वैकल्पिक स्कूल' के ढाँचों के भीतर ऐसे कई सफल प्रयोग भारत में चल रहे हैं जो शासन के नियंत्रण से काफ़ी हद तक मुक्त हैं। सार्वजनिक शिक्षा को समुदायों के हाथ में सौंपने से विविध सामाजिक-सांस्कृतिक आकांक्षाओं को फलने-फूलने का मौक़ा मिलेगा, बहुलतावाद को बढ़ावा मिलेगा और लोकतंत्र मज़बूत होगा।

शिक्षा का ज़िम्मा समुदायों को सौंपना निहायत अव्यवहारिक नज़र आए तो एक और काम है जो किया जा सकता है। शिक्षा के लक्ष्य निर्धारण और पाठ्यचर्या निर्माण के दौरान जनजातियों के पारम्परिक ज्ञान को आधिकारिक ज्ञान का स्थान मिले। वर्तमान विमर्श में जनजातीय पारम्परिक ज्ञान को लोक विज्ञान या वैकल्पिक जीवन दृष्टि आदि आलंकारिक शब्दावली का इस्तेमाल करते हुए शिक्षा की मूल धारा से अलग रखा जाता है। प्राथमिक शाला पूर्ण करने के बाद जिस प्रकार विद्यार्थियों को आगे पढ़ने के लिए भूगोल या भौतिकी चुनने का अवसर मिलता है, वैसे ही वे चिकित्सा का बैगा विज्ञान और सृष्टि-उत्पत्ति का सन्थाली सिद्धान्त पढ़ने का मौक़ा क्यों नहीं पा सकते? आधुनिक ज्ञान के ढाँचों के भीतर या उसके समानान्तर पारम्परिक ज्ञान के ढाँचों को समान स्वीकृति देना और सम्मानपूर्वक उसे पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाना शायद समय का चक्र उलटा घुमाने जैसे लगें। हालाँकि, आधुनिक दौर में प्रचलित रासायनिक खेती, औद्योगिक प्रदूषण, व्यस्त और तनावपूर्ण दिनचर्या आदि ने

दुनिया को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के नकारात्मक पहलुओं और सीमाओं का अहसास कराया है, साथ ही आधुनिक शिक्षा व्यवस्था शत-प्रतिशत बच्चों की सफलतापूर्वक स्कूली शिक्षा पूर्ण करना सुनिश्चित नहीं कर पाई है। इन विफलताओं पर वस्तुपरक व तार्किक पुनर्विचार तो किया जाना चाहिए न!

एक रास्ता यह हो सकता है कि प्राथमिक कक्षाओं से सभी बच्चों– जिनमें जनजातीय समुदायों से आने वाले बच्चे भी शामिल हों– को अँग्रेज़ी माध्यम में शिक्षा दी जाए। सरसरी नज़र में भले यह अव्यवहारिक लगे, लेकिन ज़्यादा अव्यवहारिक यह होगा कि देश के सभी बच्चों को मातृभाषा, या कम-से-कम प्रादेशिक भाषा में स्कूली शिक्षण मिले। राजनेता, अफ़सर, ग़ैर-सरकारी संगठनों के कार्यकर्ता और सरकारी शालाओं के शिक्षक-शिक्षिकाओं में से अधिकांश के बच्चे अँग्रेज़ी माध्यम स्कूलों में पढ़ रहे हैं। इसलिए वे शायद ही इस प्रस्ताव को स्वीकार करें कि स्कूली शिक्षा अनिवार्य रूप से मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा में हो। अपने बच्चों के लिए अँग्रेज़ी शिक्षा और जनजातीय बच्चों के लिए मातृभाषा और बहुभाषिता की पैरवी ब्राह्मणवाद की याद दिलाती है, जब ऊँची मानी जाने वाली जातियों ने संस्कृत भाषा और उसके ज़रिए तत्कालीन ज्ञान तक सामान्यजन की पहुँच असम्भव बना रखी थी। हमें सोचना चाहिए कि आज अँग्रेज़ी को पहुँच से दूर रखकर कहीं ज्ञान पर एकाधिकार की ब्राह्मणवादी प्रक्रिया तो नहीं दोहराई जा रही?

जनजातीय समुदायों के विद्यार्थियों का ऊँची कक्षाओं में पिछड़ने और शालात्याग का एक बड़ा कारण अँग्रेज़ी में हाथ तंग होना है। शहरों की वर्तमान बनावट में बहुभाषिता एक सामाजिक वास्तविकता है। आम शहरी अँग्रेज़ी माध्यम स्कूल में किसी मध्यमवर्गीय विद्यार्थी के शाला में बने रहने, बोर्ड परीक्षाएँ पास करने, उच्च शिक्षा और आधुनिक रोज़गार प्राप्त करने के अवसर घर की भाषा या बहुभाषी कक्षा में प्राथमिक शिक्षा पाई अनुसूचित जनजाति की किसी विद्यार्थी के मुक़ाबले ज़्यादा होते हैं। अर्थात अँग्रेज़ी माध्यम में पढ़ने से विद्यार्थी की शैक्षिक और व्यावसायिक सफलता के मौक़े बढ़ जाते हैं। इसलिए अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों को घर की भाषा या बहुभाषी शिक्षण देने का आग्रह छोड़ने की ज़रूरत है। जनजातीय समुदायों से आने वाले बच्चों के स्कूली शिक्षा में पिछड़ने के सामाजिक-आर्थिक कारण भी हैं, जिनकी पूर्ति के लिए शासन की ओर से छात्रवृत्तियाँ व अन्य सुविधाएँ दी ही जा रही हैं।[17] ग़ैर-सरकारी संगठन भी सांस्कृतिक पूँजी बढ़ाने की दिशा में कार्यरत हैं। इसलिए उचित होगा कि सभी सार्वजनिक स्कूल अँग्रेज़ी माध्यम शालाओं में रूपान्तरित हों और अपने घोषित लक्ष्य– नई पीढ़ी को आधुनिक मूल्यों व आचार विचारों में दीक्षित करना– की प्राप्ति का सघन प्रयास करें। जनजातीय भाषा, परम्परा और संस्कृति की रक्षा का ज़िम्मा समुदायों पर छोड़ दें।

---

17. बोर्दियु, पी (सम्पा.)। (1986)। फॉर्म्स ऑफ़ कैपिटल। *हैंडबुक ऑफ़ थियरी एंड रिसर्च फॉर द सॉशियोलॉजी ऑफ़ एजुकेशन* (पृष्ठ 241–258)। ग्रीनवुड।

अमित कोहली घुमक्कड़ी करने और पढ़ने के शौक़ीन हैं। तक़रीबन 15 साल एकलव्य फ़ाउण्डेशन के साथ विविध स्तरों पर काम किया है। शिक्षा के इतिहास, डिस्कूलिंग एवं वैकल्पिक शिक्षा में विशेष रुचि है। अमित स्वयं को वैचारिक रूप से गाँधीजी के क़रीब पाते हैं।
सम्पर्क : amt1205@gmail.com

विचारों का स्वराज बरास्ते आलोचनात्मक चिन्तन

समाज विज्ञान शिक्षण में विवादास्पद मुद्दों की भूमिका

ऋषभ कुमार मिश्र

विविधता समाज का एक सुन्दर सच है। मत भिन्नता भी इसी सच्चाई से उपजी हुई एक ख़ासियत है। यह मत भिन्नता एक गतिशील चिन्तन और सामाजिक चेतनशीलता के लिए बेहद ज़रूरी बात है। शिक्षण की प्रक्रिया में यही मत भिन्नता कई बार एक चुनौती बन जाती है। अधिकांशतः शिक्षक की इस बात की तैयारी नहीं होती है कि वह इस स्थिति को निरपेक्ष रूप से समालोचनात्मक चिन्तन के अवसर के रूप में तब्दील कर सके। असहमतियों से असहज हुए बिना इसे एक संसाधन के रूप में देख सके और कक्षा को एक स्वस्थ विमर्श के लिए तैयार कर सके। प्रस्तुत आलेख में लेखक ने ऐसे ही कुछ अनसुलझे प्रश्नों को लेकर शिक्षकों के एक समूह से की गई बातचीत के आधार पर अपने विचार रखे हैं। सं.

पिछले कुछ महीनों से वयस्कों की दुनिया जिन विषयों पर बहस कर रही है उनपर विचार कीजिए। अर्थव्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, चुनाव, राजनीतिक वाद-प्रतिवाद से लेकर स्थानीय सामुदायिक समस्याएँ, आदि क्षेत्रों से जुड़े विषय अख़बारों, सोशल मीडिया, सार्वजनिक स्थानों की बहसों में उपस्थित हैं। इस तरह के विषयों को लेकर आम जनता में रायशुमारी की जाए तो हम पाएँगे कि इनकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं– एक से अधिक और परस्पर विरोधी मत वाले समूहों की उपस्थिति, समूहों का केवल अपने मत के पक्ष में अति आग्रही होना, उसके विपरीत तर्क या प्रमाण को स्वीकार करने को तैयार न होना, एकपक्षीय सूचनाओं की प्रस्तुति और उन्हें तोड़-मरोड़कर व्याख्यायित करना, आदि। इस पूरी प्रक्रिया में विचारणीय समस्या पर भावना एवं संवेग का रंग चढ़ा दिया जाता है। इस रंग को जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, आदि की 'ब्लीच' से गहरा कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप, परस्पर विरोधी मत रखने वाले समूहों के बीच संवाद या समाधान की सम्भावना के स्थान पर मतभेद हिंसा की हद तक गहरा हो जाता है।

इन विषयों के बारे में जैसे वयस्कों में अलग-अलग मत और उसके प्रति आग्रह होते हैं, वैसा ही बच्चों में भी होता है। परिवार, समुदाय और मीडिया के प्रभाव में बच्चों में भी आपसी विभेद के लक्षण आप देख सकते हैं। हमारे यहाँ कक्षा के बाहर परिवार, समुदाय और दोस्तों के बीच भी सवाल पूछना, तर्क करना, आदि की सराहना नहीं की जाती है। हमारे बच्चों में एक प्रवृत्ति होती है कि वे किसी 'बड़े' द्वारा बताई गई बात बिना तर्क के स्वीकार करने को तत्पर होते हैं। हम रोज़मर्रा के जीवन में भी उनसे विवादास्पद विषयों पर बात नहीं करना चाहते हैं। इन परिस्थितियों में विवादास्पद विषयों पर सोद्देश्यपूर्ण हस्तक्षेप नहीं होता है तो बच्चे जो सुनते, देखते हैं उसे ज्यों-का-त्यों सच मानने लगते हैं। धीरे-धीरे उनमें देखी-सुनी सामग्री का मूल्यांकन किए बिना विश्वास कर लेने की आदत विकसित हो जाती है। इस तरह की 'आदत' का विकसित होना ख़तरनाक है। इससे उनकी समझ की धार कुन्द हो जाती है। एक ज्ञान निर्माता के रूप में उनकी सक्रियता और भावी नागरिक की भूमिका कमज़ोर हो जाती है। उनमें मतारोपण से प्रभावित होने का ख़तरा

बढ़ जाता है। इस तरह से उनमें मतावलम्बी बन जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। ऐसे व्यक्ति विवादों के बीच विद्वेष को अपरिहार्य मान लेते हैं, जो दुनिया को सुन्दर बनाने या दुनिया में सुन्दरता खोजने के स्थान पर 'कुछ' चश्मों से दुनिया को देखने लग जाते हैं, और सूझ-बूझ से फ़ैसला लेने की बजाय आवेगपूर्ण फ़ैसलों के वशीभूत हो जाते हैं। हालाँकि, बच्चों के बारे में व्यक्त की जा रही इस सैद्धान्तिक परिकल्पना को हम वयस्क स्वीकार करने में झिझकते हैं लेकिन इसके समर्थन में आप अपने आसपास

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

ऐसे बच्चों और किशोरों को देख सकते हैं जो अपने से भिन्न समूहों और समुदायों को स्वीकार नहीं करना चाहते, जो विविधता को विभेद मानते हैं, और जो 'सच' को खोजने की बजाय, मान लेने को आकुल रहते हैं। इस स्थिति में सवाल उठता है कि मताग्रही बनती भावी पीढ़ी में विवेक और तर्क के लिए कोई स्थान है या नहीं? समानुभूति के भाव के लिए कोई सम्भावना है क्या?

एनसीएफ़ 2005 में इसकी पुरज़ोर वकालत की गई है। यह दस्तावेज़ इस बात को गहरी चिन्ता के साथ उठाता है कि विवेकशील, चिन्तनशील और वैज्ञानिक सोच वाला नागरिक बनाने की दिशा में शिक्षा कैसे प्रभावी बने। इसकी एक सम्भावना हमारे स्कूल हो सकते हैं। जहाँ इन विषयों को आलोचनात्मक नज़रिए से देखा जाए, जहाँ वैधता की कसौटियों से बच्चों को परिचित कराया जाए, जहाँ वाद-विवाद के साथ दूसरों की सराहना और स्वीकृति के भी मूल्य हों। क्या हमारे स्कूलों में ऐसा होता है? इस स्थिति का मुआयना करने के लिए मैंने कुछ सामाजिक विज्ञान शिक्षकों से बातचीत की। उस बातचीत के ब्यौरा को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

शिक्षकों से बातचीत के बिन्दु

मैंने सामाजिक विज्ञान के 10 शिक्षकों से बातचीत की। ये शिक्षक वर्धा के 4 अलग-अलग सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाते थे। सभी पुरुष शिक्षक थे। इन सभी का अध्यापन अनुभव 5 वर्ष से अधिक था। इन शिक्षकों से बातचीत करने का लक्ष्य यह पता लगाना था कि वे सामाजिक विज्ञान शिक्षण के लिए विवादास्पद विषयों के बारे में क्या राय रखते हैं? क्या ऐसे विषयों को वे अपनी कक्षा में स्थान देते हैं? इसके लिए वे किन शिक्षणशास्त्रीय युक्तियों और संसाधनों का उपयोग करते हैं? वे इन चर्चाओं में अपने विद्यार्थियों की भूमिका को कैसे देखते हैं? इन आयामों को आधार बनाकर एक अर्द्ध-संरचित प्रश्नावली का निर्माण किया गया। इसकी मदद से इन शिक्षकों का साक्षात्कार लिया गया। ये साक्षात्कार उनसे स्कूल में ही लिए गए। प्रत्येक साक्षात्कार लगभग 40 से 50 मिनट का था।

विवादास्पद मुद्दों की प्रकृति और महत्ता

सामाजिक विज्ञान शिक्षकों से बातचीत की शुरुआत इस सवाल के साथ की गई कि उनके अनुसार विवादास्पद मुद्दे कौन-से हैं जो सामाजिक विज्ञान शिक्षण से सम्बन्धित हैं। इस बारे में शिक्षकों ने बताया कि विवादास्पद मुद्दों से उनका आशय ऐसे विषयों से है जिनके बारे में विद्यार्थी एक से अधिक राय रखते हैं।

शिक्षकों ने इस तरह के विषयों के निम्नलिखित उदाहरण साझा किए– क्या हाइवे का बनना गाँवों के विकास में मददगार होगा? क्या जाति के आधार पर मतदान करना उचित होता है? क्या उद्योगों का निजीकरण विकास को गति देता है? शिक्षकों ने बताया कि ऐसे विषय भी विवादास्पद विषय होते हैं जिनके बारे में दुष्प्रचार फैलाया गया हो। इसके उदाहरण हैं– गाँधी के व्यक्तिगत जीवन से जुड़े दुष्प्रचार, जाति, धर्म, पन्थ से सम्बन्धित और राजनीतिक दलों व प्रत्याशियों से सम्बन्धित दुष्प्रचार। शिक्षकों का यह भी मानना था कि सामाजिक कुरीतियों, पूर्वाग्रह, रूढ़ियों से जुड़े विषय जैसे– जेंडर के आधार पर श्रम विभाजन, घरेलू हिंसा, क्षेत्रीय, भाषाई एवं जातीय वैमनस्य भी विवादास्पद होते हैं। इसी क्रम में कुछ शिक्षकों ने स्थानीय समस्याओं से जुड़े विषयों जैसे– बाल श्रम, किसान आत्महत्या, जल की समस्या आदि को भी पहचाना और इनके बारे में बातचीत की। कुछ शिक्षकों का मानना था कि जब बच्चों के अनुभव किताब से भिन्न होते हैं तो भी विवाद की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके लिए भागीदार शिक्षकों ने शिक्षा का माध्यम, संवैधानिक अधिकार, सरकार से मिलने वाली सुविधाएँ, आदि का उदाहरण दिया। इसी चर्चा में इन लोगों ने सरकारी नीतियों और योजनाओं से असहमति को भी विवाद का एक कारण बताया।

भागीदार शिक्षकों के विचारों से स्पष्ट है कि वे अपनी कक्षा और विद्यार्थियों के सन्दर्भ में विवादास्पद मुद्दों के स्रोतों पहचान रहे हैं। इन मुद्दों की मूल विशेषता मत विभिन्नता है। शिक्षकों के उदाहरणों में देखा जा सकता है कि वे समसामयिक विषयों को भी इस वर्ग में रख रहे हैं। इन विषयों में मत भिन्नता का स्रोत परिवार, समुदाय और मीडिया हैं। इन परिवेशों में 'स्वीकृत मत' के अतिरिक्त जिन विचारों की उपस्थिति होती है वे ही किसी मुद्दे को विवादास्पद बनाते हैं। इसी क्रम में जब शिक्षकों से पूछा गया कि क्या ये विवादास्पद मुद्दे कक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण हैं? तो सभी शिक्षकों ने इसकी स्वीकृति दी और अपने मत के पक्ष में बताया कि ये मुद्दे विद्यार्थियों को विचार करने की क्षमता और अवसर देते हैं। शिक्षकों का मानना था कि जब कक्षा में इन विषयों पर बातचीत होती है तो बच्चे ख़ुद भी विचार करते हैं और कई बार वे नए अनुभवों को चर्चा में जोड़ते भी हैं। शिक्षकों ने 'ज्ञान में वृद्धि' के लिए कक्षा में एक से अधिक मत वाले मुद्दे के समावेश को उपयोगी बताया। इसके समर्थन में उनके तर्क थे, 'हर चर्चा उन्हें लाभ पहुँचाती है। ज़रूरी नहीं है कि किताब में दिए विषय पर बातें करें। वे आपस में भी बातचीत कर सीखते हैं।'

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

इसी तरह एक अन्य भागीदार शिक्षक कहते हैं कि 'कई बार विद्यार्थी नई सूचनाएँ लाते हैं। सम्भव है ये सूचनाएँ ग़लत हों। लेकिन ग़लत को सही मानने से अच्छा यह जानना है कि ग़लत, ग़लत ही होता है।' इस चर्चा क्रम में शिक्षकों का मानना था कि विवादास्पद मुद्दे कक्षा को बाल-केन्द्रित बनाते हैं। इसके समर्थन में शिक्षकों के ये विचार देखे जा सकते हैं, 'कक्षा में चर्चा हो, तर्क-वितर्क हों, यही तो हम चाहते हैं', 'कक्षा में वाद-विवाद होना निर्माणवाद का एक लक्षण है।' यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शिक्षकों के अनुसार सामाजिक विज्ञान की कक्षा में ऐसे विषयों पर चर्चा विद्यार्थियों को 'अच्छा नागरिक बनाने में सहयोग करती है', 'सामाजिक विज्ञान शिक्षण, नागरिकों को तैयार करता है। इसके लिए बहस होना ज़रूरी है', 'नागरिकों को उनके अधिकार और कर्तव्य से परिचित कराने के लिए बातचीत ज़रूरी है।'

शिक्षकों के विचारों से स्पष्ट है कि वे विवादास्पद विषयों के शिक्षणशास्त्रीय लाभ एवं उपयोगिता की चर्चा कर रहे हैं। लेकिन वे शिक्षक, नागरिकों की तैयारी का अर्थ केवल जागरूकता के सन्दर्भ में ले रहे हैं। इसी के अनुरूप वे विवादास्पद मुद्दों की महत्ता को आँक रहे हैं। उनका लक्ष्य विवादास्पद विषयों के उपयोग द्वारा कक्षा चर्चा को सुगम करना है। वे इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दे पा रहे हैं कि इन विषयों का 'लाभ' आलोचनात्मक चिन्तन के सन्दर्भ में है, क्योंकि विवादास्पद विषयों के माध्यम से कक्षा में एकमात्र स्वीकृत औपचारिक ज्ञान के साथ-साथ अन्य व्याख्याएँ भी आती हैं। कई बार ये व्याख्याएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं जिन्हें आधार बनाकर विद्यार्थियों को सामाजिक सच्चाइयों से जूझने का विवेक और हिम्मत मिल सकती है।

सामाजिक विज्ञान की कक्षा में विवादास्पद मुद्दे

शिक्षकों ने बताया कि यद्यपि उनकी कक्षा में विवादास्पद विषयों पर चर्चा होती है लेकिन इसकी आवृत्ति अपेक्षाकृत कम होती है। बातचीत के क्रम में शिक्षकों से पूछा गया कि यदि उनके द्वारा कक्षा में विवादास्पद मुद्दों को शामिल करने का प्रयास नहीं किया जाता है तो ये मुद्दे कक्षा में कैसे आते हैं? इस विषय पर बात करने पर सामाजिक विज्ञान कक्षा में विवादास्पद विषयों के तीन स्रोतों का पता चलता है :

- शिक्षकों ने कक्षा में विवादास्पद विषयों के लिए पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु को आधार बनाया। इस सन्दर्भ में उन्होंने जेंडर और पर्यावरण के मुद्दों का उल्लेख किया। उदाहरण के लिए बताया कि घरेलू काम तक में लड़के और लड़कियों के बीच विभाजन है, इसी तरह उन्होंने स्थानीय पर्यावरणीय समस्याओं का उल्लेख किया। शिक्षकों का मानना था कि ऐसे विषयों की चर्चा के दौरान मतान्तर होता है। कक्षा में कई बार ज़ोरदार बहस भी होती है, लेकिन उन्हें यह मालूम होता है कि कक्षा चर्चा को क्या दिशा देनी है? शिक्षकों ने यह भी बताया कि इस तरह के विषयों के विपक्ष में तर्क देने वाले विद्यार्थी अपेक्षाकृत कम होते हैं। फिर भी वे अपने तर्क देते हैं। उनके तर्कों में परिवार के अनुभव शामिल होते हैं।

- शिक्षकों ने अपने साक्षात्कार में बताया कि समसामयिक घटनाओं के कारण भी कक्षा में विवादास्पद मुद्दे आते हैं। इसका उदाहरण देते हुए चुनाव के समय दल और राजनेता विशेष के प्रति लगाव के कारण होने वाले विवाद हैं। एक अन्य शिक्षक ने वोट के लिए, पैसे एवं साड़ी बाँटने की घटना को साझा किया। ऐसे ही एक शिक्षक ने जाति के नाम पर वोट देने का उदाहरण दिया। कुछ शिक्षकों ने स्थानीय घटनाओं का भी उदाहरण दिया– एक छात्रा पर

तेजाब फेंकने का प्रकरण और किसानों की आत्महत्या का प्रकरण। इस बारे में शिक्षकों ने मीडिया की भूमिका को भी रेखांकित किया। इसके लिए चीन-भारत के बीच सीमा विवाद का उल्लेख किया।

- विद्यार्थी समूहों के बीच आपसी विवाद के कारण कुछ ऐसे विषय सामाजिक विज्ञान की कक्षा में आते हैं जो विवादास्पद होते हैं। ऐसे विषय सामाजिक रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों से उपजते हैं। जैसे— जातिसूचक या क्षेत्रसूचक शब्दों के आधार पर चिढ़ाना। शिक्षक इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि ऐसे विषय सामाजिक विज्ञान की कक्षा में सीधे नहीं आते हैं, लेकिन जब विद्यार्थी शिकायत करते हैं या शिक्षकों को पता चलता है तो वे इन विषयों पर चर्चा करते हैं। ऐसे विषयों पर चर्चा करते समय कक्षा में अध्यापक ऐसे वयस्क के रूप में हो जाता है जो विद्यार्थियों के बीच झगड़े का फ़ैसला करने वाला होता है। एक भागीदार शिक्षक ने बताया कि इस स्थिति में जिस बच्चे को चिढ़ाया जाता है वह सहानुभूति पाने की इच्छा रखता है। इस दशा में वह ध्यान रखते हैं कि जो चिढ़ाने वाला है वह केवल 'डाँट न सुने', बल्कि अपनी धारणा को बदलने की कोशिश भी करे।

विवादास्पद मुद्दों पर कक्षा चर्चा

विवादास्पद विषयों को कक्षा में सम्बोधित करने के तरीक़ों के बारे में शिक्षकों ने बताया कि वे अपनी-अपनी कक्षाओं में इन विषयों को पढ़ाने के तरीक़ों के बारे में कक्षा में बहस और वाद-विवाद करवाते हैं। इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित युक्तियों का उल्लेख किया— पक्ष-विपक्ष के दो समूह बनवाकर चर्चा, छोटे-छोटे समूहों में चर्चा और खुली चर्चा। शिक्षकों ने बताया कि वे ध्यान रखते हैं कि इस चर्चा में विद्यार्थी अपने मत के बारे में प्रमाण दें। विद्यार्थी बताएँ कि उन्हें सम्बन्धित जानकारी कहाँ से मिली। शिक्षकों का मानना था कि बच्चे अपने घर-परिवार में जो देखते और सुनते हैं, उससे प्रभावित होते हैं। ऐसे अभिभावक जो सार्वजनिक क्षेत्र में सक्रिय होते या वैचारिक प्रतिबद्धता रखते हैं उनके परिवारों के बच्चे एक विचारधारा विशेष की बात करते हैं। इस सन्दर्भ में शिक्षकों के कथनों का उदाहरण दिया जा रहा है—

'विद्यार्थियों के विचारों में पर्याप्त मतभेद होता है। इस मतभेद का कारण उनके परिवार की पृष्ठभूमि है। घर पर जो बातें सुनते हैं उसे वे साझा करते हैं।'

'कक्षा में सब बच्चे बोलें ऐसा नहीं होता है। कुछ बच्चे ही ज़्यादा बोलते हैं। लड़कियाँ इस तरह की बहसों में उतनी भागीदारी नहीं करती हैं।'

'वे आपस में बातचीत करने की बजाय पूछे गए प्रश्नों का जवाब देते हैं। कभी-कभी एक दूसरे के मत के ख़िलाफ़ बोलते हैं।'

ये उद्धरण स्पष्ट करते हैं कि विद्यार्थियों द्वारा कक्षा चर्चा में अपना मत प्रस्तुत किया जाता है। इस विषय पर चर्चा आगे बढ़ी तो भागीदार शिक्षकों ने बताया कि कुछ विषय, जैसे— जेंडर, दिव्यांगों के अधिकार, आदि ऐसे होते हैं जहाँ शिक्षक संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप कक्षा चर्चा का संचालन करते हैं। कुछ विषय ऐसे होते हैं जिनपर चर्चा करने पर वे भी असहज महसूस करते हैं। ऐसे ही एक विषय गे और लेस्बियन के मुद्दे का उदाहरण दिया।

पाठ्यपुस्तकें और विवादास्पद मुद्दे

शिक्षकों के साथ चर्चा के दौरान यह भी सामने आया कि शिक्षकों का मानना है कि सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में इस तरह के विषय नहीं होते हैं। एक शिक्षक ने बताया कि किताबें विवादास्पद नहीं होती हैं, लेकिन उनमें

विषयों की प्रस्तुति इस तरीक़े से होती है कि वे कक्षा में विचार विमर्श का रास्ता तैयार करती हैं। उदाहरण के लिए, जेंडर के आधार पर होने वाली बहस का मुख्य स्रोत पाठ्यपुस्तक है। ऐसे ही एक अन्य शिक्षक ने बताया कि संवैधानिक मूल्यों की स्थापना और उसके अनुसार नागरिकों को तैयार करने का कार्य भी पाठ्यपुस्तक के सहयोग से कर सकते हैं।

शिक्षकों के मत से स्पष्ट होता है कि वे विवादास्पद विषयों को सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम का हिस्सा न मानकर आकस्मिक और पूरक रूप में देखते हैं। वे अध्यापक की भूमिका में विवादास्पद विषयों को कक्षा में शामिल करने से तो सहमत हैं, लेकिन वे ऐसा सोद्देश्यपूर्ण तरीक़े से नहीं करते हैं। इसके समर्थन में अध्यापकों का तर्क है कि वे कक्षा को विषय से भटकने से बचाना चाहते हैं। सामाजिक विज्ञान में वे ज़्यादातर समसामयिक घटनाओं को विवादास्पद विषय के रूप में देखते हैं, जबकि सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या में अनेक ऐसे स्थान होते हैं जहाँ सामाजिक आख्यानों, पूर्वाग्रहों, आदि को कक्षा में सम्मिलित किया जा सकता है। इन सम्भावनाओं की शिक्षकों द्वारा उपेक्षा की जाती है। शिक्षकों को ध्यान रखना चाहिए कि बिना तैयारी के इन विषयों पर चर्चा सम्भव नहीं है। उन्हें सूचनाओं के विभिन्न स्रोतों, जैसे– तर्क-वितर्क से सम्बन्धित लेख, मूल दस्तावेज़, फ़िल्म, आदि का प्रयोग करना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि स्रोत की वैधता की स्वयं जाँच करें और अपने विद्यार्थियों को बताएँ कि कैसे स्रोत की वैधता की जाँच करनी है। सामाजिक विज्ञान की कक्षा में विवादित विषयों का शिक्षण शिक्षकों के ज्ञान, नज़रिए और उनके शिक्षणशास्त्रीय फ़ैसले से प्रभावित होता है।

शिक्षकों को ध्यान देने की आवश्यकता है कि 'विवाद के मुद्दे' शीर्षक से कोई प्रकरण नहीं दिया होता है। इसके लिए पुस्तक में कोई अलग हिस्सा भी नहीं होता है। विषय को सन्दर्भ से जोड़ने पर, समसामयिक घटनाओं पर चर्चा द्वारा विद्यार्थियों को अपने अनुभव साझा करने पर ऐसे मुद्दे कक्षा में सोद्देश्यपूर्ण ढंग से शामिल किए जा सकते हैं।
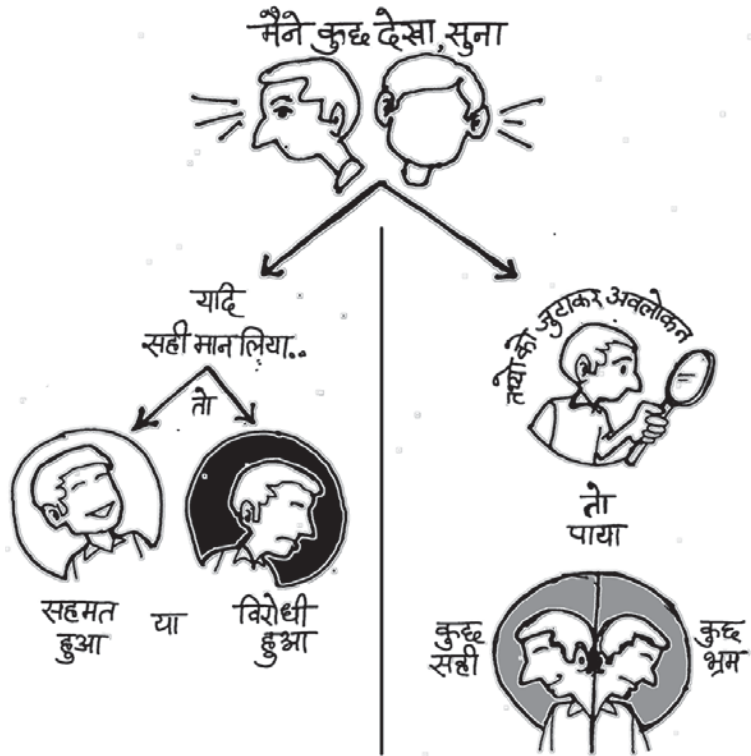
चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

अनसुलझे सवाल एवं कुछ निष्कर्ष

शिक्षकों की जिस बातचीत का यहाँ उल्लेख किया गया है उससे हमारे सामने एक विरोधाभास की स्थिति प्रकट होती है। हम अपने आसपास के परिवेश से लेकर टीवी चैनलों तक घमासान बहसों को देखते हैं। हम इससे प्रभावित होते हैं। अपने मत का निर्माण करते हैं। लेकिन कक्षा जैसे औपचारिक परिवेश में तैयारी के साथ इन बहसों की उपस्थिति नाममात्र की होती है। इसका कारण यह है कि हमने अच्छी शिक्षा और शिक्षण के बारे में जो धारणा बनाई है उसमें किसी भी प्रकार की वैचारिक उथल-पुथल की सम्भावना नहीं है। हमारी कक्षाएँ सीधी, सपाट होती हैं जो पुस्तकों से विज्ञान, गणित, भाषा और सामान्य ज्ञान प्रदान करने का लक्ष्य रखती हैं। इनमें बहस करना, ख़ासकर राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर बात करना, अच्छा नहीं माना जाता है। इसी कारण हमारी शिक्षा व्यवस्था केवल अधीनस्थ तैयार करती है। ऐसे अधीनस्थ उत्पादक होते हैं, नवाचार करते हैं, प्रौद्योगिकी भी खोजते हैं लेकिन उन मुद्दों पर मौन हो जाते हैं जो उनके समाज को, रोज़मर्रा के जीवन को प्रभावित करते हैं। यह मौन 'विचारों के स्वराज' को ढँक लेता है।

इस अधिगम संस्कृति में हमारे शिक्षक भी योगदान करते हैं। वे ऐसे पेशेवर माहौल के अभ्यस्त हो जाते हैं जहाँ किताबों से सूचनाओं को देना, उदाहरण सहित व्याख्या करना, कुछ सवाल पूछकर आकलन कर देना आसान होता है। कुल मिलाकर, वे लोकप्रिय मान्यताओं या प्रचारित धारणाओं के ख़िलाफ़ जाकर शिक्षण करने का जोख़िम नहीं उठाना चाहते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनका अपना मत नहीं होता है।

आज़ादी के पचहत्तर वर्षों बाद भी हमारे समाज में अच्छे नागरिक की ही परिकल्पना अनुशासित और आज्ञापालक की है। इसी अर्थ में हम पढ़ते-पढ़ाते हैं। अच्छा विद्यार्थी या अच्छा नागरिक वही है जो कक्षा में शिक्षक या कक्षा के बाहर किसी अन्य नियन्ता के मत के समर्थन में तर्क दे। वह कक्षा और बाहर के जीवन में अधीनस्थ होने के लाभ से परिचित होता है। इस प्रवृत्ति को तोड़ने के लिए आवश्यक है कि हमारे परिवारों, समुदायों और कक्षाओं जैसे विचार विमर्श स्थलों पर असहमतियों को स्वीकारा जाए। कम-से-कम कक्षाओं में ऐसा परिवेश बनाना चाहिए जहाँ बच्चा अपने मत को रखने में झिझक महसूस न करे। अपनी राय को रखते हुए शिक्षक द्वारा किए जा रहे 'वैल्यू जजमेंट' से प्रभावित न हो। हमारे शिक्षकों को कक्षा में ऐसा परिवेश बनाना चाहिए जहाँ एकतरफ़ा फ़ैसले सुनाने या राय बनाने के स्थान पर बातचीत हो, पुरज़ोर बहस हो। यह बहस केवल अपने मत को बताने या उसपर ज़ोर देने के लिए न हो। दूसरों के मत भी सुने जाएँ। उनके प्रति आग्रही न बना जाए। दूसरों के मत को व उन्हें सिरे से ख़ारिज कर देने की तत्परता न हो। ऐसा करने पर ही 'विचारों का स्वराज' पोषित होगा जो स्वतंत्रता, बन्धुत्व और सामाजिक समरसता के लिए अपरिहार्य है।

ऋषभ कुमार मिश्र महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा के शिक्षा विभाग में अध्यापक हैं। शिक्षा और समाज से जुड़े विषयों पर लेखन में सक्रिय हैं। इन्होंने केन्द्रीय शिक्षा संस्थान दिल्ली विश्वविद्यालय से 'बच्चों की सामाजिक विज्ञान की समझ' विषय पर शोध कार्य किया है।

सम्पर्क : rishabhrkm@gmail.com

क्या गणित आपको अन्धविश्वास सिखाता है ?

मुकेश मालवीय

शिक्षा तार्किक बनाती है, सवाल करना और पड़ताल करना सिखाती है। लेकिन कई बार किसी बात पर न सिर्फ़ आँख मूँदकर विश्वास कर लेने बल्कि उसका प्रचार-प्रसार करने की होड़ में हम तार्किकता को परे रख देते हैं। यह व्यवहार अफ़वाहों को हवा देने, अन्धविश्वास को बढ़ावा देने और उन्माद फैलाने जैसे चलन के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। वैज्ञानिक चेतना वाला समाज बनाने का शिक्षा का व्यापक लक्ष्य इस व्यवहार से प्रभावित होता है। प्रस्तुत आलेख में मुकेश मालवीय ने एक व्हाट्सएप मैसेज के हवाले से इस व्यवहार पर समालोचनात्मक टिप्पणी करते हुए एक कथित चमत्कारी संख्या की गणितीय पड़ताल की है। सं.

इन दिनों व्हाट्सएप पर एक मैसेज तेज़ी से फॉरवर्ड हुआ है।

गणित में किसी भी संख्या को सम / विषम अथवा वो अपने अंकों के योग से या दो से 'भाज्य है या नहीं' यह कहकर जाना जाता है।

ये कथन मुश्किल से समझ आता है और फिर ग़लत भी है। कोई संख्या सम है या विषम यह तय करने के लिए, उसका इकाई का अंक देखते हैं यदि इकाई का अंक दो से भाज्य है तो संख्या सम होगी। जहाँ संख्या के अंकों का जोड़ का सवाल है, सम संख्या के अंकों का जोड़ सम भी हो सकता है और विषम भी जैसे कि संख्या बारह। यह एक सम संख्या है लेकिन अंकों को जोड़ने पर एक विषम संख्या मिलती है। वहीं 24 भी एक सम संख्या है और इसके अंकों को जोड़ने पर भी सम संख्या ही मिलती है। और ऐसा ही विषम संख्याओं के अंकों के जोड़ में भी होता है।

'लेकिन इस विचित्र संख्या को देखिए...!'

'संख्या 2520' अन्य संख्याओं की तरह वास्तव में एक सामान्य संख्या नहीं है। यह वो संख्या है जिसने विश्व के गणितज्ञों को अभी भी आश्चर्य में डाला हुआ है।

यह विचित्र संख्या 1 से 10 तक प्रत्येक अंक से भाज्य है, चाहे वो अंक सम हो या विषम।

ऐसी संख्या जिसे इकाई तक के किसी भी अंक से भाग देने के उपरान्त शेष शून्य रहे, 'बहुत ही असम्भव / दुर्लभ' है– ऐसा प्रतीत होता है।

अब निम्न सत्य को देखें :

$2520 \div 1 = 2520$

$2520 \div 2 = 1260$

$2520 \div 3 = 840$

$2520 \div 4 = 630$

$2520 \div 5 = 504$

$2520 \div 6 = 420$

$2520 \div 7 = 360$

$2520 \div 8 = 315$

$2520 \div 9 = 280$

$2520 \div 10 = 252$
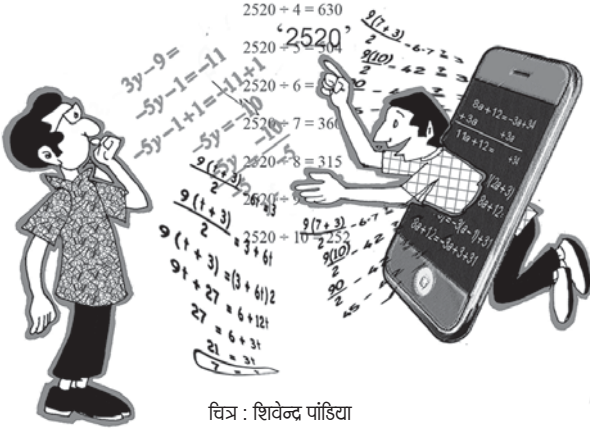
चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

ऐसी संख्या को 'जानने व निकालने की विधि क्या है?' महान गणितज्ञ अभी भी आश्चर्यचकित हैं : '2520 वास्तव में एक गुणनफल है (7 * 30 * 1) का' जो उनके अनुसार इन तीन यादृच्छिक (random) संख्याओं का गुणा करने से बनी है।

उन्हें और भी आश्चर्य हुआ जब यह संज्ञान में लाया जा रहा है कि संख्या 2520 हिन्दू सम्वत्सर के अनुसार 'एकमात्र सही संख्या व वास्तव में उचित' बैठ रही है : 'यह निम्नलिखित गुणनफल' से प्राप्त है :

'सप्ताह के दिन (7) × माह के दिन (30) × वर्ष के माह (12)' = '2520', यही है भारतीय काल गणना की श्रेष्ठता!

यह व्हाट्सएप सन्देश बहुत-से शिक्षकों के समूह में भी घूमता रहा। इसे पढ़ने के बाद अधिकांश को यह 2520 संख्या एकदम विशेष और 786 जैसी पवित्र भी दिखने लगती है। हज़ारों लोगों ने इसे फॉरवर्ड किया और अपने लिए लाइक बँटोरे। कमेंट में हाथ जुड़े वाला नतमस्तक का भाव प्रदर्शन था।

क्या यह संख्या वास्तव में कोई दिव्य संख्या है?

यदि हमने गणित को ख़ुद के लिए नहीं समझा है और संख्याओं के गुणधर्म को आत्मसात (अनुभव) नहीं किया है तो हमारे इस तरह के आश्चर्य बोध के साथ ग़ैर-तार्किक बने रहने की सम्भावनाएँ अधिक हैं। स्कूल में संख्याओं की पहचान एवं उनके आपसी गुणधर्म को जान लेने के बाद भी बच्चे संख्याओं के आपसी रिश्तों को न तो महसूस कर पाते हैं न ही संख्याओं के बीच कोई नया रिश्ता बना पाते हैं। हमने संख्याओं के सीधे रिश्ते के बारे में तो जाना है, जैसे– कोई संख्या दूसरी संख्या से बड़ी है या छोटी, उनमें कितने का अन्तर है या उनमें जोड़, घटाव, गुणा और भाग करने पर क्या आएगा आदि; पर उनके गुँथे हुए रिश्तों पर कम ही सोचा है, जैसे– संख्याओं के पैटर्न, किसी संख्या में दूसरी संख्या की मौजूदगी या किसी एक संख्या से दूसरी संख्या को प्राप्त करने के क्या-क्या रास्ते या तरीक़े हैं। संख्या से खेलने और उन्हें ख़ुद के लिए समझने, जानने के लिए पाठ सामग्री कम ही विकसित की गई है। इसी तरह की समस्या गणितीय सूत्रों के साथ भी है कि सूत्र तो बच्चों और बड़ों को मालूम होते हैं पर उन्हें कहाँ और कैसे इस्तेमाल करना है, यह समझ कम ही विकसित हो पाती है।

कुछ इसी तरह का संक्रमण इस व्हाट्सएप सन्देश को पढ़ने और फैलाने वालों पर हावी है।

यदि हम इसी सवाल को लें कि वो कौन-सी संख्या है जो 1 से लेकर 10 तक सभी संख्याओं से विभाजित है?

तो इसका उत्तर जानने के लिए हमें क्या करना चाहिए। अगर हमने गणित के प्रश्नों को हल करते समय प्रश्नों पर ख़ुद से सोचना और अपनी समझ का इस्तेमाल करते हुए हल करना सीखा है तो यह उन सभी के लिए बहुत ही सरल प्रश्न है। वे तर्क से इसका उत्तर पा सकते हैं। जो संख्या 1 से 10 तक सभी से विभाजित है वह संख्या 1 से 10 तक सभी संख्याओं का गुणज भी होगी। इसके लिए यदि हम 1 * 2 * 3 * 4 * 5 * 6 * 7 * 8 * 9 * 10 = 3628800 कर लें तो 3628800

वह संख्या है जो 1 से 10 तक सभी संख्याओं से विभाजित होगी। पर यह संख्या 1 से 10 तक सभी संख्याओं से विभाजित होने वाली सबसे छोटी संख्या नहीं है। हम ऐसी सबसे छोटी संख्या भी तर्क से प्राप्त कर सकते हैं जो इन दसों संख्याओं से विभाजित हो सके। हम इस छोटी संख्या को प्राप्त करने के एक से अधिक तर्क सोच सकते हैं।

1 * 2 * 3 * 4 * 5 * 6 * 7 * 8 * 9 * 10 गुणन पर हम ध्यान देते हैं।

सबसे बड़ी संख्या 10 से जो संख्या विभाजित होगी उसकी इकाई में 0 होगा :

1 * 2 * 3 * 4 * 5 * 6 * 7 * 8 * 9 = 362880

यह संख्या 10 से विभाजित है, अत: हम 10 को छोड़ सकते हैं। यानी 362880 ऐसी संख्या है जो एक से 10 सभी संख्याओं से विभाजित हो जाती है।

अब दूसरी बड़ी संख्या 9 को ध्यान में लेते हैं। हम जानते हैं कि 9 से विभाजित होने वाली संख्याएँ 18, 27, 36, 45, ... आदि 3 से विभाजित होती ही हैं। हम 9 को रखकर संख्या 3 को छोड़ सकते हैं :

1 * 2 * 4 * 5 * 6 * 7 * 8 * 9 = 120960

अब हमारे पास 120960 ऐसी संख्या है जो 1 से 10 तक सभी संख्याओं से विभाजित हो जाती है।

अब हम 8 पर विचार करते हैं। 8 से विभाजित होने वाली संख्याएँ 16, 24, 32, 40, ... आदि संख्या 4 से भी विभाजित होंगी और 2 से भी। इसलिए हम 8 को रखकर 4 और 2 को भी छोड़ देंगे :

1 * 5 * 6 * 7 * 8 * 9 = 15120

हमारे पास 15120 ऐसी संख्या है जो 1 से 10 तक सभी संख्याओं से विभाजित है।

अब हम 7 को रखते हैं। 7 से विभाजित होने वाली संख्याएँ 14, 21, 28, 35, 42, 49, ... आदि में कुछ संख्याएँ तो 2, 3, 4, 5, 6 से विभाजित होती हैं, पर 49, 77, 91 आदि 7 से ही विभाजित हैं। या दूसरे तरीक़े से सोचें कि 7 को छोड़ने से बने गुणनफल से प्राप्त 1 * 5 * 6 * 8 * 9 = 3060 संख्या 7 से पूरी-पूरी विभाजित नहीं है, अत: हमें 7 को रखना ही होगा।

अब हम 6 पर विचार करते हैं। हम संख्या 9, 8 और 7 को ले रहे हैं। हम देखते हैं कि 9 * 8 = 72 या 9 * 8 * 7 = 504 को हम 6 से विभाजित कर सकते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि 9 * 8 * 7 से विभाजित होने वाली संख्या 6 से भी विभाजित होती है, इसलिए हम 6 को भी छोड़ देंगे। अब हमारे पास 1 * 5 * 7 * 8 * 9 = 2520 है।

हम देखें कि क्या हम 5 को हटा सकते हैं? 9 * 8 * 7 = 504 संख्या 5 से पूरी-पूरी विभाजित नहीं है। अत: हमें 5 को भी शामिल करना होगा।

इस तरह हमारे पास यह 2520 सबसे छोटी ऐसी संख्या है जो 1 से 10 तक सभी संख्याओं से विभाजित हो रही है।

कक्षा 5वीं और 6वीं में शिक्षक बच्चों को लघुत्तम समापवर्त्य (Lowest Common Multiple — LCM) पढ़ाते हैं। परन्तु अधिकांश पढ़ने और पढ़ाने वाले ख़ुद की सोच और तर्क से अपने लिए ही इसे नहीं समझ रहे हैं। ख़ुद की समझ का इस्तेमाल करने वालों के लिए यह सवाल कि वह छोटी-से-छोटी कौन-सी संख्या है जो 1 से 10 तक सभी संख्याओं की अपवर्त्य है? यह साधारण एलसीएम लेने का प्रश्न है। गणित की कक्षाओं में केवल सूत्र पढ़ने और पढ़ाने वाले यह नहीं सोच पाते कि सूत्र क्या कर रहा है। अब रही बात सप्ताह के 7 दिन, वर्ष के 12 महीने और माह के 30 दिन का गुणा करने की, तो यह काम बड़ी चतुराई से अपने कथन के समर्थन के लिए की गई जुगाड़ है।

हम 9 * 8 * 7 * 5 को 3 * 3 * 4 * 2 * 7 * 5 लिख सकते हैं। और फिर इसे (3 * 2 * 5) (3 * 4) (7) या 30, 12, 7 लिख सकते हैं। यही इसका अन्तिम लक्ष्य और अन्तिम उत्पाद है।

आइए तार्किक ढंग से गणित सोचने का एक और उदाहरण देखते हैं।

इसी तरह का एक और सच्चा उदाहरण देखते हैं। मेरे एक साथी शिक्षकों से गणित पर चर्चाएँ और प्रशिक्षण करते रहते हैं। एक बार उन्हें किसी शिक्षक ने सारे जगत को राम के नाम के बराबर दो अक्षर का सिद्ध करने वाला एक दोहा बताया।

नाम चतुर्गन पंचयुग कृत दौ गुनी अष्ठ भाजी।

सकल चराचर जगत में राम हि राम देखा जी।।

शिक्षक ने कहा कि संसार में किसी के भी नाम में आए अक्षरों को गिन लो, इस संख्या को चार गुना कर दो। अब इसमें 5 जोड़ दो। फिर पूरी संख्या का दो गुना कर दो। अब अष्ठ भाजी अर्थात संख्या को आठ से भाग देना है। ऐसा करने पर हर बार दो ही, यानी राम का नाम ही आएगा।

उन्होंने इस बात को परखा कि चलो, मेरे नाम उमर के साथ देखते हैं। मेरे नाम में तीन अक्षर हैं।

नाम चतुर्गन, 3 * 4 = 12

पंचयुग कृत अर्थात, 5 जोड़ना है। 12+5=17

दो गुनी यानी, 17 * 2 = 34

अष्ठ भाजी यानी 8 से भाग देना है। 34 ÷ 8 = 4 बार भाग गया और शेष 2

यानी राम बचे।

चलो, एक और नाम कैटरीना के लिए इसे आज़माते हैं। कैटरीना यानी नाम की संख्या 4

4 * 4 = 16

16 + 5 = 21

21 * 2 = 42

42 ÷ 8 = शेष 2

उमर को बात तो जम गई और उन्होंने शिक्षक के साथ इसे गणितीय तरीक़े से बताने की कोशिश कि ऐसा क्यों हो रहा है। उन्होंने इसका हल बीजीय व्यंजकों यानी ऐल्जेब्रा के ज़रिए साधा।

कोई भी संख्या x है।

नाम चतुर्गन, x * 4 = 4x

पंचयुग कृत अर्थात, 5 जोड़ना है। 4x + 5

दो गुनी (4x + 5) 2 = 8x + 10

अष्ठ भाजी यानी, 8 से भाग देना है। 8x ÷ 8 + 10 ÷ 8

8x में 8 का भाग पूरा-पूरा जाएगा और हर बार 10 में 8 का भाग देने पर 2 ही बचेगा।

उन्होंने शिक्षक की बात को अपने बीजगणितीय ज्ञान से पुष्ट कर दिया और इसपर *संदर्भ* के 106वें अंक में एक लेख लिखा। इस लेख को पढ़कर मुझे लगा कि इस बात का बीजीय व्यंजक के ज़रिए सामान्यीकरण करने के पहले संख्याओं के साथ जो मिथक शिक्षक ने जोड़ रखा है उसपर बात करनी चाहिए।

इसे बीजीय व्यंजक से समर्थन करने के पहले केवल तर्क के आधार पर बात समझना ज़रूरी है।

"किसी संख्या का चार गुना करके उसमें पाँच जोड़ना और फिर प्राप्त संख्या को दो गुना करके आठ का भाग देना", इसका मतलब है

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

कि किसी संख्या के आठ गुने में दस जोड़कर आठ का भाग देना। अर्थात, किसी भी संख्या के आठ गुने में आठ का पूरा-पूरा भाग जाएगा और दस में आठ का भाग देने पर दो शेष बचेगा, यही हम कर रहे हैं इस दोहे में। हम इस तरह से संख्याओं पर संक्रियाओं के कई तरह के संयोजन बना सकते हैं और वांछित संख्या ला सकते हैं।

अगर यह जोड़ व गुणा अन्त में दो अंकों की संख्या ला सकता है तो कोई और जोड़ व गुणा तीन अक्षर की भी संख्या ला सकता है। थोड़ी देर संख्याओं के साथ माथापच्ची करने के बाद मुझे इस तरह का हल मिल गया। फिर मैंने उमर को चिट्ठी लिखी कि मैं सकल जगत के सारे नामों में रहीम ही रहीम यानी संख्या तीन ला सकता हूँ। इसके लिए दोहा या श्लोक कुछ इस प्रकार हो सकता है :

नाम साढ़े तीनर्गन पंचयुग कृत दौ गुनी सप्त भाजी।

सकल चराचर जगत में रहीम हि रहीम देखा जी॥

इस दोहे के अनुसार, चलिए सबसे पहले मुकेश में रहीम ढूँढ़ते हैं। मेरे नाम में तीन अक्षर हैं। तीन का साढ़े तीन गुना करके उसमें पाँच जोड़कर दो गुना करना।

अर्थात, संख्या का 3.5 गुना (3 * 3.5)=10.5

इस संख्या में 5 जोड़ना, 10.5 + 5 = 15.5

इस संख्या का दो गुना करना, 15.5*2=31

अब प्राप्त संख्या में सात का भाग देना है, यानी 31 ÷ 7

तीन शेष बचेगा अर्थात मुकेश में तो रहीम मिल गए हैं।

अब चलो मोहम्मद उमर में ढूँढ़ते हैं। मोहम्मद उमर में आठ अक्षर हैं।

(8 * 3.5 + 5) 2 = (28 + 5) 2 = 66

66 में 7 का भाग देने पर भी तीन शेष बचा तो मोहम्मद उमर में भी रहीम हैं।

सामान्य जोड़, घटाव, गुणा और भाग से समझ आ जाने के बाद हम इन कथनों का सामान्यीकरण कर सकते हैं और इसके लिए बीजगणित के निरूपण या चर संख्याओं का उपयोग कर गणितीय कथन लिख सकते हैं, जैसे— यहाँ $(3.5x + 5)\ 2 \div 7 = 3$

यहाँ x की जगह हम कोई भी संख्या डाल दें, उत्तर में 3 ही शेष आएगा।

गणित में तो शुरुआती कक्षाओं से ही संख्याओं के साथ भाषा का इस्तेमाल बहुत कम है और जो है वो इस समय के बच्चों के पास मौजूद भाषा के शब्दों से बिलकुल जुदा है। हासिल लेना, घटाना, गुणा करना, भाग देना, आदि यांत्रिक शब्दों की तरह आते हैं जो संख्या और चिह्न के प्रतिफल को उत्पादित तो करते हैं, पर अर्थ या अनुभव नहीं देते।

जब आप आम समझ से हटकर कोई बात रख रहे हों तो उस बात का स्रोत उजागर करने से वह बात, व्यक्ति की श्रेष्ठता या पाण्डित्य से अलग, ज्ञान व्यवहार की बात की तरह ही समझी जाए जिसपर सबको पद और डिग्रियों को भुलाकर संवाद करने का हक़ सम्भव हो। तो सोचिए और संवाद कीजिए। आँख मूँदकर विश्वास (अन्धविश्वास) मत कीजिए।

मुकेश मालवीय पिछले दो दशक से भी ज़्यादा समय से स्रोत शिक्षक के रूप में सरकारी और ग़ैर-सरकारी भूमिकाओं में सक्रिय हैं। कक्षा अनुभवों को लेकर सतत लिखते रहते हैं। वर्तमान में अनुसूचित जाति विकास विभाग के शासकीय आवासीय ज्ञानोदय विद्यालय, होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) में शिक्षक पद पर कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mukeshmalviya15@gmail.com

मोहल्ले में अपनी जगह : मोहल्ला एलएसी

ज़रूरतमन्द बच्चों के साथ अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र का एक मॉडल

क्षमा यादव, खेमप्रकाश यादव, निदेश सोनी

इस मॉडल की ज़रूरत क्यों पड़ी ?

कोविड-19 के भारत में आने की सुगबुगाहट के साथ ही एक अजीब-सी अनिश्चितता का माहौल बनने लगा था। लोगों से घरों में रहने और तमाम एहतियात बरतने की अपील की जा रही थी। तक़रीबन मार्च 2020 से पूर्ण तालाबन्दी शुरू हो गई। तालाबन्दी के कई दौर गुज़रे, कुछ कार्य-व्यापार शुरू किया गया, कुछ को फिर से बन्द किया गया। पर इनमें एक बात थी जो बदली नहीं थी। हर बार प्राथमिक व माध्यमिक स्कूलों को बन्द ही रखा गया था, जो आज तक भी बन्द हैं।

शहरों के बड़े और महँगे निजी स्कूलों ने ऑनलाइन माध्यमों से बच्चों को जोड़े रखने की पुरज़ोर कोशिश की है, सरकारी विद्यालयों में भी ऑनलाइन पढ़ाई को अपनाया गया। परन्तु दूर-दराज़ के गाँवों एवं आदिवासी अंचलों में कमज़ोर आर्थिक स्थिति वाले व ज़रूरतमन्द बच्चे कई कारणों से इन ऑनलाइन प्रयासों को ठीक से अपना नहीं सके, या इनसे जुड़ नहीं सके। वैसे भी प्राथमिक व माध्यमिक सरकारी स्कूलों में नामांकित ज़्यादातर तबक़ा निम्न आय वर्ग और ज़रूरतमन्दों की श्रेणी से आता है। साथ ही इनमें ज़्यादातर वह लोग हैं, जो अपने दैनिक जीवन यापन के लिए रोज संघर्ष करते हैं। तालाबन्दी ने एक ओर जहाँ इस संघर्ष को कठिन बनाया, और आजीविका कमाना प्राथमिकता बन गया था, वहीं दूसरी ओर ऐसे समय में बच्चों की शिक्षा और भी हाशियाकृत हो गई, क्योंकि ऑनलाइन माध्यमों से पढ़ाई के लिए हमेशा संसाधनों की ज़रूरत होती ही है।

मोहल्ला एलएसी का विचार

इन सबके बीच में समुदाय की मदद से बच्चों के लिए अपने मोहल्ले में ही शिक्षा की एक पहल के विचार के रूप में मोहल्ला लर्निंग एक्टीविटी सेंटर (एलएसी) की परिकल्पना उभरी। यह एक ऐसी जगह है, जहाँ हम पर्यावरण और एक

कछार के कोरकू मोहल्ले में रहने वाली 10 साल की नीतू की मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी। उसके माता-पिता मज़दूरी का काम करते हैं। उनका घर भी मिट्टी व लकड़ी से बना है। केन्द्र पर आने के पहले नीतू बात-बात पर झगड़ा करती, रोने लगती, स्कूल जाने से कतराती, और घर के कामकाज में मदद करती थी। नीतू के पालक कहते हैं कि केन्द्र के दोस्तीनुमा माहौल से नीतू में कई बदलाव आए हैं और अब वह मन लगाकर सीख रही है। वह केन्द्र पर आने के लिए ख़ुशी-ख़ुशी तैयार होती है। अपनी बेटी में आए बदलावों से वो बहुत ख़ुश हैं।

दूसरे से सीखने के विचारों को बढ़ावा देते हैं। मोहल्ला एलएसी के उद्देश्यों को देखें तो पाएँगे कि इसका पहला उद्देश्य कोरोना काल में बच्चों को स्थानीय स्तर पर शिक्षण गतिविधियों से जोड़े रखना है, ताकि उनका सीखने का क्रम अविरल चलता रहे। इस प्रक्रिया से बच्चों को शुरुआती समझ के साथ अपने परिवेशीय ज्ञान के आधार पर सीखने-समझने के और अधिक मौक़े मिल पाएँ और ज़रूरतमन्द आदिवासी बहुल क्षेत्र के बच्चों की शैक्षिक मदद हो पाए।

दूसरा यह कि इस प्रक्रिया से तमाम भ्रान्तियाँ दूर करने में मदद मिली है, जैसे– कुछ लोग मानते हैं कि सीखने-समझने का कार्य सिर्फ़ स्कूल में ही सम्भव है, लेकिन ऐसा नहीं है। बहुत-से उदाहरण मोहल्ला एलएसी के संचालन के दौरान दिखाई दिए हैं, जहाँ बच्चे स्कूल में जिन दक्षताओं को कक्षा अनुरूप हासिल नहीं कर पाए थे, अब मोहल्ला क्लास में उन दक्षताओं को सहजता से हासिल कर रहे हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस काम में वह अपने घर के, आसपास के अन्य लोगों से भी मदद लेकर आपस में निरन्तर रूप से सीख रहे हैं।

मोहल्ला एलएसी के कुछ और उद्देश्य जिन्हें समुदाय, शिक्षक और एकलव्य मिलकर पूरा करने के प्रयास करते हैं :

- अनियमित बच्चों को नियमित कर शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ना।
- व्यवहारिक समझ के साथ कार्य करने को प्रेरित करना।
- स्थानीय युवक / युवतियों को शिक्षण प्रणाली से जोड़ना।
- मूर्त से अमूर्त चिन्तन की ओर बढ़ना।
- समुदाय के साथ मिलकर और उसकी भागीदारी से कार्य करना।
- स्तरानुसार बच्चों की शैक्षणिक मदद करना।
- स्थानीय बोलचाल व भाषा के ज़रिए सीखना-सिखाना (बहुभाषिता)।
- स्थानीय माहौल के अनुरूप कार्य करना।
- समानता व समता के सिद्धान्तों के साथ शिक्षण कार्य करना।
- बिना डर के, ख़ुद करके सीखना।
- ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना।
- रटन्त प्रणाली से अलग, समझ-आधारित सोच विकसित करना।

मोहल्ला क्लास क्या है ?

मोहल्ला एलएसी स्कूल के बाहर समुदाय व एकलव्य के संयुक्त प्रयास से चलने वाला बच्चों का एक केन्द्र है। यहाँ बच्चों के साथ खेल-खेल में शिक्षण गतिविधियाँ कराई जाती हैं, जो बच्चों को सीखने-सिखाने में मदद करती हैं। बच्चों की झिझक दूर होती है, और वे खुलकर शिक्षण

गतिविधियों में भाग लेते हैं। स्थानीय संचालक की हर बच्चे पर नज़र होती है और स्तरानुसार वे उनकी मदद कर पाते हैं। मोहल्ला एलएसी में बच्चों की संख्या निश्चित अनुपात में होती है, जिससे हर बच्चे पर ध्यान देना सम्भव हो पाता है, और उसकी रुचि के अनुसार कार्य को प्राथमिकता दी जाती है।

अधिकांश शिक्षकों का मानना है कि उनपर शिक्षण कार्य के अलावा अन्य ज़िम्मेदारियाँ ज़्यादा होती हैं। इसके चलते जो मुख्य प्राथमिकता बच्चों के साथ कार्य करने की होती है, उसकी जगह उनकी ऊर्जा अन्य कामों में ज़्यादा लगती है और बच्चों के साथ उनका अकादमिक कार्य पिछड़ जाता है।

जबकि मोहल्ला एलएसी में बच्चों के साथ कार्य करना ही प्राथमिकता है, इसलिए यहाँ बच्चे समयानुसार एक गति से सीखते हैं। निरन्तर फ़ॉलोअप होता है, जिससे एक निश्चित क्रम में शिक्षण कार्य बच्चों के बीच हो पाता है।

मोहल्ला एलएसी में अनियमित बच्चों को खोजकर उनके साथ सघन रूप से कार्य हो पा रहा है। इस प्रक्रिया से अभी कुछ बच्चे ही जुड़े हैं, जो नियमित रूप से केन्द्र का हिस्सा हैं।

मोहल्ला एलएसी का केन्द्र संचालक या संचालिका अपने केन्द्र में पढ़ रहे बच्चों के पालक, समुदाय के सदस्य, स्थानीय शासकीय शिक्षकों और एकलव्य के साथ मिलकर यह प्रयास करता / करती है कि :

- मोहल्ला क्लास के ज़रिए स्थानीय स्तर पर शिक्षण वातावरण बना रहे।
- बच्चों के स्तर अनुरूप कार्य सरल और सहज रूप में हो सके।
- समुदाय के लोगों का शिक्षा के प्रति विश्वास और अधिक बढ़ सके।
- अनियमित बच्चों को अधिक संख्या में जोड़ा जा सके।
- व्यवहारिक / तार्किक समझ के साथ कार्य को प्राथमिकता मिल सके।
- बच्चों को परिभ्रमण व अन्वेषण का माहौल मिल सके।
- बच्चों में स्कूल के प्रति डर दूर हो सके।
- बच्चों की अभिव्यक्ति और अधिक बढ़ सके।

बच्चे को और उसकी सीखने की गति को समझना

बच्चे स्कूल में ज़्यादातर कार्य पाठ्यवस्तु के अनुसार करते हैं, और अधिकांश शिक्षक भी

हरिओम, करण और राहुल, कछार के कोरकू मोहल्ले के पक्के दोस्त हैं। तीनों की उम्र लगभग 10-11 साल के आसपास है। परिवार में माता-पिता को गुज़र-बसर के लिए मज़दूरी करने मुगलाई जाना होता है, और ये अपने परिवार की आजीविका चलाने में मदद करने के लिए बकरियाँ चराने जाते हैं। बकरी पर बैठना, और कंचे खेलना इन्हें बहुत पसन्द है, और स्कूल जाने के नाम से ही डर लगता था। इन तीनों बच्चों को सुबह-सुबह दो घण्टे के लिए लगभग तीन माह तक केन्द्र बुलाया गया, और इनकी मर्जी के अनुसार काम दिए गए। पहले इन्हें केन्द्र पर लाने के लिए मनुहार करनी होती थी, अब ये अपनी मर्जी से आ रहे हैं, केन्द्र पर पढ़ाई कर रहे हैं, और कहते हैं कि जब स्कूल खुलेगा तो स्कूल भी जाएँगे।

इसी प्रक्रिया को ज़्यादा कारगर समझते हैं। वे उसी क्रम में कार्य करवाते हैं। स्कूल में बच्चे के अनुभवों के लिए ख़ास जगह नहीं होती है। इस कारण से बच्चों की रुचि उस अधिगम में कम होती है, और बच्चों का सीखना प्रभावित होता है।

हर बच्चे को बढ़ती उम्र के अनुसार परिवार की तरफ़ से परवरिश और सहयोग मिलना ज़रूरी होता है। शिक्षक और बच्चों के बीच भी यही स्थिति है। उदाहरण स्वरूप, यदि किसी बच्चे को संख्या बोध में मुश्किल हो रही है और यदि उससे संक्रिया पर आधारित कार्य करवाया जाए तो ज़्यादा सम्भावना है कि यह बच्चे के अनुकूल न हो। इसलिए हर बच्चे की आवश्यकता को समझना शिक्षक का कर्तव्य होता है, क्योंकि हर बच्चा ख़ास होता है और कुछ शब्द भण्डार और परिवेशीय जानकारी लेकर स्कूल में आता है। यदि बच्चे को समझते हुए उसके अनुकूल कार्य दिया जाए तो उसकी सीखने की गति बढ़ती है, यदि नहीं तो इसका उलट हो जाता है।

मोहल्ला एलएसी इस पूरी सोच का जीवन्त उदाहरण है, जहाँ बच्चे को केन्द्र में रखकर उसके उसके परिवेश और व्यवहारिक जीवन की बातों को आधार बनाकर शिक्षण कार्य करवाया जाता है। इससे बच्चे काफ़ी सहज और जवाब देने को उत्सुक होते हैं, और उनकी बढ़ती तार्किकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

मोहल्ला एलएसी और समुदाय का जुड़ाव

केन्द्र पर पालकों व समुदाय के जुड़ाव के निम्न उद्देश्य हैं :

- समुदाय को शिक्षा से जोड़कर स्कूल व केन्द्र के वातावरण में बदलाव का प्रयास करना।
- बच्चों को सीखने के बारे में जागरूक करना।
- शिक्षा के नवाचार व केन्द्र प्रबन्धन में भागीदारी।

भौंरा की बिजली कॉलोनी में 11 साल की दुर्गा धुर्वे का घर है। दुर्गा के 2 भाई व 4 बहन हैं। दुर्गा उनमें सबसे छोटी है। खपरैल की छत के साथ कच्चा मकान है। वह खाना, बर्तन, कपड़े, झाड़ू सब काम कर लेती है। कक्षा 6 की दुर्गा को 10 तक गिनती भी नहीं आती थी। उनके स्कूल के शिक्षक ने दुर्गा को केन्द्र पर लाने का निवेदन किया। शुरुआत में चुप रहने वाली दुर्गा अब सरल शब्दों को पढ़ पाती है और शब्दों को जोड़कर लिख पाती है। अँग्रेज़ी में वह अल्फ़ाबेट्स पहचान पाती है, और वह अब अपना नाम हिन्दी व अँग्रेज़ी में लिख पाती है, साथ ही अपने माता-पिता का नाम भी लिख लेती है। गणित में उसकी संख्या की समझ 50 तक हो गई है, जिसमें वह संख्या बोध के साथ-साथ संक्रिया में जोड़-घटा भी कर लेती है।

समुदाय को शिक्षा से जोड़ना और साथ मिलकर वातावरण में बदलाव करने का यह प्रयास काम को बेहतर करने पर बल देता है। चूँकि मोहल्ला एलएसी समुदाय के बीच ही संचालित होता है, इसलिए यह बच्चे के निकट और अनुकूल होता है। बच्चे समयानुसार उमंग और उत्साह के साथ इसमें शामिल हो पाते हैं। जो बच्चे किन्हीं कारणों से नहीं आ पाते हैं, उन्हें मोहल्ला क्लास में लाने हेतु पालकों की मदद ली जाती है। हर केन्द्र में स्थानीय समिति का गठन होता है, जो केन्द्र पर नज़र रखती है। समिति सदस्य बच्चों को केन्द्र तक लाने में मदद करते हैं और बीच-बीच में बच्चों के माता-पिता भी यहाँ आकर अपने अनुभव या व्यवसाय के बारे में बच्चों से बातचीत करते हैं। उनके समय में पढ़ाई किस तरह हुआ करती थी, उस समय महँगाई की स्थिति क्या थी, आज क्या है, आदि बातों पर चर्चा करते हैं। इससे बच्चों को आत्मबल मिलता है, जो उन्हें सोचने व समझने में मदद करता है।

क्षेत्रीय भाषा का उपयोग करना

मोहल्ला एलएसी में बच्चे अपनी क्षेत्रीय भाषा, यथा– कोरकू, कतिया, गौली में भी बात करते

हैं, और शिक्षण कार्य में भी उसका उपयोग करते हैं। अपनी भाषा में कहानी, कविताओं का अनुवाद कर पोस्टर बनाते हैं, जिससे बच्चों के शब्द भण्डार में बढ़ोतरी के साथ ही अलग-अलग भाषाओं का ज्ञान होता है। उनकी झिझक दूर होती है, और कौशल एवं नेतृत्व क्षमताओं का विकास होता है।

कोरोना काल के बाद, इसे आगे चलाया जाना चाहिए या नहीं ?

ये अनुभव सुझाते हैं कि मोहल्ला एलएसी का संचालन निरन्तर किया जाना चाहिए क्योंकि यह सुरक्षा की दृष्टि से और सोच एवं समझ के साथ कार्य करने का एक अच्छा केन्द्र है। मोहल्ला एलएसी से स्थानीय शिक्षा व्यवस्था में हमें निम्न चीज़ें होती देखने को मिली :

- जिस गाँव में मोहल्ला क्लास संचालित की जाती है वहाँ पढ़ाने वाला साथी स्थानीय होती / होता है जो हमेशा बच्चों की पहुँच में होती / होता है।
- स्थानीय युवक-युवतियों को अपने शैक्षणिक कौशलों को एक शिक्षक के रूप में बढ़ाने का मौक़ा मिलता है।
- प्राथमिक स्तर पर बच्चों के लिए कक्षा 3 से 5 सीखने के आधार वर्ष होते हैं, जिसमें उनसे यह अपेक्षा होती है कि वे भाषा में पढ़ना, लिखना, समझना और गणित में संख्या बोध एवं संक्रिया पर कार्य की समझ विकसित कर सकें। इसके लिए मोहल्ला एलएसी में बच्चों को व्यावहारिक जीवन से जोड़कर मूर्त से अमूर्त चिन्तन, कंकड़, पत्थर, तीली-बण्डल जैसी शिक्षण अधिगम सामग्री की मदद से और अधिक सन्दर्भयुक्त माहौल मिल पाता है।

हाशियाकृत समुदाय और साधन विहीन परिवारों के बच्चों के लिए ये मोहल्ला गतिविधि केन्द्र एक तरह से सीखने-सिखाने की एक समुदाय-आधारित और कहीं ज़्यादा समावेशी जगह बनकर उभरे हैं।

- कार्यक्रम के विस्तार को थोड़ा बदला जा सकता है लेकिन बन्द किया जाना ठीक नहीं होगा।
- समुदाय की भागीदारी बढ़ाकर इसे और बेहतर बनाया जा सकता है।
- इस प्रक्रिया से शाला त्यागी बच्चों का का आँकड़ा बहुत कम हो सकता है, और बच्चे स्कूल से जुड़े रहेंगे।
- गाँव-मोहल्ले में ऐसे शिक्षित वॉलेंटियर तैयार करना जो बच्चों की स्थानीय स्तर पर मदद हेतु आगे आ सकें।

समुदाय के अपने निजी परिवेश और सहज अनौपचारिक ढाँचे में चलने वाले ये केन्द्र बच्चों के सीखने को ज़्यादा अर्थपूर्ण बना रहे हैं।

लेख के सभी चित्र एकलव्य फ़ाउण्डेशन से साभार

क्षमा, पिछले 5 सालों से एकलव्य संस्था शाहपुर में कक्षा 1 से 8 तक के बच्चों के साथ मोहल्ला एलएसी जैसे अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र में काम करती हैं। बच्चों की शिक्षा और गाँव की महिलाओं और युवतियों के साथ महिला स्वास्थ्य पर काम करने में रुचि है।
सम्पर्क : ykshama70@gmail.com

खेमप्रकाश, पिछले 6 सालों से एकलव्य शाहपुर में बच्चों की शिक्षा को लेकर कार्यरत हैं। बच्चों के साथ केन्द्र संचालन के बाद अभी अपने क्षेत्र में ऑनलाइन माध्यमों से बच्चों को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं।
सम्पर्क : khemyadav1990@gmail.com

निदेश, लगभग 3 साल मुस्कान संस्था भोपाल के साथ और पिछले 14 सालों से एकलव्य संस्था के साथ काम कर रहे हैं। बच्चों और शिक्षकों के साथ गणित सीखने में रुचि है। मध्यप्रदेश व राजस्थान राज्य सरकारों की गणित पाठ्यपुस्तक लेखन समिति में शामिल रह चुके हैं।
सम्पर्क : nideshsoni@gmail.com

कक्षा 1 और 2 में रचनात्मक लेखन की गतिविधियाँ

भारती पंडित

शुरुआती कक्षाओं में बच्चों के साथ की गई सहज और अर्थपूर्ण बातचीत, जिसमें निजी अनुभव, कल्पनाशीलता, ब्योरे, संवेदना आदि का समुचित समावेश होता है, लिखना सीखने में बड़ी मददगार होती है। अगर कक्षा 1-2 में ही लेखन की विभिन्न गतिविधियाँ योजनाबद्ध और सहज ढंग से बातचीत की जाए तो आगे की कक्षाओं में लेखन के उत्तरोत्तर निखार की सम्भावना काफ़ी बढ़ सकती है। इस आलेख में भारती पंडित ने लेखन की इन विविध गतिविधियों के माध्यम से रचनात्मक लेखन की प्रक्रिया का अनुभवपरक ब्योरा प्रस्तुत किया है। सं.

शुरुआती लेखन की बात करें तो स्वयं बोली गई बात, अपने अनुभवों को शब्दों या वाक्यों में लिख पाना आदि से इसका सिलसिला शुरू होता है जो आगे जाकर रचनात्मक लेखन की ओर बढ़ता है। रचनात्मक लेखन भाषा के महत्त्वपूर्ण कौशलों में से एक है। कक्षा 1-2 में पढ़ना-लिखना सीख जाने के बाद अगली कक्षाओं में सामान्यतः रचनात्मक लेखन के अभ्यास शामिल किए जाते हैं जिससे बच्चे अपनी कल्पनाशीलता, अनुभव और सृजनात्मकता का उपयोग करते हुए कहानी, कविता, पहेलियाँ आदि लिखने की ओर बढ़ें और भाषा के एक महत्त्वपूर्ण कौशल को हासिल कर सकें। लेकिन शुरुआती कक्षाओं में भी यदि हम योजनाबद्ध तरीक़े से कुछ रोचक गतिविधियों के माध्यम से सार्थक लेखन पर काम करें तो ये बच्चे सरलता से रचनात्मक लेखन की तरफ़ बढ़ सकते हैं और आगे की कक्षाओं में यह कौशल और पैना हो सकता है।

कुछ समय पहले हमने शिक्षकों के साथ 'भाषा की कक्षा में सृजनात्मकता' शीर्षक से एक कोर्स संचालित किया था। कक्षा 3 से 8 तक के बच्चों के लिए उसमें काफ़ी गतिविधियों की सम्भावना थी जिन्हें शिक्षकों ने कक्षा में करके भी देखा।

कक्षा 1-2 को पढ़ा रही शिक्षिका ने कहा। "मैं इन गतिविधियों को अपनी कक्षा में भी करवाना चाहती हूँ, पर ये बच्चे अभी ठीक से पढ़-लिख नहीं पाते हैं, तो कैसे कर पाएँगे?"

उनके इस कथन ने मुझे भी सोचने पर मजबूर कर दिया। यह सही है कि जब तक बच्चे पढ़ना-लिखना ठीक से नहीं सीखते, कविता-कहानी, पहेली आदि लिखना उनके लिए मुश्किल है, पर क्या मौखिक गतिविधियों के रूप में कुछ ऐसा करवाया जा सकता है जो बच्चों को रचनात्मक लेखन की ओर प्रशस्त करने का मार्ग दिखाए? यूँ भी भाषा की बुनियाद मज़बूत हो, बच्चों का शब्दकोश समृद्ध हो और बच्चे रचना के स्वरूप को समझने लगें तो आगे जाकर उन्हें उसे लेखन में उतारना अधिक सहज हो जाएगा।

"आप कक्षा में कौन-कौन सी गतिविधियाँ करवाती हैं?" मेरा सवाल था।

"मैं अभी तो बच्चों को पढ़ना-लिखना ही सिखा रही हूँ। कविता का चार्ट पढ़ना, उसमें शब्द और वर्ण पहचानना, कविता की पट्टी जमाना, चित्र बनाना आदि काम बच्चे ही करते हैं।" शिक्षिका ने जवाब दिया।

"ठीक है, तो हम इन्हीं गतिविधियों के साथ कुछ और चरण जोड़ेंगे जो बच्चों को रचनात्मकता की तरफ़ ले जाने में मदद करेंगे।"

हम दोनों ने मिलकर कुछ गतिविधियों को सूचीबद्ध किया और उनके लिए काम आने वाली सामग्री, उनकी प्रक्रिया, समय सीमा आदि पर विस्तृत बात की। ये गतिविधियाँ हमने सप्ताह में तीन दिन भोजनावकाश के बाद के कालखण्ड में करवाने की योजना बनाई।

उन्हीं गतिविधियों को नीचे विस्तार से दिया जा रहा है :

कविता पर काम करना

इस कक्षा में 'अरी गिलहरी', 'पेड़', 'लाल टमाटर' आदि कविताओं पर काम हो चुका था और बच्चों को ये कविताएँ ज़ुबानी याद थीं साथ ही कुछ शब्दों की पहचान भी थी। वे अनुमान से कविता पढ़ पाते थे। अगली योजना 'वह देखो वह आता चूहा' पर काम करने की थी। कविता का चार्ट लगा हुआ था, उसमें से देखकर कविता पढ़ने की गतिविधि थी। कविता का अभिनय, उसके शब्दों की ओर ध्यान दिलाना, पंक्तियों का क्रम पहचानना, एक जैसे शब्दों की पहचान, आदि पर काम होने के बाद बच्चों से कहा गया कि आपको इस कविता में सबसे अच्छे पाँच शब्द कौन-से लगे, उन्हें कॉपी में लिखो और पढ़कर दिखाओ। सब बच्चे ठीक से लिखना नहीं जानते थे मगर उन्होंने जो टेढ़ा-मेढ़ा लिखा था, उसे पढ़ पा रहे थे। इसके बाद हमने उनका ध्यान आता चूहा, मुस्कराता चूहा, खाता चूहा आदि की ओर दिलाया और पूछा, आता, खाता, मुस्कराता जैसे और कौन-से शब्द हो सकते हैं? बच्चों ने थोड़ी देर सोचकर पानी पीता, पुस्तक पढ़ता, गाना गाता, चिल्लाता, पतंग उड़ाता जैसे शब्द बोलना शुरू किया। हमारा निहितार्थ सिद्ध हो गया था। मैंने कहा, चलो इस कविता को आगे बढ़ाते हैं– वह देखो वह आता चूहा... अब इसके आगे क्या-क्या जोड़ सकते हैं? जिस बच्चे ने जो शब्द बताया था, उसे वे कविता में पिरोकर बताने लगे– पानी पीता चूहा, पुस्तक पढ़ता चूहा, पतंग उड़ाता चूहा, गाना गाता चूहा, ऊधम मचाता चूहा, ज़ोर से चिल्लाता चूहा, कपड़े काटता चूहा...

स्पष्ट था कि बच्चों को कविता आगे बढ़ाने का तरीक़ा समझ में आ रहा था। शिक्षिका ने बच्चों द्वारा बोली जा रही सारी पंक्तियाँ एक चार्ट पर लिख दीं। अब इस तरह बनी हुई नई कविता को सबने मिलकर पढ़ा। ये देख, ये मेरी लाइन है, कहते हुए बच्चे बड़े ख़ुश हो रहे थे।

जब हमें यह समझ में आ गया कि बच्चे अपने मन से कुछ पंक्तियाँ सोच सकते हैं तो अब इस गतिविधि को थोड़ा अलग से किया गया। इसमें हमने बोर्ड पर एक पंक्ति लिखी–

हवा चली सरसरसर

अब शिक्षिका ने बच्चों से बात की कि हवा के चलने से सरसर की आवाज़ होती है, और किस-किस की आवाज़ आपको ध्यान है?
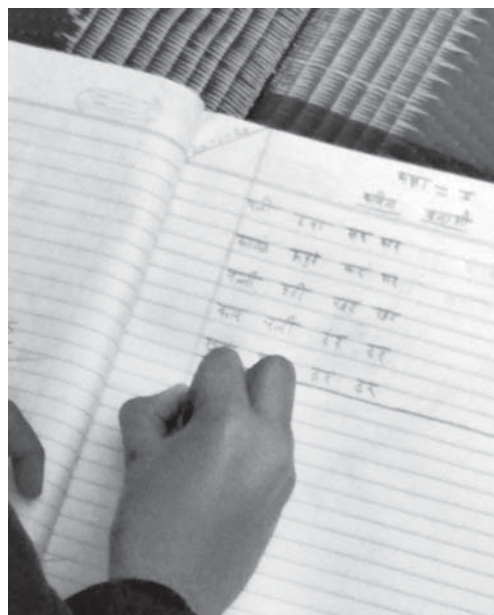
बच्चे थोड़ी देर सोचते रहे और फिर एक आवाज़ आई—चिड़िया उड़ी फरफरफर

दूसरी आवाज़ आई— बादल बोले गड़गड़गड़, पानी टपका टपटपटप

तीसरा बच्चा बोला— हमारी छत टपकी टपटपटप

पहली कक्षा की एक बच्ची बोली— नाव चली टपटपटप

उसके पास बैठा बच्चा बोला— नाव की आवाज़ सुनी है क्या? टपटप तो पानी का टपका लगता है। वह बच्ची हँसने लगी। शिक्षिका ने बताया कि नाव चलने की आवाज़ को छपछपछप कह सकते हैं।

पर मैडम, काग़ज़ की नाव की आवाज़ तो होती ही नहीं, दूसरी कक्षा के एक बच्चे का प्रश्न था। हम दोनों एक दूसरे की तरफ़ देख मुस्कुरा दिए, मन में सन्तोष था कि बच्चे कविता रचने का आरम्भिक तरीक़ा और सन्दर्भ दोनों समझ पा रहे हैं। हाँ, जब असली नाव पानी पर चलती है, तो ऐसी आवाज़ होती है। शिक्षिका ने उत्तर दिया।

थोड़ी ही देर में हमारे पास दस-बारह पंक्तियाँ आ चुकी थीं और बच्चों ने छोटी-सी कविता बना ली थी।

एक और बात उल्लेखनीय थी कि इस बीच कुछ बच्चों ने कार चली, स्कूटर चला, घोड़ा चला, आदि की भी बात की। हम कुछ कहते इतने में ही दूसरी कक्षा की एक बच्ची ने कहा, अरे! यहाँ तो बारिश के मौसम की बात कर रहे हैं तो उसकी आवाज़ें बताओ न... हमें आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता हुई कि बच्चे मूल विषय से पंक्तियों के जुड़ाव को समझ रहे हैं। इसपर शिक्षिका ने बात की और वाहनों की आवाज़ों को लेकर एक अलग कविता बनाई गई। इन कविताओं को पढ़ा गया और बच्चों ने अपनी कॉपी में लिखा। अब इन कविताओं को चार्ट पर लगाया जाना था ताकि बच्चे उन्हें लगातार देख सकें।

इस गतिविधि में बच्चों में कविता के विषय, संरचना, उसे आगे बढ़ाने आदि की थोड़ी समझ विकसित होती नज़र आ रही थी।

कहानी पर काम करना

झोला पुस्तकालय की पुस्तकों की कहानियों को लेकर भी इस कक्षा में काम होता था। कहानियों को हाव-भाव से पढ़कर सुनाना और उनपर बात करना कक्षा में होता था। कहानी में आए कुछ शब्दों को पढ़ने का भी कार्य किया जाता था। इन सबके साथ हमने कहानी पर चित्र बनाना, कहानी को अपने शब्दों में लिखना और कहानी का अभिनय करवाना, आदि गतिविधियाँ चुनीं। इन गतिविधियों को करवाते समय एक और विचार आया कि क्यों न दूसरी कक्षा के बच्चों से बातचीत करके ही किसी कहानी को गढ़ा जाए। अब तक बच्चे कहानी को अपने शब्दों में सुना पा रहे थे, उसका अभिनय भी कर पा रहे थे। हमने इसकी शुरुआत पहले चित्र कहानी से करने का विचार किया। बच्चों को एक चित्र दिखाया और उस चित्र से कोई कहानी ध्यान में आती है क्या, इसपर बात की। पर यह प्रयास सफल नहीं हुआ, चूँकि बच्चे चित्र का वर्णन ही करते जा रहे थे। हमने उसे कहानी के रूप में बदलने की भी कोशिश की मगर बच्चों को उससे अरुचि होने लगी।

अगले दिन हमने कुछ अलग-अलग चित्र बच्चों के सामने रखे— एक तितली जो बग़ीचे में थी, दूसरे चित्र में तितली फूल पर थी, तीसरे चित्र में चिड़िया उसी पेड़ पर थी, चौथे चित्र में तितली और चिड़िया कुछ बात कर रही थीं। अब जब बच्चों को एक चित्र देखकर कहानी का पहला वाक्य बोलने को कहा तो बात बन गई। एक तितली थी जो रोज़ बग़ीचे में जाती थी। पहला वाक्य दूसरी कक्षा के बच्चे ने बताया। क्या इस तितली को कोई नाम दे सकते हैं?

तितली के नाम के बारे में बात हुई और नाम आया रंगीली... अब वाक्य को मैंने दोहराया— रंगीली तितली रोज़ एक बग़ीचे में घूमने जाया

करती थी। अब दूसरे चित्र में? वह हर फूल पर जाती थी, फूलों से उसकी दोस्ती थी। थोड़ी बातचीत के बाद अगला वाक्य बना। इस तरह से चित्रों की सहायता से पाँच-छह पंक्तियों की एक कहानी बन गई।

कोर्स में हमने बिग बुक की बात की थी। शिक्षिका ने इस कहानी की पंक्तियों को चार्ट मोड़कर उसके पन्नों पर स्केच पेन से लिखा। बच्चों से अपनी-अपनी कॉपी पर इन पंक्तियों को लिखने और चित्र बनाने को कहा गया। फिर कुछ बच्चों ने इन चित्रों को चार्ट पर भी बनाया और कुछ ने चित्रों में रंग भरा। ऐसे बच्चों ने ख़ुद एक कहानी और उस कहानी की किताब भी बनाई।

पहेली बनाओ

इन गतिविधियों को करते हुए पहेली बनाने पर काम करने का विचार भी आया। बच्चे पहेली बूझ तो लेते हैं मगर बना पाएँगे कि नहीं, पता नहीं... शिक्षिका थोड़ी दुविधा में थीं। कोशिश करके देखते हैं, मैंने कहा। हमने दो तरह की पहेलियाँ उनके सामने रखीं :

वाक्य की पहेली, जैसे– मेरा रंग सफ़ेद है, मैं लिखने के काम आता हूँ...

गीत पहेली, जैसे– ऊपर जाती-नीचे आती, डोर बाँधकर मैं लहराती

आसमान में हूँ लहराती, बच्चों के मन को हूँ भाती

बच्चों को पहेलियाँ बूझने में बहुत मज़ा आया। अब हमने उनसे कहा, अपनी किसी वस्तु के बारे में वाक्य पहेली बना सकते हो? हमने कुछ उदाहरण दिए, जैसे– पंखा, बस्ता, बोर्ड, कॉपी, टिफ़िन के बारे में ऐसे वाक्य बनाओ...

बच्चों ने इसे जल्दी समझ लिया और कई वाक्य आए :

मैं बिजली से चलता हूँ, हवा देता हूँ, बताओ कौन हूँ?

मैं होमवर्क लिखने के काम आती हूँ, बताओ मैं कौन हूँ?

मेरा रंग लाल, पीला, काला, नीला होता है, मुझे कन्धे पर लटकाते हैं, किताबें रखते हैं, बताओ मैं कौन हूँ?

हालाँकि गीत पहेली को लेकर समस्या बनी रही, पर हमें विश्वास था कि लगातार इस तरह के उदाहरण देकर काम करवाते रहने से बच्चे जल्दी ही गीत पहेलियाँ भी बनाने लगेंगे।

वस्तुओं से बातचीत

एक और मज़ेदार गतिविधि इस कक्षा में कराई गई। एक स्कूल में मैंने कक्षा 5 के बच्चों को बोतल, चोटी, दीवार, मेज़, कुत्ता, आदि को पत्र लिखने के लिए कहा था और बच्चों को उसमें ख़ूब मज़ा आया था। मेरे मन में आया कि इस कक्षा में भी यह गतिविधि मौखिक रूप से करवाई जा सकती है, पत्र भले नहीं मगर सामान्य बातचीत तो हो ही सकती है। मैंने यह विचार मैडम से साझा किया। हमने बच्चों से कहा कि हम लोग अपने दोस्तों से, घर के लोगों से, पड़ोसी आदि सबसे बात करते हैं। पर यदि आपको अपने बस्ते से बात करनी हो, इस पानी की बोतल से बात करनी हो, कुत्ते से बात करनी हो, अपनी चोटी से बात करनी हो तो क्या बात
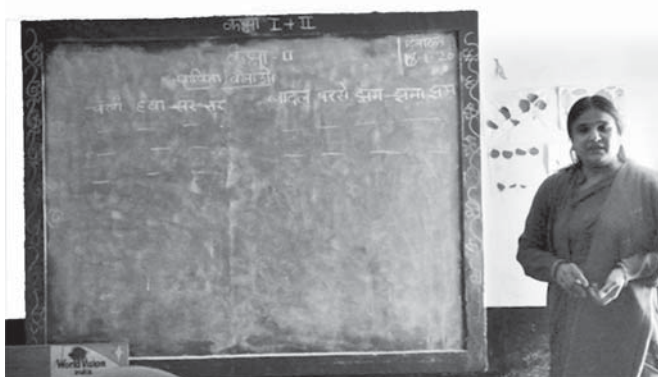
करोगे? बच्चे पहले तो चुप रह गए। समझ नहीं पाए कि क्या कहा जा रहा है। फिर शिक्षिका ने अपनी बोतल उठाई और उसे कहा, बोतल, तुम्हारा रंग मुझे बहुत पसन्द है। तुम मेरे बहुत काम भी आती हो पर एक बात बताओ, दिनभर पानी भरे-भरे थकती नहीं? भीगती रहती हो तो जुकाम नहीं होता?

बच्चे पहले तो ख़ूब हँसे, फिर एक-दो बच्चों ने मैडम के ही वाक्यों को दोहराना शुरू किया। हमने अब उन्हें बोतल को छोड़कर किसी और वस्तु से बात करने को कहा। एक बच्चे ने बस्ते से बात की– तुम इतनी सारी किताबें उठाकर थक जाते हो न! लाओ तुम्हारे पाँव दबा दूँ। अरे पर बस्ते के पाँव कहाँ हैं? बाक़ी बच्चे हँस पड़े। यह गतिविधि हमने कई दिनों तक जारी रखी और बच्चों को अलग-अलग वस्तुओं से बातचीत करने का मौक़ा दिया, मौखिक रूप से अपनी बात गढ़ने और नए शब्दों का प्रयोग करने का भी अवसर उन्हें मिला, नए शब्द या वाक्य हम भी सुझाते रहे। हालाँकि इसे आगे लेखन तक नहीं ले जाया जा सका।

इन गतिविधियों को करवाते समय एक मुख्य बात यह समझ में आई कि बच्चों को यदि मज़ा आने लगे, क्या करना है यह समझ में आने लगे, तो उनके लिए हर गतिविधि आसान हो जाती है। यह सम्मिलित कक्षा थी जिसमें कक्षा 1 और 2 के बच्चे शामिल थे। निश्चित ही कक्षा 1 के बच्चे शुरुआत में गतिविधियों में उतना हिस्सा नहीं ले पाए मगर कक्षा में क्या हो रहा है, उसे बड़े ध्यान से समझने की कोशिश में रहते थे। बाद में अपनी समझ के मुताबिक़ गतिविधियों में हिस्सा भी लेने लगे थे। हालाँकि उनके जवाब एकदम आरम्भिक स्तर के हुआ करते थे मगर भाषा पर पकड़ बनाने की दृष्टि से यह सहभागिता भी बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। इसके अलावा कक्षा 2 के बच्चे अकसर कक्षा 1 के बच्चों को अपने साथ शामिल कर लिया करते थे जिससे साथ मिलकर सीखने का क्रम भी आगे बढ़ता रहता था।

लिखित भाषा पर पकड़ बनाने के लिए मौखिक स्तर पर काम किया जाना बहुत आवश्यक होता है। बच्चे जो भी लिखना चाहते हैं, उस संरचना की उन्हें समझ हो जाए तो विचारों को क्रमबद्ध करना उनके लिए आसान हो जाता है। इसी को ध्यान में रखते हुए इस कक्षा में ये गतिविधियाँ की गईं। हालाँकि कोविड महामारी के चलते स्कूल बन्द हो गए अतः इसके बाद इन बच्चों के साथ काम न हो सका। पर उम्मीद यही है कि ये अनुभव उन्हें अगली कक्षा में भी अवश्य काम आएँगे।

भारती पंडित दो दशक तक स्कूली शिक्षा में अध्यापन करती रही हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन भोपाल (मध्यप्रदेश) में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : bharti.pandit@azimpremjifoundation.org

बोलते चित्र : अधूरी बातों को पूरा करने का ज़रिया

रुबीना ख़ान

बच्चों को अपनी रोज़मर्रा और पढ़ाई-लिखाई की दिनचर्या में कहकर व लिखकर अनुभव साझा करने के अवसर मिलते रहते हैं। लेकिन चित्र जैसे सशक्त माध्यम से अभिव्यक्त करने के मौक़े कम ही बन पाते हैं। लेख में शहरी वंचित तबक़े के बच्चों के साथ काम के आधार पर लेखिका ने बताया है कि बच्चों के साथ चित्रों पर कैसे काम किया जाए ताकि वे इस माध्यम में अपने विचारों को बेहतर अभिव्यक्त कर पाएँ। बच्चों से चित्र बनवाने के लिए विषय तय करने व चित्रों पर सार्थक बातचीत के कुछ तरीक़े भी इस लेख में प्रस्तुत किए गए हैं। सं.

चित्र वह माध्यम है जिससे किसी भी उम्र का व्यक्ति न केवल अपनी बात कह पाता है बल्कि उसकी ज़िन्दगी से जुड़े अन्य पहलुओं को भी इसमें बख़ूबी देखा जा सकता है। जब किसी बात को कहने, लिखने या बताने की मुश्किल सामने आती है तब चित्र एक अच्छे विकल्प के रूप में काम करते हैं। कभी-कभी चित्र केवल मज़ेदारी के लिए न बनवाए जाकर मुद्दों पर आधारित बनवाए जाने चाहिए; जैसे किसी परिस्थिति और उसका विवरण बच्चों को उपलब्ध करवाकर इसपर बच्चों के साथ काम करना। किसी परिस्थिति विशेष पर बच्चों के साथ काम करने के दौरान ही बच्चों की पहचान, उनके व्यक्तित्व की झलक भी इनमें नज़र आ जाती है। यह वह गतिविधि है जहाँ वास्तविकता के साथ ही बच्चे की कल्पनाशीलता को भी कहीं-न-कहीं जगह मिल पाती है। बच्चे की नज़र से इसे बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। पुस्तकालय गतिविधियों के दौरान मुझे कई बार इसे क़रीब से जानने का अवसर मिला है।

एक बार बस्ती बैठक के दौरान बस्ती स्तर पर बने बाल समूह (आज़ाद जुगनू क्लब) के बच्चों के साथ चर्चा करते हुए 'मेरी दुनिया' थीम पर चित्र बनाने का विचार बना।

हमने विषय तय किया कि अगर हमें अपनी दुनिया बनाने का मौक़ा मिले तब हम किस तरह की दुनिया बनाएँगे? उसमें क्या-क्या हो सकता है और क्या नहीं?

इस प्रक्रिया में 7 से 12 वर्ष की उम्र के 16 बच्चे शामिल रहे।

यह थीम बच्चों को थोड़ी अलग लगी जिसपर चित्र बनाने की उत्सुकता भी उनमें थी। इस थीम पर चित्र बनाने के दौरान वीर और रिमझिम द्वारा कुछ पन्ने भी फाड़कर फेंके गए। शायद उनकी सोच पन्नों पर उस तरह से नहीं आ पा रही थी जैसा वे सोच रहे थे। ख़ैर, वे फिर से अपने इस काम में व्यस्त हो गए। बच्चों ने जो चित्र बनाए वे इस तरह थे :

- परिवार, दोस्त और उनके पालतू जानवर एक साथ एक घर में रह रहे हैं।
- तालाब किनारे उनका घर है जहाँ वे मछलियों से बातें कर रहे हैं।

- घर में तारों से रोशनी की हुई है।
- रोते, उदास चेहरे हवा में उड़ते हुए उनसे दूर जा रहे थे।
- वे अपनी मनपसन्द खाने की चीज़, खिलौनों के बीच बैठे हैं।

समूह के हर बच्चे का प्रयास रहा कि वह अपना सोचा हुआ चित्र बना पाए, चाहे उसके लिए उन्हें थोड़ा ज़्यादा वक़्त ही क्यों न देना पड़े; इस कोशिश में कई बच्चों को अपने साथियों से किसी चित्र की आकृति को समझकर बनाते भी देखा गया। नितिन, रोहन, अकबर और मिष्ठी भी इसमें शामिल हुए जो पहले कह रहे थे कि हमसे चित्र नहीं बनते, हम नहीं बनाएँगे। बाद में वे ख़ुद से ही पन्ने लेकर चित्र बनाने लगे।

इस तरह के कई अनुभव बच्चों के बीच से मिलते रहे हैं।

ख़ुशी के पल

'सेल्फ़ इमेज' से जुड़ी चर्चा की अगली कड़ी में दूसरे दिन चित्र बनाने की गतिविधि कुछ सवालों के साथ शुरू की गई।

विषय रखा गया कि आपको जो काम करना पसन्द है वैसा करने को मिलता है तब क्या होता है, कैसा लगता है?

इस सवाल के जवाब में जो चित्र आए वो ऐसे थे... मुस्कुराते चेहरे, डांस करते और कभी हवा में उड़ते बच्चे, दोस्तों के साथ मस्ती और कहीं पानी के साथ शरारतें करते बच्चे।

चित्रों को बनाते वक़्त चेहरे के बदलते भावों से उनके मन की स्थिति भी समझ आ रही थी। दस वर्षीय छाया अपने में ही धीमे-धीमे मुस्कुरा रही थी, वहीं उसकी हमउम्र पूनम अपनी सहेली को देख शरारत से बार-बार पलकें झपका रही थी।

- ख़ुशी से जुड़ी बातों पर चित्र बनाते समय पेंसिल तेज़ी से चलती रही तो कभी पास बैठे साथी को बार-बार देख ही बच्चे मुस्कुराते रहे।
- मुश्किल परिस्थिति में उलझन भरे चेहरे के साथ बार-बार चित्र को मिटाते तो कभी माथे पर हाथ फेरते।
- इसी तरह दुःख या उदासी के लम्हों की बात, जैसे– कोई ख़ास चीज़ आपसे दूर हुई? या कब अकेलापन महसूस किया? इन सवालों पर बच्चे ख़ामोशी से सोचते नज़र आए, चित्र बनाते वक़्त कुछ उदास चेहरे, तो कुछ बच्चे पेपर से अपने आँसू साफ़ करते दिखे। उन बच्चों से इस गतिविधि के बाद ख़ासतौर से बात की। बच्चे अपने डर, अनिश्चितताएँ और बुरे अनुभव साझा करके काफ़ी हल्का महसूस करते हैं। जो बात चित्रों में अधूरी रह जाती है वह बातचीत से कुछ पूरी हो पाती है ऐसा मुझे महसूस हुआ।

इसी तरह 'बस्ती बाल मेला' के दौरान बच्चों के एक समूह के साथ चर्चा से निकले कुछ सवालों पर काम किया जिसमें आठ से चौदह वर्ष के दस बच्चे शामिल रहे। विषय रखा कि यदि हमें हमारी बस्ती, समुदाय से जुड़ी जानकारियों को चित्रों के माध्यम से किसी को दिखाना / बताना हो तो कौन-सी बातें इसमें ख़ासकर रहेंगी?

समूह में विभिन्न जनजाति समुदायों के बच्चे होने से उनकी चित्रों की कैफ़ियत भी विविध रही।

अगरिया (लोहार समुदाय)

इस समुदाय के लोग पीढ़ियों से लोहे से
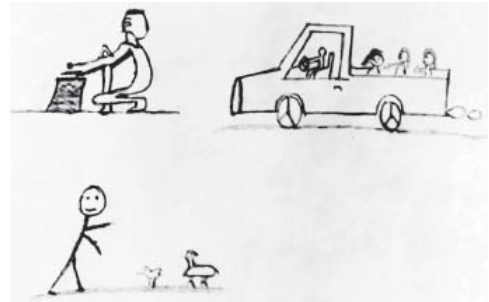
जुड़ा काम करते आए हैं। इस काम के चलते ये कई-कई महीने बसेरे पर निकल जाते हैं जहाँ ये इनके द्वारा बनाए गए लोहे के बर्तन व औज़ारों को ठीक दामों में बेच सकें। इन कामों से जुड़ी महिलाएँ भी साथ जाती हैं।

समुदाय की बाक़ी महिलाएँ व किशोरियाँ वन विहार में घास काटने, खेतों पर काम करने जाती हैं। बस्ती के कई पुरुष व लड़के चाकू पर धार करने, दो पहिया वाहन पर वेल्डिंग मशीन रखकर फेरी लगाने का काम करते हैं। वर्तमान समय में कुछ लोगों ने पुराने काम न चलने के कारण अपने कामों में बदलाव भी किया है।

बस्ती की स्थिति अगर देखें तो कुछ कच्चे-पक्के घरों के अलावा यहाँ ज़्यादातर घर लोहे व टीन से बने हैं। ये घर मज़बूत हैं और इस सोच के साथ बनाए गए हैं कि बस्ती को विस्थापित करने की स्थिति में इन्हें कहीं भी ले जाना आसान रहे, क्योंकि यह अवैध बस्ती की श्रेणी में आती है।

बहरहाल, बच्चों के चित्रों की दुनिया में वापस लौटते हैं। इन सवालों पर बच्चों ने कुछ इस तरह के चित्र बनाए :

लोहे का सामान (झारा, छन्नी, चूल्हा, अमकटना, चाकू, इत्यादि) बनाते लोग, खेतों में काम करती महिलाएँ, पेड़ की छाँव में खाना खाते लोग, टेम्पो में सामान के साथ जाते लोग, बस्ती में खेलते बच्चे, पालतू जानवर, बकरा-बकरी, मुर्ग़ा-मुर्ग़ी के साथ बैठे बच्चे। बच्चों के बनाए चित्रों में ये सब हिस्से बख़ूबी दिख पाए।

इस समूह के साथ किए काम के बाद मुझे इसे और समझने की ज़रूरत लगी कि क्या किसी और समुदाय की जानकारी भी इस माध्यम से आ सकती है, तब दो अन्य समुदायों, नट और पारधी, के बच्चों के साथ भी इसे इसी तरह किया।

भाट, नट समुदाय

ये समुदाय राजस्थान के अलग-अलग क्षेत्रों से भोपाल आकर बसे हैं। इनकी भाषा राजस्थानी

मारवाड़ी है। महिलाओं का पहनावा ख़ासतौर पर राजस्थानी है। एक या दो छोटे पक्के कमरों में यह अपने संयुक्त परिवार के साथ रहते हैं।

काम की बात की जाए तो यहाँ के पुरुष व लड़के त्योहारों व सांस्कृतिक-धार्मिक कार्यक्रमों में ढोल बजाने का काम करते हैं। इसके साथ ही घास के घोड़े-हाथी बेचने का काम करते हैं, जो यहाँ के पुरुष और महिलाएँ दोनों ही बनाते हैं। लकड़ी पर चेहरे बनाने के हुनर से भी कुछ पुरुष वाक़िफ़ हैं। एक और काम है जिसमें इस समुदाय के बच्चे भी माहिर हैं। वैसे यहाँ जिन कामों का ज़िक्र किया गया उन सबमें कहीं-न-कहीं बच्चों की शामिलियत रहती है, लेकिन बात जब कठपुतली के माध्यम से सन्देश देने की होती है तब बच्चे ख़ुशी के साथ इसे कर लेते हैं।

इन सब कामों की झलकियाँ, यहाँ का पारम्परिक नृत्य, बच्चों का सड़कों पर घूमते हुए काम करना तो कहीं किसी सड़क किनारे अपने सामान– घोड़े-हाथी, फूलदान– को क़रीने से जमाए बेचना, यह सब चित्रों के ज़रिए निकलकर आया।

पारधी समुदाय

इस समुदाय का मुख्य काम कबाड़ बीनने का रहा है। मेरे सम्पर्क में रहे बच्चों के अलावा भी यहाँ के बच्चे इस काम से जुड़े रहे हैं। इनके बुज़ुर्ग जंगलों में शिकार करने (शिकार

का सामान बेचने), जड़ी-बूटी बेचने के काम से भी जुड़े रहे हैं जिसके चलते उस समय इनपर लगा अपराधी जाति का टैग आज तक इनके साथ चला आ रहा है। इसकी वजह से इनके आज के कामों को भी इस नज़र से देखते हुए पुलिस व अन्य लोगों के साथ इनकी मुश्किलें बनी ही रहती हैं। कुछ लोग मनिहारी के साथ ही मज़दूरी से जुड़े कुछ अन्य कामों को भी कर रहे हैं।

बस्ती की स्थिति को देखें तो एक छोटे-से कच्चे-पक्के कमरे में यह अपने परिवार के साथ रहते हैं। इसके साथ ही इनके द्वारा बीनकर लाया (छाँटकर रखा) सामान व कुछ पालतू जानवर भी होते हैं।

समुदाय के बच्चों के चित्रों में उनके कामों के साथ ही ज़िन्दगी में चल रही मुश्किलों की झलक भी देखने को मिली। आड़ी-तिरछी लाइनों के साथ गुदे हुए छोटे-छोटे चित्र भी मिले। ये गोदा-गादी उनकी जीवन परिस्थितियों, समाज के साथ संघर्ष और बेचैनी को भी दिखाती है।

वहीं दूसरी तरफ़ चित्रों के साथ ही इनमें किए गए रंगों की भी अपनी महत्ता है। जहाँ नट समुदाय के कई बच्चों के चित्रों में रंगों की भरमार रही वहीं पारधी समुदाय के कुछ बच्चों के चित्र बेरंग तो कुछ गहरे, दबे रंगों से सराबोर थे।

इस प्रक्रिया व सवालों में कुछ बदलाव करते हुए अगरिया समुदाय के कुछ किशोर और युवाओं के साथ भी गतिविधि की गई। इस पूरी प्रक्रिया को इन लोगों की नज़र से भी समझना चाहा।

विषय था– अपनी ज़िन्दगी को एक पेड़ के रूप में अभिव्यक्त करना। बहरहाल, उन्हें अपनी ज़िन्दगी का पेड़ बनाना था जिसमें वे पहलू दिख पाएँ जो उनसे जुड़े हैं। बारह साथी इस प्रक्रिया में शामिल रहे। कुछ सोचते हुए सभी अपने कामों में व्यस्त हो गए। मेरी कोशिश थी कि कोई किसी के पेड़ को न देख पाए, ताकि एक समान पेड़ न बने। कुछ समय बाद सभी समूह में आकर बैठे। आपसी सहमति के साथ एक-एक व्यक्ति अपने चित्र को सामने रखते हुए अपने साथियों से उसपर चर्चा कर रहा था।

पेड़ों की टहनियाँ आधी हैं। बनाने वाला उसकी व्याख्या करता है कि रिश्ते, चीज़ें मिलती तो हैं लेकिन अधूरी रह जाती हैं।

पेड़ों के अलग-अलग हिस्से से निकलते

कोने अपने ऊपर लगे ग़लत आरोप के प्रति ग़ुस्सा ज़ाहिर कर रहे थे।

मज़बूत जड़ें उनके हौसले को दिखा रही थीं। छोटे-से पौधे को काँटों से घिरा दिखाना कहीं-न-कहीं उनकी ज़िन्दगी की तमाम मुश्किलों को बयाँ कर रहा था।

इन सबके परे कुछ ऐसे बच्चों से भी मिलना हुआ जो मज़हबी लड़ाई का हिस्सा रहे। इनके चित्रों में जलते घर, वीरान गलियाँ, किसी को मारते और रोते लोग दिखे।

चित्रों में बच्चों की पहल

बाल समूह (आज़ाद जुगनू क्लब) के कुछ प्रतिनिधि बच्चों ने बस्ती के बाक़ी बच्चों के साथ हिंसा से जुड़ा सर्वे करना तय किया। इस प्रक्रिया में दोनों तरह के बच्चे शामिल रहे जो स्कूल जाते हैं और जो स्कूल नहीं जा पाते व मुख्यत: आजीविका से जुड़े कामों में संलग्न हैं। कुछ सवाल बच्चों ने बनाए जिससे हिंसा के प्रकार और बच्चों पर हो रहे उसके असर को समझते हुए मिलकर उसपर काम किया जा सके।

जिन बच्चों को सवालों के जवाब देने में मुश्किल या झिझक हुई, उन्होंने चित्र के माध्यम से अपनी बात कही। इसमें घर, स्कूल, काम की जगह, बस्ती, थाना, पार्क, बाज़ार, खेल का मैदान शामिल रहे। ये सभी वे जगहें थीं जहाँ बच्चों के साथ हिंसा होती है। चित्र जिस भी तरह से बने थे लेकिन उनमें बच्चों की स्थिति समझ आ रही थी। इन चित्रों में मार खाते, रोते, ख़ुद को बचाते, तो कभी किसी
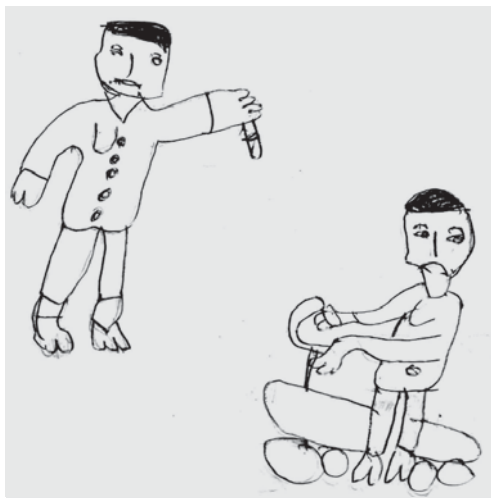
और की मदद की जद्दोजहद में उलझे बच्चे नज़र आए।

कहना ग़लत नहीं होगा कि बच्चों या बड़ों द्वारा बनाई तस्वीरें उनके मन का आईना होती हैं, जिनमें उनकी ज़िन्दगी झलकती है। बोलने, लिखने के साथ ही चित्र भी किसी इंसान को समझने के लिए मदद करते है। शहरी वंचित तबक़े के कुछ समुदायों के बच्चों के साथ काम करने के दौरान मैं यह अनुभव कर पाई।

लेख के सभी चित्र बाल समूह आज़ाद जुगनू क्लब के बच्चों ने बनाए हैं।

रुबीना ख़ान 10 वर्षों से मुस्कान संस्था के साथ काम कर रही हैं। संस्था में शुरुआती तीन साल शहरी वंचित तबक़े के आदिवासी समुदाय ख़ासकर कामकाजी बच्चों के साथ शिक्षा पर काम किया। सात वर्षों से इन्हीं बस्तियों में यूनिसेफ़ के सहयोग से बच्चों की सुरक्षा और अधिकारों के लिए समुदाय व विभाग स्तर पर कार्य कर रही हैं। शिक्षा में दिलचस्पी होने से बच्चों के लिए पुस्तकालय व पढ़ने की गतिविधियों में भी शामिल रहती हैं।

सम्पर्क : khanrubina89@gmail.com

गणित कक्षा के कुछ अनुभव

सुशांत पानी

लेख में प्राथमिक स्तर पर गणित शिक्षण की कुछ समस्याओं का ज़िक्र करते हुए गणित के कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों पर कक्षा अनुभव आधारित चर्चा की गई है। इनमें इबारती सवाल, हासिल के सवाल और हासिल की समझ, स्थानीय मान, ग़लत उत्तरों के विश्लेषण से शिक्षण की समझ बनाना आदि विषय शामिल हैं। इन अनुभवों से हासिल गणित शिक्षण के कुछ सामान्य निष्कर्षों का विश्लेषणपरक विवरण भी लेख में दिया गया है। सं.

आमतौर पर इबारती सवालों को हल करने में प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों को काफ़ी परेशानी होती है। बच्चे अकसर यह पूछते हुए देखे जाते हैं कि इस सवाल में क्या करना होगा– जोड़, घटाव, गुणा या भाग? इसके कुछ मुख्य कारण मुझे समझ में आते हैं : पहला, इबारती सवालों पर स्कूलों में चर्चा बेहद कम होती है। किसी अवधारणा को पढ़ाते समय अन्त में दो-चार इबारती सवाल करवा दिए जाते हैं; दूसरा, जिस भाषा में सवाल लिखे हुए होते हैं उस भाषा पर पकड़ कम होती है और बच्चे अकसर समझकर पढ़ नहीं पाते; तीसरा, गणितीय भाषा को समझने और समस्या समाधान में कमज़ोर होना। *एनसीएफ़ 2005* में कहा गया है कि बच्चों को सवाल हल करने के मौक़े देने के साथ-साथ बच्चों से सवाल भी बनवाए जाने चाहिए। लेकिन स्कूलों में बच्चों द्वारा सवाल बनवाने की प्रक्रिया शायद ही कहीं देखने को मिले। वैसे हमारा पाठ्यक्रम यह अपेक्षा करता है कि बच्चे दैनिक जीवन में संख्याओं पर संक्रियाएँ (जोड़, घटाव, गुणा व भाग) करने के अपने तरीक़ों का विकास कर सकेंगे, पर इसका भी पर्याप्त मौक़ा नहीं मिलता।

इस लेख में उपरोक्त मुद्दों पर कुछ अवलोकन एवं बातचीत रखने का, और क्या बच्चे ख़ुद से इबारती सवाल बना पाते हैं, इसे समझने का प्रयास किया गया है। यह बातचीत तीसरी से पाँचवीं कक्षा के सरकारी स्कूलों के बच्चों के साथ की गई है।

कक्षा में बातचीत की प्रक्रिया

बच्चों के साथ इस सवाल के साथ चर्चा प्रारम्भ हुई कि क्या वे दुकान में जाते हैं? सभी बच्चों ने तुरन्त जवाब दिया कि वे सभी दुकान में जाते हैं। अपने उत्तर में उन्होंने बताया कि वे वहाँ घर के सामान ख़रीदने, कॉपी, पेन, इरेज़र, कटर, बिस्किट, टॉफ़ी, स्नेक्स, आदि लेने जाते हैं। यह बात साझा करने में वे बहुत उत्साही लगे। सभी के पास दुकान जाने का अनुभव था। इससे समझ में आया कि बच्चों के पास इस तरह के अनुभव मौजूद हैं जिनमें वह गणितीय संक्रियाओं को दुकान में लेन-देन के समय इस्तेमाल करते हैं।

कक्षा में काम करने के लिए ज़रूरी लगा कि पूछे जाने वाले सवालों में कक्षा के बच्चों के नाम

आएँ ताकि उनको लगे कि उनका बातचीत से लेना-देना है और वे सक्रिय होकर सीखने की प्रक्रिया में भाग ले सकें।

बच्चों की इबारती सवालों पर समझ

बच्चों के सामने सवाल रखा गया– कृतिका ने 3 रुपए की पेंसिल और 3 रुपए का इरेज़र ख़रीदा। उसने दोनों चीज़ें ख़रीदने में कितना पैसा ख़र्च किया?

इसपर अधिकांश बच्चों ने बताया– 6 रुपए। इससे समझ आया कि यह बच्चे जानते हैं एवं उन्हें थोड़े और चुनौतीपूर्ण सवाल दिए जा सकते हैं।

सवाल : तनीश पास की दुकान में गया और उसने 40 रुपए की चीनी और 18 रुपए का गेहूँ ख़रीदा। उसे दोनों चीज़ों के एवज़ में दुकानदार को कितने रुपए देने पड़ेंगे?

कुछ बच्चों ने पूछा, "इसके लिए क्या करना होगा जोड़ना या घटाना?" ख़ुशबू, अरबाज़ और तनीश ने उत्तर में 58 बताया, और पूछा भी कि उत्तर सही है या ग़लत। मैंने कहा, "अभी नहीं बताऊँगा। जब सब हल कर लेंगे, तब बताऊँगा।" वे सब दुविधा में पड़ गए। मैंने उनसे अपनी कॉपियों में हल करने के लिए कहा। इसके बाद मैंने कुछ बच्चों को बोर्ड पर हल करने के लिए कहा। ज़्यादातर ने 40 और 18 का जोड़ सही से हल कर दिया, लेकिन तनीश ने रोचक ढंग से सवाल हल किया था। उसने 40 और 18 का योग 68 दिखाया था। जब मैंने उससे पूछा कि 68 कैसे आया, उसने बताया कि जैसे ऊपर वाले के अन्त में 0 है सो उसने 4 दहाई में से 10 उधार लिया और 8 में जोड़ दिया। और तब यह 18 हो गया। उसने 8 को इकाई में रखा और एक 10 को दहाई में ले गया। तब 1 को 4 और एक 1 से जोड़ा जो 6 बन गया। इस तरह उत्तर 68 आया। क्या शानदार तर्क था!! इस लम्बे व घुमावदार तर्क में कई गड्ड-मड्ड हुए शार्टकट शामिल थे।

ख़ुशबू ने दोनों तरह से हल किया था। उसने 40 और 18 को गिनकर 58 निकाला और फिर कॉलमवाइज़ भी जोड़ा था। अन्य दो बच्चों ने 50 उत्तर निकाला था। उनका तर्क था कि इकाई में 0 है, इसलिए 0 को 8 में जोड़ने पर 0 आया और 4 व 1 को जोड़ा तो 5, इस प्रकार उत्तर 50 आया।

बच्चे जब कोई उत्तर देते हैं तो उसके पीछे कुछ तर्क भी मौजूद होते हैं, बच्चों द्वारा की गई इस प्रक्रिया को समझा जाए तो इसमें निम्न तर्क समझ में आता है :

- ऊपर ब्लैकबोर्ड पर बच्चे ने हासिल वाले घटाव के नियम को लागू करते हुए उत्तर तक पहुँचने की कोशिश की है।
- दूसरे ने गुणा के नियम को (किसी भी संख्या को जब 0 से गुणा करते हैं तो 0 आता है) लागू किया है।

सवाल है, बच्चे किस स्थिति में ऐसा करते हैं?

अब मैंने हल करने के लिए बोर्ड पर दो प्रश्न लिखे। ये थे :

1. ख़ुशबू के पास 5 टॉफ़ी हैं, अरबाज़ के पास 7 टॉफ़ी हैं। दोनों के पास कुल कितनी टॉफ़ियाँ हैं?
2. एक बैग में से 5 आम निकालने के बाद 12 आम बचे हुए हैं। बैग में पहले कितने आम थे?

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

बच्चों के लिए यहाँ वर्ड प्रॉब्लम हल करने में मुश्किलें हुईं कि इसमें जोड़ करें, घटाव, गुणा या भाग करें? हालाँकि उनमें से ज़्यादातर बच्चों ने प्रश्न का सही उत्तर बता दिया लेकिन जब मैंने यह कहा कि मैं अभी सही और ग़लत नहीं बताऊँगा, अन्त में बताऊँगा तब वे अपने सही या ग़लत होने को लेकर दुविधा में फँस गए। टॉफ़ी वाले सवाल में बच्चों को दिक़्क़त नहीं हुई, लेकिन 'एक बैग में से 5 आम निकालने के बाद 12 आम बचे हुए हैं। बैग में पहले कितने आम थे?', सवाल में बच्चे असमंजस में थे। इन बच्चों ने इबारती सवालों को पढ़कर ख़ुद से शायद ही कभी हल किया हो। इसलिए भी पूछ रहे थे कि इसमें क्या करना है। और यह भी स्पष्ट नहीं था कि अब जब 12 बचे हैं तो जोड़ कैसे करें? चूँकि 5 तो निकाले हैं अतः उन्हें तो घटाना चाहिए।

फिर भी बच्चे प्रश्न हल करने में जुटे। तभी मेरी सहयोगी एक और मैडम कक्षा में आईं और उन्होंने बच्चों से कहा कि अगर सवाल में 'कुल' है तो आपको जोड़ करना है। उन्होंने 'कुल' शब्द पर ज़ोर देकर बोला।

अब सभी बच्चों ने दोनों सवालों के सही उत्तर निकाल लिए। कुछ ने ख़ुद ही किया और कुछ ने दूसरों को देखकर। हालाँकि बच्चों को यह स्पष्ट नहीं था कि 'पहले कुल कितने आम थे' का आशय क्या है और यहाँ 12 ही आम बचने के बाद भी जोड़कर 17 उत्तर क्यों हुआ? सवाल हल करवाने की जल्दबाज़ी में ऐसे शार्टकट अन्य जगह पर दिक़्क़त देंगे। लेकिन उस समय मैंने कुछ नहीं कहा एवं कुछ और टास्क देने का सोचा जिससे कुछ और अभ्यास का मौक़ा बने। लेकिन इसके लिए मैंने अलग तरीक़ा इस्तेमाल किया।

मैंने बच्चों से कहा कि मैंने आपको जो भी प्रश्न दिए आपने उन्हें हल कर दिया, अब आप मुझे कम-से-कम दो प्रश्न हल करने के लिए दो। वे बड़े ख़ुश हुए। उन्होंने मुझे जोड़ के प्रचलित (अंकीय सवाल) सवाल देने शुरू किए। मैंने कहा कि वे मुझे इबारती सवाल दें।

यह उनके लिए एकदम ही नई स्थिति हो गई। उन्होंने कभी ख़ुद से प्रश्न नहीं बनाए थे, लेकिन अब बनाने शुरू किए। जब उन्होंने अपने प्रश्न दिखाए तो मैंने देखा कि उनमें से कुछ ने तो सवाल की सही रूपरेखा बनाई थी, किसी ने मात्र स्टेटमेंट बनाया, जैसे– मैं बाज़ार से 30 आम लाई थी, वहीं अरबाज़ एक अधूरे सवाल के साथ आया। उसने लिखा– मैंने 5 रुपए के आलू ख़रीदे हैं। मैंने 7 रुपए की गाजर ख़रीदी है।

प्रश्न देखने के बाद मैंने उससे कहा, "मुझे क्या करना है इसमें? तुमने मुझसे कोई सवाल पूछा ही नहीं है। मैंने जो सवाल दिए थे, उनमें मैं तुम लोगों से कुछ पूछता था, इसमें तो वो नहीं है। मुझसे कुछ पूछोगे तब मैं उसका उत्तर दूँगा।" तब उसने कहा, "अब समझ में आया, मैं अभी करके लाता हूँ।"

कुछ समय बाद अधिकतर ने अपनी कॉपी में दो-दो प्रश्न लिख लिए थे। जो निम्न प्रकार हैं :

ख़ुशबू, कक्षा 4

- मैं बाज़ार से 5 आम लाई। मैंने 2 आम खाए, भाई ने 3 आम खाए। कुल मिलाकर दोनों ने कितने आम खाए?
- मैं बाज़ार से 5 रुपए का पेन लाई, मेरा भाई 4 रुपए की पेंसिल लाया।

कुल मिलाकर दोनों कितने रुपए का सामान लाए?

तनीश, कक्षा 4

- मेरे पास 5 आम थे, नितिन के पास 10 आम थे। कुल मिलाकर कितने आम थे? 5+10=15 (उसने हल निकाला था)।
- अरबाज़ के पास 5 आम थे, मेरे पास 10 आम थे। कुल कितने आम थे?

अरबाज़, कक्षा 4

- मैंने 5 रुपए के आलू ख़रीदे हैं, मैंने 7 रुपए की गाजर ख़रीदी है। कुल मिलाकर 7 और 5 जोड़कर कितने हुए, 12 हुए हैं।

बबीता, कक्षा 3

- मैं बाज़ार से 1 किलो बैंगन लाई, मैं बाज़ार से 2 किलो लौकी लाई। कुल मिलाकर कितने किलो सब्ज़ी लाई?
- मैं बाज़ार से 1 रुपए की रबर लाई, मैं बाज़ार से 1 रुपए की बुक लाई। कुल मिलाकर कितने रुपए का सामान लाई?

हिमानी, कक्षा 5

- मैं बाज़ार से 50 किलो आलू लाई। मैं बाज़ार से 10 किलो टमाटर लाई।

सरोज, कक्षा 3

- मैं बाज़ार से 2 किलो टमाटर लाई। मैं बाज़ार से 3 किलो भिण्डी लाई।
- मैं बाज़ार से 1 रुपए का कटर लाई।

नितिन, कक्षा 5

- मैंने 5 रुपए के आलू ख़रीदे। मैंने 7 रुपए किलो अंगूर ख़रीदे। कुल मिलाकर 7 और 5 को मिलाकर 12।

रबिया (कक्षा 3), यासीन (कक्षा 4) और लक्ष्मण (कक्षा 4) ने कुछ भी नहीं लिखा। मैंने उनसे पूछा कि उन्होंने कुछ भी क्यों नहीं लिखा। वे चुप बने रहे। लेकिन कैसे लिखना है यह तो वे जानते थे, क्योंकि उन्होंने इससे पहले के दो सवाल कॉपी में हल किए थे। हो सकता है, मैं उन्हें समझाने में कामयाब नहीं हुआ।

सवाल बनाने की प्रक्रिया और इन सवालों में आई चीज़ों और अनुभवों को समझें तो बच्चों की निम्न क्षमताएँ उभरकर आती हैं :

- सभी इबारती सवालों में सब्ज़ियों, कॉपी-किताबों के उनके अनुभव पर आधारित बातें हैं जिनमें वह गणित की मूलभूत संक्रियाओं का अनुप्रयोग करते हैं।
- यह भी दिखा कि ख़ुद से बनाए हुए सवालों के सही जवाब भी बच्चों को पता होते हैं।
- इसीलिए जब बच्चों को मौखिक सवाल हल करने को बोला गया तो उन्होंने सही उत्तर दिया, उन्हें मुश्किल तब पैदा हुई जब उसी सवाल को लिखित में करना पड़ा।

बच्चों के साथ अपनी बातचीत के बाद मैंने साथी शिक्षिका से इबारती सवाल पर बात शुरू की। चर्चा में समझ आया कि कीवर्ड (keyword) से इबारती या अन्य सवालों पर काम करना कई बार जोख़िमपूर्ण हो सकता है। कई सवाल हैं जो 'कुल' शब्द का प्रयोग किए बग़ैर बन जाते हैं। जैसे– 'एक बैग से 5 आम निकालने के बाद 12 आम बचे हुए हैं। पहले बैग में कितने आम थे।' यदि उन्हें 'कुल' कीवर्ड की आदत हो जाएगी तो वे ऐसे सवालों को कैसे हल करेंगे, जहाँ कुल न लिखा हो। या कुल का प्रयोग हम दूसरे अनुप्रयोग में कर सकते हैं। जैसे– 'मैं 100 रुपए लेकर बाज़ार गया, मैंने 20 की कॉपी, 5 की पेंसिल और 3 का कटर लिया। अब मेरे पास कुल कितने रुपए हैं?' यहाँ उससे अपेक्षा जोड़

व घटाव दोनों की है। मैडम ने भी बताया कि बच्चे ऐसे सवालों को हल करने में कन्फ़्यूज़ हो सकते हैं व इसी तरह की दिक़्क़तें उन्हें कई बार आती हैं। यहाँ बात हुई कि बिना कीवर्ड के भी हम किसी समस्या को समझ सकते हैं, और उसके तरीक़े हमने सोचे। कई नए प्रतीकों और अनुप्रयोगों के इस्तेमाल के उदाहरण के बाद यह ठीक से समझ आया कि कीवर्ड से इबारती सवाल हल करना उपयुक्त विधि नहीं है। पूरे सवाल को समझकर ही क्या कितना है, समझ आ सकता है।

इस कक्षा व उसपर हुए मन्थन में एक और मसले पर चर्चा हुई। उसके बारे में कुछ बातें इस प्रकार हैं।

कलन विधि (एल्गोरिद्म) पर बातचीत

इबारती सवालों पर तीन बच्चों द्वारा अलग-अलग तरीक़ों से हल निकालने की कोशिश ने हमें कलन विधि पर चर्चा के लिए प्रेरित किया, क्योंकि हासिल वाले जोड़ की सही अवधारणा की समझ के लिए बच्चों को स्थानीय मान की समझ होनी ज़रूरी है। कलन विधि में जोड़ की हासिल लेने की प्रक्रिया के बारे में यह पूछने पर कि हमें हासिल कब लेना पड़ता है, बच्चों ने बताया कि ये हासिल वाला सवाल है इसलिए हम हासिल लेते हैं। सवाल था : 69 + 54

तब मैंने एक और सवाल दिया, 45 + 23

ख़ुशबू : “ये हासिल वाला सवाल नहीं है।”

मैं : “क्यों?”

ख़ुशबू : “इसमें हासिल है ही नहीं।”

मैं : “हासिल कब लेना पड़ता है?”

ख़ुशबू : “जब ऊपर में बड़ी संख्या होती है, नीचे में छोटी” (69 + 54)

मैं : “45 + 23 में ऊपर बड़ी संख्या है और नीचे छोटी। क्या ये हासिल वाला सवाल है?”

ख़ुशबू : “इसमें नहीं होगा।”

मैं : “एक दूसरा सवाल लेते हैं : 25 + 65”

ख़ुशबू : “इसमें हासिल लेना होगा।”

तथापि वह समस्या के लिए अपने तर्क की व्याख्या नहीं कर सकी, लेकिन वह शायद पहचान पा रही थी कि जब इकाई के स्थान का योग 10 या 10 से अधिक हो तब हम हासिल लेते हैं। और यह एक दहाई (10), दहाई के स्थान के अंकों के साथ जुड़ जाता है।

तब मैंने पूछा, “हासिल का क्या मतलब होता है?”

ख़ुशबू : “हासिल मतलब 1” (उसने 25 + 66 का सन्दर्भ लिया था और बताया कि इसमें हम 2 और 6 के साथ 1 ले रहे हैं)।

मैं : “क्या हम एक ही जोड़ रहे हैं या कुछ और जोड़ रहे हैं?”

ख़ुशबू : “1 ही है।”

मैं : “हमने 5 और 6 को जोड़ा जिससे उत्तर आया 11, और हमने इकाई में 1 रख दिया। 1 में कितना जोड़ने से 11 होता है?”

ख़ुशबू : “10”

मैं : “तब यह 10 कहाँ है? अगर ये हासिल 1 होगा तब 5 और 6 का योग 1 और 1 के योग के बराबर होगा, जो कि सही नहीं है। तो हासिल का मतलब क्या हुआ?”

ख़ुशबू और अन्य : “10”

मैंने एक और उदाहरण लिया : 169 + 154

बच्चों ने कहा कि जब हम 9 और 4 को जोड़ते हैं तो 13 आता है। हम 3 को इकाई में रखते हैं और 10 हासिल लेते हैं।

तब मैंने पूछा, “फिर 6 और 5 का स्थानीय मान क्या हुआ?”

उनमें से कुछ ने बताया कि 60 और 50 व 6 एवं 5 को जोड़ेंगे तो 11 हो जाएगा।

मैं : “ये 11 क्या है?”

बच्चे चुप हो गए।

10 के स्थान की ओर इंगित करते हुए मैंने पूछा, “ये किसकी जगह है?”

बच्चे : “दहाई की।”

मैं : “तो 11 क्या है?”

बच्चे : “11 दहाई।”

मैं : “अब क्या करेंगे?”

बच्चे : “11 दहाई के साथ 1 दहाई जोड़ देंगे तो 12 दहाई हो जाएगा।”

मैं : “दहाई की जगह पर क्या लिखेंगे?”

बच्चे : “2”

मैं : “और हासिल कितना हो जाएगा?”

बच्चे : “10”

मैं : “10 क्या है : इकाई या दहाई?”

बच्चे : “दहाई।”

मैं : “तो हासिल 10 दहाई हो गया।”

मैं : “10 दहाई बराबर कितना सैकड़ा?”

ख़ुशबू : “1 सैकड़ा।”

मैं : “अब क्या करेंगे?”

बच्चे : “अब सबको जोड़ देंगे तो 3 हो जाएगा।”

मैं : “उत्तर कितना हो गया?”

बच्चे : “323”

मैं : “तो अब हमें हासिल में क्या-क्या मिला?”

बच्चे : “1 दहाई और 1 सैकड़ा।”

मैं : “तो हासिल का मतलब 1 इकाई नहीं होता।”

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

अब मैंने एक और उदाहरण लिया। मैंने बोर्ड पर 24 और 43 जोड़ने को कहा। इस बार ख़ुशबू बोर्ड पर आई। उसने 4 और 3 को जोड़ा और इकाई में 7 लिखा। मैंने पूछा, “7 को यहाँ क्यों लिख रही हो, यहाँ (दहाई के स्थान पर) लिखो।” उसने कहा, “यहाँ लिखूँगी तो ग़लत हो जाएगा।” मैंने पूछा, “क्यों?” उसने बताया, “जो जिसकी जगह है हमें उसको वहीं लिखना पड़ता है।” शायद वह जानती थी कि नम्बर में हर अंक की जगह तय है और जब हम जोड़ते हैं, योग के अनुसार उनकी जगह पर उन्हें लिखते हैं। स्थानीय मान की समझ जाँचने के लिए मैंने सोचा कि एक-दो सवाल और करता हूँ। मैंने ख़ुशबू से कहा, “चार सौ तिहत्तर लिखो।” ख़ुशबू ने झट से बोर्ड पर 473 लिख दिया। इस तरह बच्चों से कुछ और संख्याएँ बोर्ड पर लिखने को कहा। कुछ बच्चे संख्याओं को सही से लिख पाए। अगर तुम लोगों को मुझे 473 रुपए देना है तो मुझे कितने-कितने रुपए के नोट दोगे? ख़ुशबू ने कहा, “4 सौ-सौ रुपए के, 1 पचास रुपए का, 2 दस रुपए के और 3 एक रुपए के सिक्के दूँगी।” अरबाज़ ने

कहा, "4 सौ-सौ रुपए के, 1 पचास रुपए का, 1 बीस रुपए का और 3 एक रुपए के सिक्के दूँगा।" और एक-दो बच्चों ने भी उत्तर देने की कोशिश की। "बहुत बढ़िया! मान लो, अगर तुम लोगों के पास सिर्फ़ सौ, दस और एक रुपए के ही नोट हों तो कैसे दोगे?" "यह तो आसान है सर", ख़ुशबू बोली, "मैं 4 सौ रुपए के, 7 दस रुपए के और 3 एक रुपए के नोट दे दूँगी।" कुछ और बच्चों ने भी ऐसा ही कहा। एक तीन अंक वाली संख्या में सैकड़ा, दहाई और इकाई कितने हैं या तीन अलग-अलग अंक से क्या-क्या संख्याएँ बन सकती हैं, ऐसे कई और सवाल भी कुछ बच्चे कर पा रहे थे। हालाँकि 5, 3 और 6 अंकों से बनने वाली सबसे बड़ी और सबसे छोटी संख्या क्या है, ऐसे सवालों का उत्तर बच्चे तुरन्त नहीं दे पा रहे थे। उन्हें इसे करने में मदद की ज़रूरत पड़ रही थी, लेकिन ऐसे सवालों को करने में बच्चों को बहुत मज़ा आ रहा था। मुझे लगा कि ख़ुशबू और अन्य कुछ बच्चों को स्थानीय मान की ठीक-ठाक समझ है। हालाँकि यह स्पष्ट नहीं है कि अन्य सवालों में जिनमें इकाई व दहाई के अंकों से नई-नई संख्याएँ बनानी हों, इकाई व दहाई के स्थान को पलटकर देखना हो तो उसमें ख़ुशबू सवाल समझकर आगे बढ़ पाएगी कि नहीं। यह भी स्पष्ट नहीं था कि ख़ुशबू के अलावा बाक़ी बच्चों की समझ कैसी है। क्या वह 473 जैसी संख्या को सैकड़े, दहाई व इकाई में बता पाएँगे। सौ के, दस के और एक रुपए के नोट में व्यक्त कर पाएँगे? इन बच्चों को और अभ्यास करने की आवश्यकता है। यह अभ्यास विविध ढंग के होने से उन्हें मज़ा भी आएगा और उनकी समझ भी व्यापक और गहरी होगी।

कक्षा शिक्षण के अनुभव से कुछ सामान्य निष्कर्ष

- बच्चों के पास एक नितान्त नई परिस्थिति में विचार कर सकने की क्षमता होती है। कक्षा में इबारती सवाल बनाना उनके लिए एकदम नई घटना थी जो उन्होंने दैनिक जीवन के अनुभवों से जोड़कर सीखने की कोशिश की। लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चों के पास इबारती सवालों से जुड़े अनुभव होते हैं जिनमें वह गणितीय संक्रियाओं का उपयोग कर रहे होते हैं। ज़रूरत है उन्हें सीखने में उनके अनुभवों को लाने के मौक़े देने, ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में उनके ठोस अनुभवों का प्रयोग करने और ख़ुद की समझ पर सवाल करने की ओर बढ़ाने की।

- इबारती सवालों पर बच्चों की शुरुआती प्रतिक्रियाओं को देखने पर यह समझ में आता है कि बच्चों के साथ इबारती सवालों को हल करने व सवाल बनाने के मौक़े कम होते हैं, जबकि सवाल बनाने का अवसर देना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है।

- बच्चों से इबारती सवाल बनवाने के कुछ फ़ायदे भी दिखे :

जोड़ के 2 सवाल बनाओ
मेरे पास 5 आम थे नितिन के पास 10 आम थे कुल मिलके कितने आम थे ?
5 + 10 = 15
अरबाज के पास 5 आम थे मेरे पास 10 आम थे कुल कितने आम थे ?
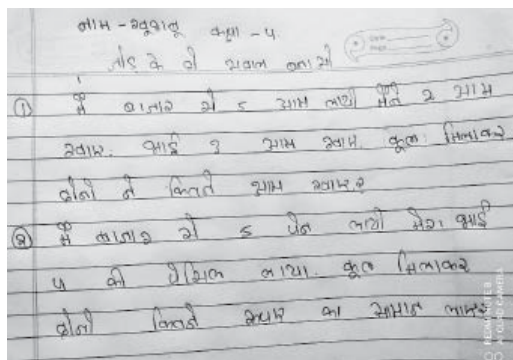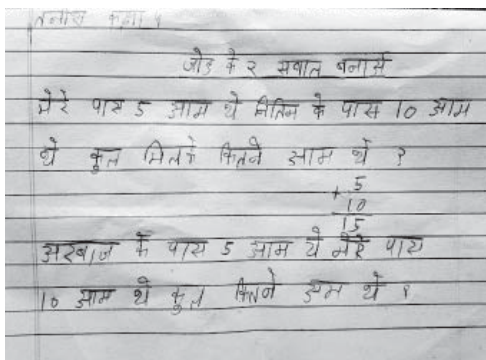
चित्र : इबारती सवाल के नमूने

- बच्चे एक नए अनुभव से रूबरू होते हैं, इससे बच्चों की रुचि बढ़ती है। हमेशा शिक्षक / शिक्षिका ही बच्चों को सवाल हल करने के लिए देते हैं। कभी ऐसा हो कि वे बच्चों से बोलें कि आज तुम सवाल बनाओ और हम सवाल हल करेंगे। हमने देखा, बच्चों को इसमें बहुत मज़ा आता है।
- बच्चों को अपने परिवेश में जोड़, घटाव करने का मौक़ा मिलता है। उन अनुभवों को सवालों के रूप में अभिव्यक्त कर पाएँगे। बच्चों द्वारा बनाए हुए सवाल में बनावटीपन बिलकुल नहीं या कम होता है।
- किन सन्दर्भों में क्या संक्रिया करनी पड़ती है, यह समझ बनना। बच्चे अकसर पूछते हैं कि इस सवाल में क्या करना पड़ेगा? वे सवाल ही तब बना पाएँगे जब उन्हें पता होगा कि उस सवाल को हल करने के लिए कौन-सी संक्रिया लगानी होगी। नियमित अभ्यास से सवाल बनाने में कुशलता आती है।
- इस पूरी प्रक्रिया में अवधारणा की समझ और पुख़्ता हो जाएगी।

- गणित में नियम और सूत्र रट लेना नहीं, बल्कि यह जानना ज़्यादा ज़रूरी है कि कोई नियम काम कैसे करता है।
- एक ग़लत उत्तर के लिए बहुत सारे तर्क मौजूद हो सकते हैं, जैसे– 40 + 18 = 68 और 40 + 18 = 50। ग़लत उत्तर पर बातचीत हमें बच्चों के उत्तरों का विश्लेषण करने और तदनुरूप शिक्षण विधि अपनाने में मदद करती है। बच्चे कैसे तर्क करते और सोचते हैं, इसके लिए बातचीत करना शिक्षण कार्य का अहम हिस्सा है।
- सवालों को हल करवाने में शार्टकट बताना, जैसे– एक शब्द पर फ़ोकस करके हल करने की राह तय करना उनके स्वयं सोचने व तर्क करने को बाधित करेगा। वह उनको आगे बढ़ने से तो रोकेगा ही, वरन् उन्हें अन्य सवालों को हल करते समय भ्रमित कर सवाल को बग़ैर समझे ग़लत शार्टकट उपयोग करने के प्रयास की ओर मोड़ेगा।
- बच्चों से अन्तर्क्रिया के इस अनुभव से यह भी स्पष्ट है कि जोड़ के सरल और सीधे इबारती सवालों में भी सवाल समझकर हल करने के लिए आवश्यक स्थिति के बाद भी जोड़ करने की प्रक्रिया की समझ होना आवश्यक है। यांत्रिक तौर पर हासिल व उधार के इस्तेमाल से बच्चों में कई सारे भ्रम पैदा हो जाते हैं।

सन्दर्भ

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005

एनसीईआरटी की कक्षा 3, 4 एवं 5 की गणित की पाठ्यपुस्तकें

शिक्षक के नोट्स

सुशांत पानी ने रूरल डेवलपमेंट में स्नातकोत्तर किया है। दस वर्षों से प्राथमिक शिक्षा में काम कर रहे हैं, आप 9 साल तक स्रोत व्यक्ति के रूप में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में जुड़े रहे हैं। वर्तमान में केवल्या एजुकेशन फ़ाउण्डेशन झारखंड में काम कर रहे हैं। शिक्षकों के प्रोफ़ेशनल डेवेलपमेंट, गणित शिक्षण और कला फ़िल्मों में विशेष रुचि है।

सम्पर्क : susantapani2@gmail.com

महामारी के दौर में ऑनलाइन क्षमतासंवर्धन के अनुभव

अर्चना कुमारी

महामारी के इस दौर ने सीखने-सिखाने के माध्यम में एक ख़ास परिवर्तन कर दिया। एक लम्बे समय तक शिक्षा का कामकाज कम्प्यूटर और मोबाइल के माध्यम से चला। बच्चों की कक्षाएँ भी ऑनलाइन ही हुईं और शिक्षकों के साथ बातचीत और प्रशिक्षण का माध्यम भी यही था। लेखिका ने इस लेख में ऑनलाइन शिक्षण के सन्दर्भ में अपने अनुभव रखे हैं। वे रेखांकित करती हैं कि ख़ासकर बच्चों के सीखने-सिखाने के सन्दर्भ में ऑनलाइन शिक्षण इतना कारगर नहीं है। पर साथ ही वे वास्तविकता को स्वीकारते हुए यह भी कहती हैं कि मौजूदा परिस्थितियों के मद्देनज़र यह कोशिश की जा सकती है कि जो सम्भव है उसका बेहतर उपयोग कैसे कर सकते हैं। सं.

हम सीखने के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से कब तैयार होते हैं? वे कौन-कौन से कारक होते हैं जो सीखने को प्रभावित करते हैं? ये प्रश्न काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो इंसान की प्रवृत्ति में ही होता है हर पल, हर परिस्थिति में कुछ-न-कुछ सीखते रहना। लेकिन मैं यहाँ जिस सीखने की बात कर रही हूँ वह कई मायनों में अलग है। वह कैसे अलग है और इसके बारे में मैं क्यों बात कर रही हूँ?

पिछले क़रीब एक-डेढ़ साल से कोविड की वजह से शिक्षकों के साथ हमारे अधिकतर कार्य ऑनलाइन माध्यम से किए जा रहे हैं। इससे पहले शिक्षकों के साथ वर्चुअल रूप में जुड़ने का अनुभव सिर्फ़ फ़ोन कॉल और व्हाट्सएप तक ही सीमित रहा है। यह फ़ोन कॉल भी केवल सूचना आदान-प्रदान और हालचाल तक ही सीमित थे, किसे पता था ऐसा वक़्त आने वाला है जब हमारी निर्भरता इन इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों पर इतनी अधिक बढ़ जाएगी। पिछले एक साल में शिक्षकों के साथ विभिन्न ऑनलाइन मंचों पर कार्य करने का बहुत ही अलग अनुभव रहा। इस एक साल में क्षमतासंवर्धन ऑनलाइन को लेकर कई बातें स्वयं मुझे भी सीखने को मिलीं जिसे इस लेख में पिरोने की कोशिश कर रही हूँ। मेरा मानना है कि अपने विचारों को लिखने से न सिर्फ़ अनुभव को संयोजित करने में मदद मिलती है बल्कि उसका बारीक़ी से विश्लेषण कर आगे की योजना बनाने में भी मदद मिलती है।

अपने अनुभवों को मैंने कुछ कारकों में विभाजित किया है। इसका यह कतई अर्थ नहीं है कि केवल यही कारक हो सकते हैं। इनके अलावा भी कई बातों को शामिल किया जा सकता है लेकिन मेरे अनुसार इन 5 कारकों के महत्त्व को समझना ज़्यादा ज़रूरी है।

1. उपयुक्त और सरल विषय सामग्री

जब भी किसी शिक्षक समूह के साथ किसी विषय को लेकर बात करनी होती है तो योजना बनाना पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण चरण होता है। योजना में शिक्षक की आवश्यकतानुसार प्रभावी एवं रुचिकर विषय सामग्री तैयार करना शामिल है। वैसे तो सभी विषय के लगभग सभी टॉपिक की सामग्री उपलब्ध है, लेकिन

थोड़े विस्तार से किसी सत्र की योजना बनाना बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए, जब शिक्षकों की आवश्यकतानुसार उनके साथ ध्वनि जागरूकता और कविता शिक्षण पर कार्य करना था तो ऑनलाइन मंच के माध्यम से कैसे इन मुद्दों पर बात की जाए, इसे लेकर बहुत ही असमंजस की स्थिति थी क्योंकि ऑनलाइन मंचों में बातचीत तो ख़ूब की जा सकती है लेकिन प्रदर्शन करने की गुंजाइश कम रहती है। शासकीय शिक्षकों के साथ लम्बे समय से कार्य करने का अनुभव यह अवश्य कहता है कि उन्हें भाषणबाज़ी से ज़्यादा सटीक उदाहरणों एवं उसपर विचार विमर्श में अधिक रुचि होती है। इन उदाहरणों के पीछे की अवधारणा को वे ख़ुद कक्षा में करते समय समझने योग्य होते हैं। जैसे– 'कविता शिक्षण और ध्वनि जागरूकता' की इस चर्चा के दौरान कई शिक्षक इस बात को बख़ूबी रख पा रहे थे कि उन्हें भी लगता है कि बारहखड़ी से बच्चों को पढ़ना सीखने में बहुत अधिक समय लगता है और कई बच्चे फिर भी नहीं सीख पाते हैं। इसलिए कविता-कहानियों का ज़्यादा-से-ज़्यादा उपयोग करना चाहिए, लेकिन यह उपयोग पढ़ने में कैसे मदद करेगा इसे लेकर शिक्षक विस्तार से नहीं बता पा रहे थे क्योंकि उन्होंने ऐसा करते किसी को कभी देखा नहीं और न ही किसी का अनुभव सुना था।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए सत्र योजना तैयार करने के दौरान मैंने कविता शिक्षण में ध्वनि जागरूकता पर कार्य करने के कुछ वीडियो तलाशे, ताकि शिक्षक ऑनलाइन माध्यम में आसानी से जुड़ सकें और उसकी उपयोगिता भी समझ सकें। इसके अतिरिक्त कुछ प्रयास जो शिक्षक कक्षा शिक्षण के दौरान करते आए हैं उन्हें व्यवस्थित करना भी इस योजना में शामिल था। जैसे– कविता में आए कुछ चुनिन्दा मात्रा वाले शब्दों पर कार्य करना (बजाय इसके कि सभी मात्राओं वाले शब्दों पर एक साथ कार्य करें), तुकान्त शब्दों पर कार्य करना, बच्चों के साथ बातचीत के मुद्दे पहले से तैयार करना (इसकी प्रेक्टिस ऑनलाइन सत्र में भी की गई जो शिक्षकों को काफ़ी मज़ेदार लगी), आदि। साथ ही चर्चा के दौरान प्रयोग में आने वाले पीपीटी में अधिक-से-अधिक पाठ्यपुस्तकों के स्क्रीनशॉट को शामिल करना काफ़ी उपयोगी रहा क्योंकि शिक्षकों के कई सवालों के उत्तर पाठ्यपुस्तक में आसानी से मिल गए थे, लेकिन शिक्षकों ने पाठ्यपुस्तक में सिर्फ़ कहानी-कविता को पढ़ा था, उसके साथ क्या-क्या कार्य किए जा सकते हैं न तो इसपर विचार किया और न ही अभ्यास में इन प्रश्नों को देखा था। कुछ कार्य पत्रक के सैंपल पर चर्चा कर शिक्षकों से इसका निर्माण करवाना भी इस दौरान काफ़ी कारगर रहा। लेकिन इसमें सभी शिक्षकों की रुचि एक जैसी नहीं थी।

इसी तरह गणित की चर्चाओं में भी सवालों का इस्तेमाल, पाठ्यपुस्तक के उदाहरण, इबारती सवालों को बनवाना, पहेलियाँ, चित्र, टीएलएम के प्रयोग का प्रदर्शन, प्रासंगिक वीडियो, चुनिन्दा लेख, आदि ऑनलाइन बातचीत को रुचिकर एवं प्रभावी बनाने में मदद करते हैं।

चित्र 1 : गणित में भाग की अवधारणा का उदाहरण

विज्ञान विषय की चर्चाओं में भी प्रयोगों के प्रदर्शन के लिए शिक्षक या सुगमकर्ताओं के द्वारा बनाए गए वीडियो, चित्रों, सवालों, लेख, पाठ्यपुस्तक के उदाहरण से अधिक मदद मिली। इसमें प्रत्येक अवधारणा

के लिए प्रभावी पीपीटी ने भी बहुत सहयोग किया। अगर इन सबकी बजाय सिर्फ़ लेख या बातचीत के माध्यम से किसी अवधारणा पर चर्चा होती तो शायद एक लम्बे समय तक शिक्षकों को जोड़ने में बहुत परेशानी का सामना करना पड़ता जिसका अनुभव भी हमें कई विषय / अवधारणाओं में हुआ जहाँ समय और अनुभव की कमी से इतनी विस्तृत तैयारी नहीं हो पाई।

2. शिक्षिकाओं की सहभागिता

इस पूरे अन्तराल में महिला शिक्षिकाओं की सहभागिता कई मायनों में बेहतर रही। वे न सिर्फ़ विभिन्न विषयों की चर्चाओं में जुड़ीं बल्कि अपने सवाल, चुनौती एवं अनुभव रखने में पुरुष शिक्षकों से आगे दिखीं (जिन चर्चाओं में मैं शामिल रही उनके, मेरे अवलोकन के अनुसार, अन्य साथियों के अलग अनुभव भी हो सकते हैं)। हम सभी परिचित हैं कि घर में रहने पर महिलाओं की ज़िम्मेदारी काफ़ी हद तक बढ़ जाती है। इसके अलावा कोविड में ख़ुद की सेहत का ध्यान रखना एक और बड़ी चुनौती है। ऐसा नहीं है कि ये सारी चुनौतियाँ पुरुष शिक्षकों को नहीं रहीं लेकिन महिलाओं की तुलना में शायद कम रही हैं। इसके बावजूद महिला शिक्षकों के विभिन्न विषयों में ख़ुद के क्षमतावर्धन को लेकर किए गए प्रयास अधिक दिखे। पुरुष शिक्षकों की भागीदारी इंग्लिश कोर्स जैसे विषय में अधिक देखने को मिली। कई महिला शिक्षकों को ख़ुद के बच्चों की ऑनलाइन पढ़ाई के लिए अपने मोबाइल से दूर होना पड़ा और अकसर कई चर्चाओं में वे बीच में कई कारणों से डिस्कनेक्ट भी हुईं। एक बार तो एक शिक्षिका ने यह तक कहा कि उनके इंग्लिश कोर्स में जुड़ने से उनके परिवार वालों को दिक़्क़त हो रही है। वे नहीं चाहते कि उनका समय बच्चों से हटकर कहीं और लगे। ऐसे कारण पुरुष शिक्षकों के साथ कभी नहीं दिखे। तकनीकी रूप से भी कई चुनौतियों का सामना करने के बावजूद महिला शिक्षकों की सहभागिता कार्यपत्रक निर्माण, सहायक सामग्री निर्माण, असाइनमेंट पूरा करने, चर्चा में सक्रिय

चित्र 2 : एक शिक्षिका के द्वारा बनाया गया पोस्टर

रहने में अधिक रही।

इन सभी कारणों को लिखने का उद्‌देश्य तुलना करने के साथ-साथ एक बारीक़ विश्लेषण करना भी है कि आख़िर ख़ुद के क्षमतावर्धन के लिए कौन अधिक प्रयासरत है और ऐसा क्यों है? क्या इसका सम्बन्ध कक्षा प्रक्रिया में भी देखने को मिलता है। अगर हम कुछ बारीक़ अवलोकन करें तो शायद यह अन्तर बहुत ही स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ें, लेकिन इसकी बातचीत फिर कभी। फ़िलहाल इन कारकों को संवेदनशीलता के साथ समझना ज़रूरी है जिससे किसी भी शिक्षक के साथ मिलकर बेहतर योजना बनाई जा सके।

3. बातचीत करने का कौशल

सभी विषयों में शिक्षकों के साथ इन दिनों कार्य करने के दौरान कुछ और बातों का भी ध्यान रखना बहुत ज़रूरी लगा। उदाहरणार्थ, विषयवस्तु को सरल भाषा में रखने से शिक्षकों

की रुचि बनी रहती है। भाषा अगर अधिक जटिल या उबाऊ होती है तो शिक्षक अपने फ़ोन को म्यूट कर चर्चा से कटने लगते हैं। इसके साथ ही ये भी समझ आ रहा था कि बातचीत के दौरान प्रयोग किए जाने वाले पीपीटी को लेखन सामग्री से भरने की बजाय चुनिन्दा महत्त्वपूर्ण बिन्दु (चित्र के साथ हो तो और भी बेहतर) रखना ज़्यादा प्रभावी है। इससे शिक्षकों का ध्यान पीपीटी को पढ़ने की बजाय सुगमकर्ता की बातों की ओर अधिक रहता है। चूँकि हम प्रतिभागियों के चेहरे के भाव नहीं देख सकते जिससे उनकी प्रतिक्रिया का अन्दाज़ा भी लगाना मुश्किल होता है, अतः ऑनलाइन चर्चाओं में बातचीत के दौरान अपनी आवाज़ को सम्मानजनक और शान्त रखना भी बेहद ज़रूरी है। इसलिए कब, कौन-सी बात उन्हें बुरी या बोझिल लग सकती है यह तय नहीं किया जा सकता। एक सुगमकर्ता में यह गुण बेहद आवश्यक है कि कैसे कम शब्दों में अपनी बातों को सटीक तरीक़े से रखे। बातचीत का दोहराव, सुनी-सुनाई बातों को रखना, प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर या स्पष्ट उत्तर की दिशा में बढ़ने में मदद न करना, शिक्षकों को बातचीत में निरन्तरता बनाए रखने से रोकता है जिसे यथासम्भव कम करने का प्रयास करना चाहिए।

6. नीचे दिए गए चित्रों में से सबसे अलग चित्र कौन सी है और क्यों? ध्वनि जागरूकता को ध्यान में रखते हुए सही विकल्प चुनें।

Shop (क्योंकि यहाँ से बाकी चीजों को खरीदा जा सकता है।)
Sheep (क्योंकि यह एक जानवर है।)
Ship (क्योंकि यह पानी में रहता है।)
Bush (क्योंकि इसकी प्रथम ध्वनि ब है, जबकि अन्य वस्तुओं की श है)

चित्र 3 : भाषा के सवाल का उदाहरण

जब शिक्षकों के साथ बेहतर चर्चाएँ की जाती हैं तो उन चर्चाओं से निकलने वाले परिणामों के कक्षा में जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके कई उदाहरण पिछले दिनों होने वाली मोहल्ला कक्षाओं में भी देखने को मिले जहाँ शिक्षक ऑनलाइन चर्चाओं में की गई बातों को बच्चों के साथ समूह में करते दिखे और परिणाम से ख़ुद भी अचम्भित हुए। ऐसे उदाहरणों में पाँचवीं कक्षा में बहुत कम बोलने वाली एक बच्ची द्वारा आत्मविश्वास के साथ धारा प्रवाह कविता सुनाना और कक्षा 1 के बच्चे का बहुत आसानी से किन्हीं दो समूह की वस्तुओं को गिनकर, उनमें तुलना कर कम-अधिक की पहचान करना शामिल है।

ऑनलाइन चर्चाओं में दोनों तरफ़ से बातचीत को प्रभावी बनाने के लिए ऊपर दिए गए बिन्दुओं को अपनाना बेहद ज़रूरी है।

4. बोलने से ज़्यादा ज़रूरी ध्यान से सुनना

कार्यशाला, शिक्षक अधिगम केन्द्र और विद्यालय भ्रमण के दौरान होने वाली चर्चाओं में शिक्षक अकसर अपने सवाल या उलझनों को बेझिझक पूछ लेते हैं, लेकिन ऑनलाइन चर्चाओं में ऐसा करने में उन्हें दिक़्क़तों का सामना करना पड़ता है। इसके पीछे कई कारण होते हैं, जैसे– सुगमकर्ता का बिना रुके बोलते चले जाना, अपनी बात रखने लायक़ परिस्थिति का न होना, अपने सवाल को अधिक महत्त्वपूर्ण न समझना और सुगमकर्ता की तरफ़ से इसके लिए प्रोत्साहन न होना, ऑनलाइन मंच के लिए झिझक होना, आदि। ऑनलाइन चर्चाओं में अकसर शिक्षकों को लगता है कि अन्य शासकीय कार्यशालाओं की तरह इसमें सिर्फ़ सुनना है। इन कारणों की वजह से किसी सवाल या बात को दोहराने के लिए शिक्षक ऑनलाइन मंचों में झिझकते हैं। इसलिए यह और भी ज़रूरी हो जाता

है कि जब शिक्षक बोल रहे हों तो उन्हें पूरा समय देकर सुनें (इसका यह मतलब कतई नहीं है कि समय सीमा का ध्यान न रखा जाए)। इसके साथ ही सवालों को अस्पष्ट और उलझन भरे तरीक़े से रखने से भी शिक्षक कई बार प्रतिक्रिया देने से बचते हैं। कई कार्यशालाओं के दौरान मैंने अनुभव किया कि सुगमकर्ता की तरफ़ से एक ही सवाल का दोहराव होता है जिससे शिक्षकों में शान्ति छा जाती है। साथ ही, कभी-कभी सवालों को ऐसे पूछा जाता है जिससे शिक्षक सोच में पड़ जाते हैं कि क्या जवाब दिया जाए, जैसे– 'मौखिक भाषा के महत्त्व के बारे में आपके क्या विचार हैं?'। वहीं कुछ सवाल इतने सटीक और स्पष्ट होते हैं कि शिक्षकों से तुरन्त प्रतिक्रिया मिलने लगती है, जैसे– 'ऐसा क्यों होता है कि अकसर घर पर अपनी मातृभाषा में धड़ल्ले से बोलने वाले छात्र कक्षा में बोलने में झिझक महसूस करते हैं?'। शिक्षकों के साथ बातचीत करते समय मैं यह भी ध्यान रखती हूँ कि उनके नाम से उन्हें सम्बोधित करूँ जिससे वे उत्साहित हों, बातचीत में अपनी उपस्थिति रेखांकित होने का गर्व महसूस हो और ख़ुद के विचारों को रखने का महत्त्व भी समझें। साथ ही इस बात का ध्यान रखना भी ज़रूरी है कि बातचीत उबाऊ और नीरस न हो। मैं स्वयं भी ऐसी चर्चाओं में शामिल नहीं होना चाहती हूँ जिन्हें सुनकर नींद आने लगे, इसलिए मैं ख़ुद भी यह सुनिश्चित करने का प्रयास करती हूँ कि मेरी बातों में नीरसता न हो और कोई बोर नहीं हो रहा हो। इसे सुनिश्चित करने के लिए प्रतिभागी का नाम लेकर बोला जाना बहुत आवश्यक होता है।

कई बार शिक्षकों की तरफ़ से जैसी तैयारी की अपेक्षा होती है, वो दूसरी अन्य व्यस्तताओं की वजह से नहीं कर पाते, जैसे– कोई लेख पढ़ना, वीडियो देखना, असाइनमेंट करना, आदि, लेकिन फिर भी चर्चाओं में उनके अनुभव और चुनौतियों को शामिल ज़रूर करती हूँ, जैसे– प्रिंट रिच की चर्चा में एक शिक्षक किताबों से सम्बन्धित गतिविधि (जो चर्चा से पहले प्रतिभागियों के साथ साझा

चित्र 4 : एक शिक्षिका के द्वारा भेजा गया असाइनमेंट

की जा चुकी होती थी) देखना भूल गए थे, बावजूद इसके उन्होंने अपने अनुमान से कुछ गतिविधियाँ बताईं जिनका उपयोग कक्षा में किया जा सकता है। ऐसे कई प्रयास करने से शिक्षक न सिर्फ़ अपने विचारों को रखने में सहज होते हैं बल्कि उनके विचारों को महत्त्व दिया जाए तो उत्साहित होकर अपनी कक्षा में प्रयास भी करते हैं।

ध्यान से सुनने से शिक्षक कई बार अपनी परेशानियों को भी रखते हैं जिनमें अकादमिक के साथ-साथ उनकी कुछ व्यक्तिगत परेशानियाँ भी होती हैं, जैसे– एक शिक्षक ने चर्चा के दौरान साझा किया कि वो अपने स्कूल में बहुत सारे प्रयास करना चाहते हैं और कर भी रहे हैं, लेकिन जब अपने सहकर्मी को बच्चों से अन्य काम करवाते देखते हैं (सफ़ाई करना, पानी लाना, आदि) तो बहुत ग़ुस्सा आने के बावजूद उनसे कुछ कह नहीं पाते और उनकी वजह से बच्चों का ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता है। इसी तरह एक महिला शिक्षिका ने कहा कि वो जब स्कूल जाती थीं तो कुछ-न-कुछ पढ़ती रहती थीं और बच्चों को सुनाती थीं, लेकिन इस महामारी के दौरान घर में रहने से उन्हें पढ़ने का समय बमुश्किल मिलता है। ऐसा लग रहा है कि उनका सीखना रुक-सा गया है।

5. सम्पर्क में बने रहना बेहद ज़रूरी

लगातार घर की चारदीवारी के अन्दर रहने से शिक्षकों में भी झुँझलाहट और बोरियत दिखने लगती है, इस दौरान अगर उनका हालचाल बस पूछ लें तो उन्हें अच्छा लगता है। इसके लिए एक मैसेज भी पर्याप्त है। सम्पर्क में बने रहने से शिक्षकों को कुछ कहानियाँ, लेख पढ़ने या वीडियो देखने के लिए प्रोत्साहित करना भी आसान होता है साथ ही हम उनकी रुचि भी जान पाते हैं।

मैं सम्पर्क में बने रहने के लिए कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करती हूँ। अकसर फ़ोन पर बात करना, त्योहारों में या जन्मदिन पर व्हाट्सएप मैसेज कर देना मुझे पर्याप्त लगता है। साथ ही कई बार शिक्षक मेरे द्वारा लगाए गए व्हाट्सएप स्टेटस में किताबों, चर्चाओं के बारे में इच्छा ज़ाहिर करते हैं जिससे उनकी रुचि भी पता चल जाती है।

इन्हीं सारी बातों को मैं चर्चा के दौरान आवश्यक रूप से ध्यान में रखती हूँ जिससे शिक्षकों के साथ अधिक-से-अधिक जुड़ पाऊँ और उन्हें मदद कर पाऊँ, साथ ही मेरी समझ में भी इज़ाफ़ा हो पाए। यह सारे कारक हमपर भी एक सवाल उठाते हैं कि क्या हम सभी इतनी ज़िम्मेदारियों के साथ ख़ुद के क्षमतावर्धन के लिए कार्य कर पाते हैं?

निष्कर्ष

इन एक-डेढ़ वर्षों में मुझे कई बार ये आभास हुआ कि मेरे पास ख़ुद के क्षमतावर्धन के लिए बहुत समय होता है, लेकिन अकसर उसका पूरा उपयोग नहीं कर पाती हूँ। शिक्षकों के साथ भी कुछ ऐसा ही है। जब स्कूल बन्द हो और बच्चों के साथ भी अपेक्षित मिलना जुलना न हो रहा हो तो पहली बात तो कई शिक्षकों को ख़ुद के क्षमतावर्धन की ज़रूरत ही महसूस नहीं होती है। जिन्हें होती है वे भी अपने समय का पूरा उपयोग नहीं कर पाते हैं। या कई बार तो उन्हें सीखने के लिए उपयुक्त मंच भी नहीं मिल पाता। ऐसी स्थिति में इस आलेख में उद्धृत कारकों का ध्यान रखते हुए ऐसे मंच योजनाबद्ध तरीक़े से उपलब्ध कराना शिक्षकों के सीखने के लिए कारगर तो हैं ही, बल्कि स्वयं के लिए भी सीखने के अनन्त अवसर लाते हैं। इसलिए यह बेहद ज़रूरी है कि हम निरन्तर जिन भी परिस्थितियों में, जाने-अनजाने जो कुछ भी सीखें, लेकिन इसके समानान्तर पूर्णत: मानसिक रूप से सजग होकर भी हमें स्वयं के क्षमतावर्धन पर कार्य करना चाहिए। पिछले दिनों के अनुभव से हम ये तो कह ही सकते हैं कि बच्चों के साथ ऑनलाइन शिक्षा अधिक कारगर नहीं होती है, लेकिन वयस्कों के लिए इन्टरनेट एक बहुत अच्छा माध्यम है कुछ नया सीखने का, अपने कौशलों पर कार्य करने का, उन्हें सँवारने का। इसके साथ ही कई बार हमें लगता है कि क्षमतावर्धन के लिए आदर्श परिस्थिति का होना आवश्यक है, जैसे– शान्त वातावरण, समय, किसी तरह की बाधा न होना, ज़रूरी सामग्री होना, आदि, लेकिन कई बार बहुत सारे लोग विपरीत परिस्थितियों में भी ख़ुद के क्षमतावर्धन पर कार्य करते हैं। अगर आपने *Pursuit of Happiness* फ़िल्म देखी है (नहीं देखी है तो ज़रूर देखिए) तो वहाँ से इसके उदाहरण ले सकते हैं।

इस दौरान मैंने यह भी समझा कि कैसे समय और परिस्थिति के अनुसार हमारे क्षमतावर्धन के तरीक़ों में बदलाव होना ज़रूरी है। अगर पुराने तरीक़ों को हूबहू ऑनलाइन चर्चाओं में लागू करने की कोशिश करेंगे तो यक़ीनन अपेक्षित परिणाम नहीं मिलेंगे। इसलिए ज़रूरी है कि दूसरों के क्षमतावर्धन के लिए हम ख़ुद के क्षमतावर्धन के प्रति भी सजग रहें और इसके लिए निरन्तर प्रयास करते रहें।

अर्चना ने राँची विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में पढ़ाई की है। वे चार साल से शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। पिछले दो वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन जांजगीर चाँपा में हैं। इनकी विज्ञान लेखन में रुचि है।
सम्पर्क : archana.kumari1@azimpremjifoundation.org , asmithu0@gmail.com

मोहल्ला कक्षा और समुदाय : ये साझेदारी रंग लाएगी
(प्राथमिक शाला रुसल्ली के अनुभव)

अरविन्द जैन एवं मोहम्मद फ़ैज़

समुदाय और स्कूल के सम्बन्धों को लेकर हमेशा ही एक द्वन्द्व की स्थिति रही है। स्कूल एकांगी जगह की तरह देखा जाता रहा है जिसमें सीखने-सिखाने की प्रक्रिया और उसमें योगदान से समुदाय का कोई वास्ता नहीं रहा। इसके प्रयास किए जाते रहे हैं कि स्कूल और समाज में साझापन बने और सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में इसका फ़ायदा हो। इधर पिछले एक-डेढ़ साल से पूर्ण तालाबन्दी में जिस तरह से स्कूल की पूरी प्रक्रिया बन्द पड़ी है, समुदाय अपनी पहल से इसे शुरू करने और सहयोग करने के लिए आगे आया है। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई एक साझा चिन्ता के रूप में उभरी है। इस आलेख में अरविन्द जैन और मोहम्मद फ़ैज़ ने भोपाल के बैरसिया ब्लॉक की प्राथमिक शाला रुसल्ली में शिक्षक और समुदाय की इसी साझेदारी का अनुभव साझा किया है। सं.

शासकीय प्राथमिक शाला रुसल्ली, हर्राखेड़ा संकुल केन्द्र (बैरसिया ब्लॉक) से लगभग 3 किमी की दूरी पर बसे हुए रुसल्ली गाँव में स्थित है। भोपाल से बैरसिया रोड पर हर्राखेड़ा की पुलिया पार करके बायीं तरफ़ लगभग ढाई किमी चलना होता है और पहला बायाँ मोड़ मुड़ने पर गाँव पहुँचा जा सकता है। लगभग 200 से अधिक साल पुरानी इस बसाहट में मुस्लिम आबादी ज़्यादा है।

रुसल्ली में शिक्षक अनूप भार्गव मोहल्ला क्लास संचालित करते हैं जिसमें कक्षा 1 से 5 तक के लगभग 25 से 30 बच्चे प्रतिदिन आते हैं। वैसे इस स्कूल में 120 बच्चे नामांकित हैं। सितम्बर के आख़िरी सप्ताह में अनूपजी से बात की कि बच्चे इन कक्षाओं में बेहतर तरीक़े से पढ़ना-लिखना सीख सकें, इसके लिए मिलजुल कर प्रयास करना होगा। सर की इस कार्य को करने में सहमति थी और उनका भी मानना था कि बच्चों को और बेहतर तरीक़े से कैसे पढ़ाएँ ताकि वो अपनी कक्षा के अनुरूप पढ़ाई कर सकें। अब तक अनूपजी को कक्षा 1 से 5 तक के बच्चों को एक साथ ही पढ़ाना पड़ता था। सर के साथ मिलकर तय किया कि हम बच्चों को उनके स्तर अनुसार पढ़ाएँ। हमने कविता पोस्टरों से शुरुआत की। कुछ ने शब्द जोड़-जोड़कर पढ़ने की कोशिश की, कुछ ने पूरे-पूरे शब्द पहचाने तो कुछ सिर्फ़ याद करके कविता दुहराते हैं। मोहल्ला कक्षा में होने वाली इस रोचक गतिविधि के चलते आने वाले बच्चों की तादाद बढ़ती गई। हफ़्ते-दस दिन यही सिलसिला चला। इसके परिणामस्वरूप कई बच्चे कविता पोस्टर को अनुमान लगाकर पूरा पढ़ लेते हैं। जो बच्चे सिर्फ़ बोलने पर कविता दुहरा रहे थे, अब कविता पोस्टर के कुछ शब्दों को पहचान लेते हैं।

हमीद भाई का घर बना विद्यालय

मोहल्ले में जिस घर में कक्षा चलती है, शुरुआत में उस घर के सदस्य हमीद भाई से मोहल्ला कक्षा की योजना के बारे में प्रधानाध्यापक निसार सर ने बात की। इसके बाद हमीद भाई ने अपने घर की दालान (घर का बाहरी हिस्सा)

और बिछात बच्चों के बैठने के लिए दे दी। पढ़ाई के दौरान किसी भी चीज़ की ज़रूरत होती है तो वे सहर्ष दे देते हैं। शिक्षक के बैठने के लिए वे कुर्सी आदि भी कक्षा शुरू होने के पहले ही रख देते हैं।

यहाँ पर बच्चे अपनी मर्जी से आते हैं, पढ़ते हैं, मस्ती करते हैं और पूरे घर में घूमते भी हैं। घर वालों के लिए रखे पानी के घड़े से बिना झिझक पानी पीते हैं और घर का बाथरूम भी यूज़ करते हैं। ख़ुद को आज़ाद महसूस करते हैं। घर के सदस्यों ने कभी भी कोई आपत्ति नहीं की। यह परिवार बड़ा है, इसके बाद भी बच्चों के लिए ओपन है। जब तक (2 घण्टे) यहाँ बच्चे बैठे होते हैं, परिवार के सदस्य उस जगह का उपयोग नहीं करते हैं। घर के बुज़ुर्ग भी यह नहीं कहते कि बच्चे हल्ला कर रहे हैं, या हम डिस्टर्ब हो रहे हैं। घर के बुज़ुर्ग सदस्य हामिद ख़ानजी, जो कि लगभग 70 साल के होंगे, मोहल्ला कक्षा के सन्दर्भ में कहते हैं : "ये तो हमारे ही बच्चे हैं। पढ़-लिख लेंगे तो हमें ही मदद मिलेगी। पढ़ाई से बेहतर तो कुछ भी नहीं है। पहले तो बच्चे दिनभर घूमते रहते थे। ये पढ़ सकें, इस कारण इनको जगह दी है। मास्टरजी रोज़ आते हैं और मेहनत से भी पढ़ाते हैं। हमारे बच्चों के लिए ही तो यह सब कर रहे हैं। इनकी मदद करना हमारा भी फ़र्ज़ है।"

शाला में समुदाय की भागीदारी का यह एक अच्छा उदाहरण है। गाँव के लोग बच्चों के पढ़ने के लिए स्थान उपलब्ध करा रहे हैं। इस तरह की परिस्थिति में भी शिक्षकों द्वारा घर-घर जाकर कक्षाएँ संचालित करने को लेकर ग्रामीणों में भी सम्मान का भाव है। मोहल्ला क्लास में समुदाय की भागीदारी और बेहतर बनाने के लिए इस तरह के और भी उदाहरणों की ज़रूरत है।

मोहल्ला पुस्तकालय की शुरुआत

योजना अनुसार शुरुआत में यह तय किया गया कि हम पुस्तकालय की किताबों से बच्चों को कहानियाँ पढ़वाएँ और उनसे जुड़ी हुई गतिविधियाँ करवाएँ। इससे बच्चों का पढ़ने की ओर रुझान बढ़ेगा। और फिर जब बच्चे वर्कबुक पर काम कर लेंगे तो उसके बाद में एक कहानी सुनाकर उसपर चर्चा की जाएगी। इसका

परिणाम इस अर्थ में सुखद रहा कि बच्चे बेसब्री से हमारा इन्तज़ार करने लगे हैं कि अब उन्हें हर बार एक नई कहानी सुनने मिलेगी।

बच्चों का रुझान देखकर यह समझ में आया कि बच्चों में पुस्तकालय की किताबों को पढ़ने की इच्छा जागृत हो रही है। अतः तय किया कि हम बच्चों को नियमित रूप से पुस्तकालय की पुस्तकें पढ़ने के लिए दें। चूँकि बच्चे मोहल्ला क्लास के बाद अधिकांश समय खेलने में गुज़ारते थे, अतः तय हुआ कि हम मोहल्ले से ही किसी बच्चे को पुस्तकालय संचालन की ज़िम्मेदारी के लिए तैयार करें जो बच्चों को पढ़ने के लिए किताबें दे सके। इसके लिए हमने समुदाय में सम्पर्क किया और गाँव के युवाओं से बात की। इसी दौरान फरहाना से बात की कि क्या वह पुस्तकालय का संचालन करने में मदद करेगी? फरहाना कक्षा 10 में पढ़ती है। इस समय उसका स्कूल भी बन्द था। फरहाना ने शुरुआत में थोड़ी झिझक दिखाई, पर जब मैंने फरहाना से पुस्तकालय के सम्बन्ध में विस्तार से बात की तो वे पुस्तकालय संचालन के लिए तैयार हो गईं। मैंने अनूपजी और स्कूल के प्रधानाध्यापक निसार ख़ानजी से बात की और स्कूल के कमरों में बन्द किताबों को निकलवाया। कुछ किताबें फरहाना को पढ़ने के लिए दी गईं और उन किताबों के साथ किस प्रकार की गतिविधियाँ कर सकते हैं, इस बारे में संक्षेप में उसे बताया गया। अवलोकन के लिए हमने फरहाना को कक्षा में बैठने के लिए कहा। इसके बाद बच्चों के स्तर के अनुसार फरहाना को लगभग 30 किताबें दी गईं। तय किया गया कि इन किताबों को बच्चों को पढ़ने के लिए देंगे और उसपर बच्चों के साथ बातचीत करेंगे। इन किताबों में कहानी, कविता के साथ-साथ अन्य बाल सुलभ विषयों पर आधारित किताबें शामिल थीं। बच्चों को किताबें देने के लिए इशु रजिस्टर दिया गया। बच्चे फरहाना से किताबें लेने लगे और फरहाना भी इन किताबों और बच्चों के साथ बेहतर तरीक़े से काम कर पा रही है।

जैसे-जैसे कक्षा नियमित होती गई और बच्चे पढ़ने की ओर ध्यान देने लगे तो एक बोर्ड की ज़रूरत सामने आई। मोहल्ला क्लास जिस जगह चल रही है उस जगह बोर्ड नहीं था जिसकी मदद से बच्चों को बेहतर तरीक़े से समझाया जा सके। हमने प्रधानाध्यापकजी से बात की कि क्या स्कूल फ़ण्ड से एक वाइटबोर्ड ले सकते हैं। उन्होंने अपनी सहमति जताई और कुछ दिनों में ही एक वाइटबोर्ड ले लिया गया। बोर्ड की मदद से बच्चों को समझाने और कक्षा में उनकी रुचि बनाए रखने में सहूलियत होने लगी। अनूपजी ने माना कि बोर्ड के आने से बच्चों को और बेहतर तरीक़े से पढ़ा एवं समझा पा रहे हैं। अब बच्चे भी बोर्ड पर मार्कर से अपनी बात लिख पाते हैं। सबके सामने आकर लिखने की उनकी शुरुआती झिझक धीरे-धीरे ख़त्म हो चुकी है।

शिक्षण गतिविधियाँ

पाठ्यपुस्तक के साथ ही पुस्तकालयों की कविताओं और कहानियों का उपयोग करके बच्चों के लिए पढ़ना-लिखना सीखना बेहतर कैसे बनाएँ, इस बिन्दु पर शिक्षक से बात की और उनके साथ मिलकर योजना बनाई। ऐसे बच्चे जो पढ़ने-लिखने के शुरुआती स्तर पर थे, उनके साथ कविता पोस्टर, कविता पट्टी, वाक्य पट्टी और शब्द कार्ड का उपयोग किया गया और गणित में गिनती माला, तीली बण्डल आदि का उपयोग करके बच्चों के साथ गिनती, जोड़-घटाना और स्थानीय मान पर काम शुरू किया
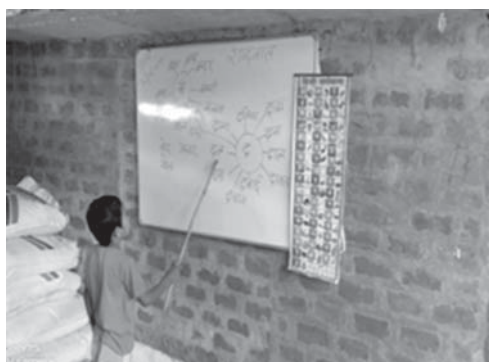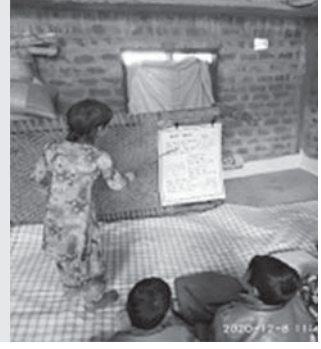
गया। इसके साथ ही बच्चों की पाठ्यपुस्तकें और वर्कबुक पर भी काम चलता रहा।

शिक्षकों की पहल

अनूप भार्गव की पहली नियुक्ति प्राथमिक शाला रुसल्ली में 2003 में हुई थी। लॉकडाउन के पहले वे कक्षा 4 और 5 को पढ़ाते थे। पर 'हमारा घर हमारा विद्यालय' के शुरू होने पर कक्षा 1 से 5 तक के बच्चों के एक साथ आने पर पूरे समूह को संचालित करने में समस्या आने लगी। तब तय किया गया कि बच्चों के समूह बना लेते हैं और स्तर के अनुसार उन्हें समूह में पढ़ाते हैं। जो बच्चे पढ़ने-लिखने के शुरुआती स्तर पर थे उनके साथ कविता-कहानी, शब्द-चित्र, गिनती माला आदि के साथ काम शुरू किया गया। बाद में कविता पोस्टर, कविता पट्टी आदि का उपयोग करके बच्चों के साथ भाषा पर काम शुरू किया गया। अनुभव किया गया कि जो बच्चे पढ़ने में कमज़ोर थे या जिन्हें दिक़्क़त आ रही थी, इस तरह की गतिविधि में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे थे और भागीदारी कर रहे थे। अनूपजी को इस तरह की गतिविधि में बहुत मज़ा आया। वे स्वयं इससे सीख रहे थे। अनूपजी ने माना कि इस तरह की गतिविधि से बच्चे काफ़ी तेज़ी से सीखते हैं। वे अब स्वयं ही इस तरह की गतिविधि करने लगे हैं। अनूपजी इस तरह की सामग्रियों का इस्तेमाल करने के साथ-साथ अब बाइलिंगुअल किताबों की ज़रूरत महसूस करते हैं और इनकी मदद से वे हिन्दी और अँग्रेज़ी भाषा की कक्षा को सहज और रोचक बनाना चाहते हैं। साथ ही वे अब वर्कशीट का भी इस्तेमाल करने लगे हैं। इसके लिए वे पहले बच्चों को बताते हैं कि क्या करना है और क्यों। अभी लगभग 20 बच्चे इस सेंटर में नियमित आ रहे हैं। अनूपजी के आग्रह पर हमने उनके स्कूल में कुछ और किताबें भी दी हैं। अनूपजी बहुत नियमित कक्षाएँ संचालित कर रहे हैं और उन्होंने बताया कि जुलाई माह से अभी तक वे सिर्फ़ 1 दिन की छुट्टी ले पाए हैं। मैंने भी फ़ील्ड विज़िट के दौरान देखा कि गाँव में सभी लोग इनका सम्मान करते हैं। जब बच्चे केन्द्र में नहीं आते हैं तो सर बच्चों को लेने उनके घर जाते हैं। परिणामतः हर बच्चे के

घर में क्या चल रहा है, उसे भी समझते हैं। अभी फ़िलहाल यह स्थिति है कि वे स्वयं अब हमें फ़ोन करते हैं और यदि कोई नई गतिविधि करवानी हो तो उसे कैसे करवाना है, उसपर चर्चा करते हैं। साथ ही टीएलसी समूह में वे अपनी गतिविधियों को डालते हैं जिससे ब्लॉक के अन्य शिक्षक भी देख पाएँ और इस दिशा में अपने प्रयास कर पाएँ।

बातचीत के दौरान अनूपजी का कहना रहता है कि केवल दो ही घण्टे केन्द्र में आने के कारण बच्चों की पढ़ाई नियमित रूप से नहीं हो पाती है। आने वाले दिनों में उनकी योजना बच्चों को स्कूल में ही सुबह 10:30 से अपराह्न 4:00 बजे तक बुलाने और पढ़ाने की है। इससे बच्चों की पढ़ाई नियमित रूप से हो पाएगी। अपनी समझ विकसित करने के लिए उन्होंने हमसे *एनसीएफ़ 2005, प्रेमचंद की कहानियाँ* आदि किताबें पढ़ने के लिए माँगी हैं। उनका कहना है, हम पहले मोहल्ला कक्षाएँ चला तो रहे थे पर जब से फ़ाउण्डेशन का सहयोग मिला है हमें क्या करना है और कैसे करना है, इस बारे में दिशा मिली है। चूँकि वे स्वयं भी नया करने और सीखने में दिलचस्पी रखते हैं, अत: प्रधानाध्यापक से बात करके बहुत-सी शिक्षण सहायक सामग्री भी मँगा ली है और नियमित रूप से इसका उपयोग कर रहे हैं।

इस काम को देखते हुए इसी स्कूल के राजीव भार्गव सर भी सहयोग के लिए तैयार हुए उन्होंने काम को आगे बढ़ाने के लिए चर्चा की, सुझाव माँगे और हमारे साथ मिलकर योजना बनाई। वे गणित में सामग्री का इस्तेमाल करते हुए संख्या की व्यवहारिक समझ बनाने का प्रयास करते हैं। अब बच्चे गणित में स्तर अनुसार 50 से 1000 तक की संख्याओं को समझ लेते हैं। संख्या में अंकों के स्थान का मान भी उन्हें समझ में आता है।

विद्यालय के प्रधानाध्यापक रुसल्ली गाँव के ही निवासी हैं। उनकी भी पहली पोस्टिंग इसी स्कूल में हुई थी। वे सन् 1998 से इसी स्कूल

में हैं। उन्होंने बताया कि इस स्कूल की स्थापना 1955 के आसपास हुई थी और अभी स्कूल में 120 बच्चे हैं जिनमें से 7 अनुसूचित जाति के और बाक़ी मुस्लिम समुदाय से आते हैं।

सर का कहना है कि ये बच्चे नियमित रूप से पढ़ने आते हैं। इसी गाँव के होने के कारण पूरे समुदाय के लोग उनकी बात को सुनते और मानते हैं। समुदाय के साथ सर के सम्बन्ध बहुत ही बेहतर हैं और हमने देखा है कि मोहल्ला कक्षाओं में बच्चों को बैठने के लिए जो भी जगह चाहिए वह सर के प्रयासों से उपलब्ध हो जाती है।

पुस्तकालय से पुस्तक निकालना हो या फिर बच्चों के लिए ब्लैकबोर्ड ख़रीदना हो या शिक्षक सहायक सामग्री; ख़रीदनी हो प्रधानाध्यापक की कोशिश रहती है कि उक्त सामग्री उपलब्ध हो जाए।

अभी हाल ही में हमने देखा कि किताबें एक रस्सी पर टँगी हुई हैं जिस कारण वे मुड़ रही थीं। उनसे इसपर बात हुई कि स्कूल में पर्याप्त कमरे हैं तो क्या हम एक कमरे को पुस्तकालय कक्ष नहीं बना सकते हैं? इसके बाद

पूनम : कक्षा 8 की छात्रा है और रुसल्ली से लगभग 3 किमी दूर एक शासकीय स्कूल में पढ़ती है। वह भी यहीं पढ़ने आती है। जब मैंने पूछा कि तुम अपने स्कूल क्यों नहीं जातीं तो उसका कहना था कि यहाँ ज़्यादा अच्छा लगता है। पूनम से बात कर हमने उसे अपने अनुभव लिखने को कहा, जैसे– स्कूल में पहली बार कैसा लगा, लॉकडाउन के क्या अनुभव रहे, आदि। इसपर उसने बहुत अच्छे-से लिखा। बीच-बीच में वह छोटे बच्चों को पढ़ने में भी मदद करती है। पूनम का भाई अमित भी कक्षा 5 में पढ़ता है और मोहल्ला क्लास में आता है। आलिया, इकरा, मोहसिन जैसे बच्चों की तरह ही इनका भी इस घर में उसी तरह का अधिकार है।

सर मिलकर पुस्तकालय के लिए हमने कमरा तय किया। सर का कहना था कि वे इस कमरे को ठीक करवा देंगे और किताबें रखने के लिए रैक भी ले लेंगे।

तालाबन्दी की इस विषम परिस्थिति में समुदाय जिस तरह बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के लिए ख़ुद-ब-ख़ुद आगे आकर शिक्षकों का सहयोग कर रहा है, उससे इस बात की उम्मीद बँधती है कि स्कूल अभी भले ही जल्दी न खुलें, पर समुदाय और स्कूल की नातेदारी जो बन गई है, यह आगे अच्छे परिणाम लाएगी। सरकारी स्कूल व्यवस्था में समुदाय और स्कूल के इस परस्पर सहयोग वाले सम्बन्ध का एक अभाव बना ही रहता था, वह इस कोरोना महामारी के बहाने कुछ हद तक ही सही कम तो हुआ है।

अरविन्द जैन, लगभग 22 सालों से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। बाल साहित्य में गहरी दिलचस्पी है। कामकाजी और विशेष आवश्यकता बाले बच्चों के साथ खेलना, बातचीत करना और उनके साथ समय बिताना अच्छा लगता है। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : arvind.jain@azimpremjifoundation.org

फ़ैज़ मोहम्मद कुरैशी (फ़ैज़), पिछले डेढ़ दशक से सामाजिक न्याय व वंचित तबक़े के विकास के क्षेत्र में कार्यरत। विशेष तौर पर शिक्षा के क्षेत्र में अध्ययन-अध्यापन, लेखन व समतावादी संगठनों जैसे कार्यों में अधिक संलग्नता रही है। विगत 8 वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़ाव।

सन्दर्भ : faiz.qureshi@azimpremjifoundation.org

स्कूली ज़िन्दगी की हक़ीक़तों को उजागर करती किताब

एक स्कूल मैनेजर की डायरी

सहीद मेव

फ़राह फ़ारूक़ी द्वारा लिखी गई *एक स्कूल मैनेज़र की डायरी* किताब सम्भवतः पहली किताब है जो ग़रीब और पिछड़े मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों की ज़िन्दगी के बारे में किए गए शोध अध्ययन को हिन्दुस्तानी ज़ुबान में सामने लाती है। प्रस्तुत समीक्षा किताब के अध्यायों की मुख्य बातों को रेखांकित करती है और पूरी किताब की एक झलक प्रस्तुत करती है। सं.
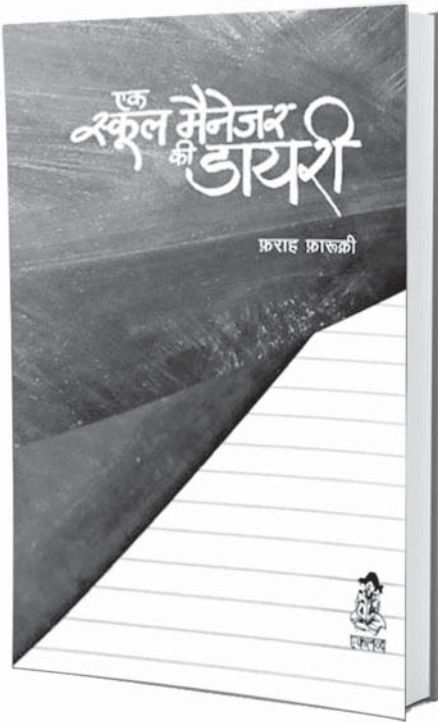
एक स्कूल मैनेजर की डायरी

लेखिका : फ़राह फ़ारूक़ी

एकलव्य फ़ाउण्डेशन, भोपाल

'भारत के भाग्य का निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है' यह वाक्य था *कोठारी कमीशन रिपोर्ट (1966)* का, जिसने भारत में स्कूली शिक्षा को सुधारने के लिए 'कॉमन स्कूल सिस्टम' और देश की जीडीपी का छः फ़ीसदी हिस्सा शिक्षा पर ख़र्च करने जैसे कई अहम सुझाव दिए। मक़सद था– स्कूली शिक्षा की राष्ट्र निर्माण में मज़बूत हिस्सेदारी दर्ज कराना और सामाजिक असमानता को कम करना। लेकिन सरकार की उदासीनता, ख़ासकर 90 के दशक के बाद शिक्षा के बढ़ते व्यवसायीकरण और ख़ुदगर्ज़ राजनीति के कारण, ज़्यादातर सरकारी स्कूल सामाजिक असमानता और हाशियाकरण के पर्याय बनते चले गए।

फ़राह फ़ारूक़ी की किताब *एक स्कूल मैनेजर की डायरी* स्कूली शिक्षा के माध्यम से हो रहे हाशियाकरण और असमानता की बारीक़ियों का परत-दर-परत व प्रासंगिक चित्रण प्रस्तुत करती है। लेखिका ने बहुत ही बेबाक़ अन्दाज़ में अकादमिक दायरों के परे जाकर स्कूल की सामाजिक व्यवस्था, आड़े आते धर्म और राजनीतिक मूल्य, हाशिए पर धकेले जा रहे ग़रीब और पिछड़े मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों की ज़िन्दगी के बहुत सारे

अनछुए पहलुओं का आसान हिन्दुस्तानी ज़ुबान में पुख़्ता सबूतों के साथ दार्शनिक वर्णन किया है। लेखिका का शोध केन्द्र 1913 में स्थापित पुरानी दिल्ली स्थित सरकारी मदद से चलने वाला एक सीनियर सेकेंडरी स्कूल है। दरअसल, लेखिका 2009 से 2014 तक, जामिया मिल्लिया इस्लामिया की देखरेख में चलने वाले इस स्कूल की मैनेजर रही हैं। लेखिका के अनुसार, इनकी डायरी, जो किताब के रूप में प्रकाशित हुई, की शुरुआत शोध करने से नहीं बल्कि स्कूल को समझने और सबके साथ मिलकर स्कूल की बेहतरी के लिए बदलाव लाने से हुई' (पृ. 6-7)। इस किताब में कुल सत्रह अध्याय हैं जिनमें लेखिका स्कूल की कार्यप्रणाली, बच्चों व माँ-बाप का ज़िन्दगी और शिक्षा के लिए संघर्ष, अध्यापक व प्रबन्धन की ज़िम्मेदारियों, शिक्षा विभाग के रवैए, स्थानीय राजनीति और अल्पसंख्यक समुदाय की भावनाओं, उनके डर और हौसलों का सरल व स्पष्ट चित्रण करती हैं।

पहले और दूसरे अध्याय में लेखिका ने स्कूल की कार्यप्रणाली और दिनचर्या में लिप्त सत्ता, असमानता और ख़ुदगर्ज़ी का वर्णन किया है। ग़रीब, मज़दूर और अल्पसंख्यक मुसलमान बच्चों को हाशिए पर धकेल दिया जाता है क्योंकि वो सत्ता के कमज़ोर और निचले पायदान पर होते हैं। स्कूल में नियम-क़ानून बनने में बच्चों को केन्द्र में न रखना, नौकरशाही और लालफ़ीताशाही, आपसी तालमेल की कमी, जेंडर व व्यावसायिक असमानता, लोकतंत्र और संवाद की कमी, आदि संस्था को सुचारु रूप से चलाने में आड़े आते हैं, जबकि परिवारों में स्कूल जाने वाली पहली पीढ़ी के छात्रों को विशेष सुविधाओं, सहायता और देखरेख की ज़रूरत होती है, ताकि इनके सपनों को साकार होने में मदद मिल सके। तीसरे अध्याय में लेखिका ने घरेलू सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों, बाज़ार और कारोबार में फँसी बच्चों की ज़िन्दगी का भी सटीक वर्णन किया है। लेखिका ने नौवीं और दसवीं कक्षा के बच्चों के विभिन्न प्रकार के अनौपचारिक समूहों की बात की है जिनके ज़रिए बच्चे अपनी शरारत, मस्ती, आपसी मदद और ख़ुद के होने का अहसास हासिल करते हैं (अध्याय चार और पाँच)। लड़कियों के लिए असहज माहौल और विकल्पों की कमी, स्वार्थी राजनीतिक माहौल और सामाजिक जकड़न को भी बयान किया है। लेखिका ने अल्पसंख्यक स्कूल में होने वाली धार्मिक शिक्षा (अनौपचारिक तौर पर ही सही), इससे जुड़ी नैतिकता, और इसके सही व ग़लत ठहराने को सामाजिक सन्दर्भ में देखने की बात कही है। साथ ही उन्होंने यह डर भी ज़ाहिर किया है कि 'धर्म की दी हुई नैतिकता की चपेट में आकर कहीं बच्चे स्कूल में होने वाले अन्याय के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना बन्द न कर दें, या फिर धर्म कहीं कट्टरपन का रूप न धारण कर ले और धार्मिक शिक्षा से जुड़े बच्चे धर्म के ठेकेदार न बन बैठें'। साथ ही मौजूदा स्कूल में धार्मिक शिक्षा दिए जाने की एक सम्भावित ख़ूबी की तरफ़ संकेत करते हुए लेखिका यह भी कहती हैं कि 'शायद स्कूल का सन्दर्भ उन्हें (बच्चों को) कभी एक मौक़ा दे कि वो धर्म को सामाजिक विज्ञान या विज्ञान के चश्मे से आँक सकें' (पृ. 106)।

पहले और दूसरे अध्याय में लेखिका ने स्कूल की कार्यप्रणाली और दिनचर्या में लिप्त सत्ता, असमानता और ख़ुदगर्ज़ी का वर्णन किया है। ग़रीब, मज़दूर और अल्पसंख्यक मुसलमान बच्चों को हाशिए पर धकेल दिया जाता है क्योंकि वो सत्ता के कमज़ोर और निचले पायदान पर होते हैं।

लेखिका ने विभिन्न प्रकार की धारणाओं और रूढ़िवादी सोच, जिनके तहत शिक्षक बच्चों का और बच्चे आपस में एक दूसरे का चित्रण करते हैं, की भी बात की है (अध्याय छः)। कुछ शिक्षक बच्चों को बेकार और नालायक़ क़रार

देते हुए उनका 'निचली क़िस्म के, जानवर, बंजर ज़मीन, सरकारी भीख पर पलने वाले पर फिर भी शैतान, गली के कीड़े जैसे जुमलों से न केवल चित्रण करते हैं, बल्कि इनके घर-परिवार को भी कमतर मानते हैं। ग़लत धारणाओं का यह सिलसिला बच्चों में भी देखने को मिलता है जो अन्दरूनी तौर पर एक बँटे हुए समाज, इसमें पनपी असमानताओं और इसके हाशियाई होने को दर्शाता है। फ़िल्मों में मुसलमानों का चित्रण, नौकरियाँ मिलने में मुश्किलों का सामना करना, अन्दरूनी तौर पर शिया-सुन्नी में बँटे होना, बिहार वाले, दिल्ली वाले, मोहल्लों को लेकर रूढ़िवादी धारणाएँ, हिन्दी और अँग्रेज़ी माध्यम में शिक्षा से जुड़ी सोच बच्चों की स्कूली ज़िन्दगी, दिनचर्या और इनके सपनों को प्रभावित करती है। लेखिका अपने शोध कार्य के दौरान कुछ सुनहरे पलों का उल्लेख करते हुए यह भी कहती हैं कि ऐसा भी नहीं है कि हर तरफ़ अँधेरा ही छाया हुआ है। कुछ हमदर्द शिक्षकों के साथ मिलकर कई बच्चे अपने सपनों को साकार करने की तरफ़ क़दम बढ़ाते हुए भी नज़र आए लेकिन 'घेटो में दबी ज़िन्दगी' और सत्ता की राजनीति में तंत्र की मदद के बिना कामयाबी कितनी मिल पाएगी, यह कहना मुश्किल है।

लेखिका अपने शोध कार्य के दौरान कुछ सुनहरे पलों का उल्लेख करते हुए यह भी कहती हैं कि ऐसा भी नहीं है कि हर तरफ़ अँधेरा ही छाया हुआ है। कुछ हमदर्द शिक्षकों के साथ मिलकर कई बच्चे अपने सपनों को साकार करने की तरफ़ क़दम बढ़ाते हुए भी नज़र आए लेकिन 'घेटो में दबी ज़िन्दगी' और सत्ता की राजनीति में तंत्र की मदद के बिना कामयाबी कितनी मिल पाएगी, यह कहना मुश्किल है।

लेखिका स्कूल के संचालन से जुड़ी विभिन्न तरह की कमेटियों, जैसे– अनुशासन कमेटी, जेंडर कमेटी और स्कूल कैलेंडर की बारीक़ियों पर भी नज़र डालती हैं। वह बताती हैं कि बच्चों के बारे में शिक्षकों की धारणाएँ, बग़ैर सन्दर्भ और बच्चों की हिस्सेदारी के बनाए गए नियम-क़ानून, अनुशासन के नाम पर मशीनी तरीक़े से बच्चों को नियंत्रित करना और उन्हें एकतरफ़ा दोषी ठहराने के चलते किसी भी अच्छे बदलाव की कामना करना बेमानी है (अध्याय सात, आठ और नौ)। जेंडर से जुड़ी असमानताएँ, जैसे– लड़कियों के लिए पर्दा, पवित्रता की धारणा, लड़कियों को ही ग़लत ठहराना, मर्दानगी एवं औरतपन की बाइनरी, और यौनशोषण, स्कूली दिनचर्या का हिस्सा होती हैं जो लड़कियों के लिए शालात्यागी होने और जल्दी शादी करने जैसे अवांछित परिणामों के रूप में हाशियाबन्दी का कारण बनती हैं।

लेखिका कुछ चुनिन्दा केस स्टडीज़ के ज़रिए ग़रीब अल्पसंख्यक वर्ग से आए बच्चों की चुनौती भरी ज़िन्दगी, पाठ्यक्रम से इनकी उदासीनता और शिक्षा तंत्र के ग़ैर-ज़िम्मेदाराना रवैए का वर्णन करती हैं (अध्याय दस)। बच्चे और माता-पिता के बनते बिगड़ते सपने और जोश ख़रोश, व्यवसायीकरण की शिकार होती शिक्षा, मजबूरियों में दबा कुचला और ख़त्म होता बचपन, समाज और तंत्र के उत्पीड़ित करने वाले रवैए को सामने रखते हुए लेखिका कहती हैं कि 'कभी लगता है कि बच्चे हारी हुई दौड़ में शामिल हैं। यह दौड़ क्या इन्हें सिर्फ़ छोटा या बड़ा पुर्जा ही बनाएगी?' (पृ. 220)। कमज़ोर शिक्षणशास्त्र, कुछ शिक्षकों की नासमझी और सत्ता की असीमित ताक़त के सामने स्कूल एक असहाय संस्था ही नज़र आता है जिसमें मौजूदा 'सामाजिक-आर्थिक आख्यान ने जगह बना ली है' (अध्याय ग्यारह और बारह)। कक्षा में जाने के लिए (कुछ) शिक्षकों की नाकाफ़ी तैयारी, समीक्षात्मक समझ (क्रिटिकल अंडरस्टैंडिंग) व सटीक उदाहरणों की कमी, सन्दर्भ और लोकतांत्रिक माहौल की अनदेखी कक्षा की दयनीय हालत को दर्शाती है। दरअसल ख़ुद शिक्षक भी कई तरह के पूर्वाग्रह, सियासत के दाँव-पेंच, सत्ता की विचारधारा और असर

को समझने की कमी से जूझते नज़र आते हैं। अन्ततः, स्कूल बच्चों को ढाँचों पर सवाल उठाने के क़ाबिल नहीं बना पाता है बल्कि 'शिक्षक ख़ुद सत्ता के दबाव में चुप्पी की ज़ुबान सीखे हुए नज़र आते हैं (पृ. 239-241)। ज़ाहिर है फिर स्कूल समाज को बदलने वाले इरादे के रूप में कैसे काम कर सकेगा? कमज़ोर और मूर्त संस्था के तौर पर तो 'स्कूल इन ग़रीब, मज़दूर, मुसलमान बच्चों की उँगलियों को ख़ुद इनके लहू में डुबोने का काम अंजाम देता है' (पृ. 240)। कक्षा में बच्चों को मुजरिम क़रार देना, कौशल, शिष्टता और सभ्यता की कमी का अहसास कराना, ताने व सज़ा देना और क़ाबू में करना आम-सी बात है जो दरअसल विद्यार्थियों पर शिक्षकों और शिक्षा तंत्र के मज़बूत शिकंजे को ही दर्शाते हैं। बच्चों को इस तंत्र में क़ैद, बेबस और विभिन्न पूर्वाग्रहों का शिकार देखकर लेखिका कहती हैं, 'कभी तो लगता है कि या तो हम शिक्षा संस्थानों में ताले लगा दें जहाँ हम शिक्षक की सत्ता और उससे जुड़ी आज़ादी के आगे ढेरों बच्चों को क़ैद करके बैठा देते हैं कि इनकी सोच, यक़ीन और ज़हनियत के साथ जो चाहे खिलवाड़ कर लो। या फिर अपने शिक्षक तैयार करने वाले कार्यक्रमों को समझें और बदलें' (पृ. 261)।

किताब हाशिए पर धकेले हुए लोगों की हृदयविदारक परिस्थिति का सटीक चित्रण करती है। लेखिका काफ़ी सवालों का जवाब तो देती हैं, लेकिन उन्होंने ऐसे बहुत सारे अनसुलझे और पेचीदा सवालों को सामने रखा है जो भविष्य में किए जा सकने वाले शोध कार्यों के लिए महत्त्वपूर्ण संकेत के तौर पर देखे जा सकते हैं।

लेखिका ने स्कूल को इसके आसपास बसी बस्तियों, मोहल्लों और बिरादरियों के परिप्रेक्ष्य में भी समझने की कोशिश की है (अध्याय तेरह)। स्कूल अकसर बिरादरियों की आपसी रंजिश, अफ़वाहों, आर्थिक असमानताओं, स्थानीय राजनीति और संसाधनों के ग़लत इस्तेमाल का भी शिकार होता है। अध्याय चौदह 'हाशिए पर इल्म और बच्चे, क्या ज़िम्मेदार है मूल्यांकन' में लेखिका कहती हैं कि हम 'पढ़ाने के घिसे-पिटे ढर्रे पर चलकर, जिसको साइंस का जामा पहना देते हैं, बच्चों के तजुर्बे, ख़्याल और कल्पनाओं की उड़ान को जगह न देकर बच्चों की दक्षताओं और कौशल का गला घोंट देते हैं, और हाशिए के लोगों के इल्म को भी हाशिए पर डाल देते हैं' (पृ. 285)। सत्ता की ताक़त व पेचीदगियाँ, सियासत और आपसी रंजिश बच्चों की स्कूली ज़िन्दगी को तो प्रभावित करती ही है, ऊपर से अल्पसंख्यक होने का बोझ, घेटो की ज़िन्दगी और डर का माहौल सपने देखने और इन्हें पूरा करने की राह को और ज़्यादा पेचीदा बना देते हैं (अध्याय पन्द्रह, सोलह और सत्रह)। इस माहौल से निपटने के अपने निजी अनुभव को साझा करते हुए लेखिका कहती हैं कि लोगों को हिम्मत व सहारा देकर, और इनकी तनकीद व तजवीज़ को अहमियत देकर स्कूल में बदलाव सम्भव हो सके। आपसी प्यार और स्नेह के रिश्तों ने एक अच्छी टीम बनाने का मौक़ा दिया जिससे तंत्र को लचीला और लोकतांत्रिक बनाने में मदद मिली। इसकी वजह से एक दूसरे से सीखने-सिखाने और काम करने को बल मिला। इसी बदलाव के चलते लोगों में हिस्सेदारी और ज़िम्मेदारी लेने की हिम्मत आई (पृ. 311)। तर्क, ज़मीनी और अनौपचारिक रिश्तों, एक दूसरे के लिए आदर, सद्भाव और बराबरी के अहसास ने बदलाव की दिशा और दशा को सम्भव बनाया। लेखिका कहती हैं शायद छोटे-छोटे बदलाव, तरकीबें और सभी को साथ लेकर चलने से बड़े ढाँचाई बदलाव लाने की राह आसान की जा सकती है।

अन्ततः किताब अकादमिक मानकों, जैसे– थ्योरी और पूर्व साहित्य की समीक्षा के उचित स्थान को दरकिनार तो करती है लेकिन पुख़्ता सबूतों के आधार पर संकलित की गई है। किताब
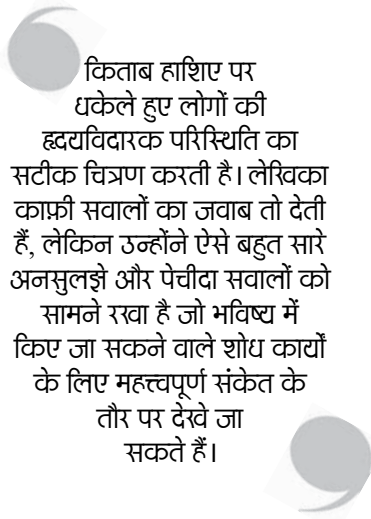
हाशिए पर धकेले हुए लोगों की हृदयविदारक परिस्थिति का सटीक चित्रण करती है। लेखिका काफ़ी सवालों का जवाब तो देती हैं, लेकिन उन्होंने ऐसे बहुत सारे अनसुलझे और पेचीदा सवालों को सामने रखा है जो भविष्य में किए जा सकने वाले शोध कार्यों के लिए महत्त्वपूर्ण संकेत के तौर पर देखे जा सकते हैं। उम्मीद है कि पुख़्ता सबूतों पर आधारित स्कूली ज़िन्दगी की वास्तविक बारीक़ियों को उजागर करती यह किताब, अध्यापकों, छात्रों, नीति निर्माताओं और आम जन, शिक्षा के मुद्दों में दिलचस्पी रखने वालों, आदि सभी के लिए लाभदायक सिद्ध होगी।

सहीद मेव, समाजशास्त्र विभाग, मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी (मानु), हैदराबाद में सहायक प्रोफ़ेसर के पद पर कार्यरत हैं। शिक्षा के समाजशास्त्र पर उनकी ख़ासी रुचि है। इनकी शोध और अन्य रचनाएँ *सोशल एक्शन, इंडियन एन्थ्रोपोलोजिस्ट, स्क्रॉल इन, केफे डीसेन्सस, दा न्यू लीम* जैसी मैगज़ीन में प्रकाशित हो चुकी हैं। उर्दू ज़ुबान में लिखी उनकी किताब *क्लासिकी समाजयाति नज़रियात* (2021) मानु से प्रकाशित होने वाली है।

सम्पर्क : saheedmeo@gmail.com

फ़राह फ़ारूक़ी जामिया मिल्लिया इस्लामिया की फैकल्टी ऑफ़ एजुकेशन में प्रोफ़ेसर हैं। वह *एनसीएफ़ 2005* के बाद बच्चों की पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तकों की मुख्य सलाहकार रही हैं। इसके अलावा उन्होंने एनसीईआरटी के साथ शिक्षकों के लिए भी कई किताबें लिखी हैं। उनके लेख *ईपीडब्ल्यू, आईआईसी क्वार्टरली, संदर्भ, शिक्षा विमर्श* और विदेश की पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए हैं।

सम्पर्क : ffarooqui@jmi.ac.in

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

अनुराग बेहार से टुलटुल बिस्वास की बातचीत

इस परिचर्चा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बारे में बात की गई है। अनुरागजी शिक्षा नीति की निर्माण समिति के एक सक्रिय सदस्य रहे हैं। वे न केवल इस शिक्षा नीति को बनाने की प्रक्रिया को विस्तार से बताते हैं बल्कि इसके बुनियादी सिद्धान्तों को भी रेखांकित करते हैं। वे चर्चा में शामिल शिक्षकों, अकादमिक व्यक्तियों द्वारा नीति के सन्दर्भ में उठाए गए सवालों पर भी चर्चा करते हैं। इस नीति को कैसे पढ़ा और समझ जाए इस सन्दर्भ में भी एक नज़रिया देते हैं। सं.

टुलटुल : हम अनुराग बेहार जी से नई शिक्षा नीति 2020 के बारे में बातचीत करेंगे।

अनुराग बेहार वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के प्रमुख कार्यकारी अधिकारी हैं और अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय बेंगलुरु के फ़ाउण्डिग वाइस चांसलर हैं। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन एक न्यायपूर्ण, समता मूलक, मानवीय और टिकाऊ समाज के निर्माण में योगदान देने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

लगभग पिछले 15 सालों से आप सार्वजनिक व्यवस्थाओं के बारे में, ख़ासकर शिक्षा पर, बात करते रहे हैं व शिक्षा की सार्वजनिक व्यवस्था के गहरे महत्त्व के मुखर पैरोकार रहे हैं। *मिंट* में आपके पाक्षिक कॉलम बहुत लोग पढ़ते रहे हैं।

2019 से तैयार हो रही नई शिक्षा नीति के प्रारूप सामने आते रहे और नीति का अन्तिम स्वरूप जुलाई 2020 में जारी हुआ। शिक्षा नीति पूरे देश की शिक्षा को आधारभूत दिशा देने वाला दस्तावेज़ होता है। पहली बार 1964 में यह ज़रूरत महसूस की गई थी कि आज़ाद भारत की एक शिक्षा नीति होनी चाहिए, और 1968 में पहली शिक्षा नीति हमारे सामने आई। फिर 1986 में उसमें कुछ तब्दीलियाँ करते हुए दूसरी शिक्षा नीति हमारे सामने आई और अब 2020 में ये तीसरी नीति हमारे सामने प्रस्तुत है।

आप इस नीति की निर्माण समिति का हिस्सा थे, आपकी नज़र में ऐसे कौन-से ख़ास क्षेत्र हैं, कौन-से विषय हैं जिनमें आ रही शिक्षा की चुनौतियों को दूर करने की दिशा में शिक्षक सक्रिय रूप से काम कर सकते हैं।

अनुराग : *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* का शिक्षकों के काम से सम्बन्ध, उनको नीति से क्या प्रोत्साहन मिलता है, क्या सहूलियतें मिलेंगी, इस
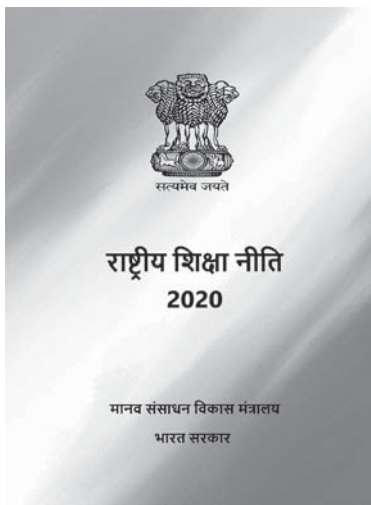
सम्बन्ध में बात शुरू करने से पहले *शिक्षा नीति 2020* के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों के बारे में बात कर लें और इनके मायने समझ लें। इतनी व्यापक शिक्षा नीति 1986 के बाद पहली बार बनी है। इसमें भारतवर्ष के पूरे शिक्षा तंत्र को शाला पूर्व शिक्षा से लेकर डॉक्टोरल की पढ़ाई तक और स्कूल, कॉलेज के अन्दर और बाहर सभी को शामिल किया गया है।

इसका पहला प्रारूप मई 2019 में भारत सरकार को प्रस्तुत किया गया था। ये प्रारूप 484 पेज का एक लम्बा दस्तावेज़ था। इस दस्तावेज़ को 30 मई 2019 से 15 अगस्त 2019 तक पब्लिक कमेंट के लिए प्रस्तुत किया गया। क़रीब 3 लाख टिप्पणियाँ और सुझाव आए जो देश के हर कोने से थे। ये टिप्पणियाँ और सुझाव हर तरह के क्षेत्र के लोगों से थे शिक्षकों से, जनता से, छात्रों से, और ऐसे लोगों से भी थे जो शिक्षा व्यवस्थाओं से जुड़े थे, जैसे– शोधकर्ता, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ आदि। इन टिप्पणियों के आधार पर उस प्रारूप को संशोधित किया गया और फिर उसी दस्तावेज़ के आधार पर 66 पेज का एक सारांश बनाया गया जिसको दरअसल *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* के रूप में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल और भारत सरकार ने जारी किया।

जब हम शिक्षा नीति की बात करते हैं और उस 66 पेज के डॉक्युमेंट को देखते हैं तब कुछ चीज़ें साफ़ नहीं होतीं, क्योंकि वो उस 484 पेज के दस्तावेज़ का सारांश है। जब कोई अस्पष्टता हो तब अच्छा होगा कि शिक्षा मंत्रालय की वेबसाइट पर उपलब्ध 484 पेज के दस्तावेज़ को देख लिया जाए। दूसरी बात, ये नीति दस्तावेज़ नहीं है, ये नीति का एक फ्रेमवर्क है और इसके अन्दर कई तरह की नीतियाँ हैं, इसमें कई सारे नियमों / क़ानूनों का इम्पैक्ट है। इन सबको क्रियान्वित करने के लिए बहुत काम करने की ज़रूरत है। अभी क्रियान्वयन की महज़ शुरुआत हुई है। शिक्षा नीति कई मामलों में यह कहती भी है कि किसका क्रियान्वयन अभी एक–आध साल में हो सकता है, लेकिन कई ऐसी चीज़ें हैं जिनका पूरी तरह से क्रियान्वयन करने के लिए काफ़ी वक़्त (दस–पन्द्रह साल) लगेगा। अब मैं आपके समक्ष इस नीति के बुनियादी सिद्धान्त रखता हूँ।

पहला सिद्धान्त यह है कि इस नीति के हिसाब से शिक्षा का उद्देश्य एक अच्छे मनुष्य और अच्छे समाज की रचना है। यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आज की दुनिया के सन्दर्भ में शिक्षा नीति कह सकती थी कि शिक्षा का मूल उद्देश्य रोज़गार है, रोज़गार की उपलब्धता है। लोगों को आजीविका का साधन दे यही शिक्षा का उद्देश्य है, लेकिन ऐसा नहीं कहा गया है। अच्छा समाज और अच्छा मनुष्य वो है जो हमारे संवैधानिक मूल्यों को जीवन्त करता है, हमने अपने–आप से 1950 में जो वायदे किए हैं उनको जीवन्त करता है। ऐसे समाज और मनुष्य की संरचना करना शिक्षा का उद्देश्य है, यह इस नीति का पहला बुनियादी सिद्धान्त है।

दूसरा बुनियादी सिद्धान्त है कि शिक्षा एक सामाजिक मानवीय प्रक्रिया है। हालाँकि लोग शिक्षा को अलग–अलग तरह से देखते हैं; कुछ लोग इसे एक खरे व्यवसाय के रूप में देखते हैं कुछ अन्य इसे एक तकनीकी चीज़ समझते हैं। नीति का फ्रेमवर्क इस तरह के दृष्टिकोणों से भी प्रभावित हो सकता था, क्योंकि शिक्षा नीति की कमेटी ने ज़्यादा व्यापक बातचीत और मशविरा किया इससे यह बात साफ़ हो गई कि शिक्षा को हमें एक सामाजिक मानवीय प्रक्रिया के रूप में ही देखना पड़ेगा। सामाजिक मानवीय प्रक्रिया का मतलब है, छात्र और शिक्षक के बीच, छात्र और छात्र के बीच, शिक्षक और शिक्षकों के बीच जो सम्बन्ध होते हैं उनके आधार पर ही शिक्षा होती है। इन मानवीय सम्बन्धों के बिना, इन सामाजिक प्रक्रियाओं के बिना शिक्षा नाम की कोई चीज़ होती ही नहीं। स्कूल भवन, शौचालय का होना, पाठ्यपुस्तकें व यूनिफ़ॉर्म, यह सब चीज़ें ज़रूरी हैं और सभी छात्रों को ये सब चीज़ें मुहैया होनी ही चाहिए, लेकिन शिक्षा का मूल शिक्षक और छात्र के बीच में है इसलिए इस नीति में इसको सामाजिक मानवीय प्रक्रिया माना गया है।

तीसरा सिद्धान्त है कि अगर शिक्षा सामाजिक मानवीय प्रक्रिया है और इसका उद्‌देश्य संविधान में लिखित प्रकृति के समाज की संरचना करना है तो ऐसी शिक्षा केवल एक सार्वजनिक शिक्षा तंत्र के आधार पर हो सकती है। पिछले 6-8 महीने में अलग-अलग तरह के लेख देखे हैं जो कहते हैं कि शायद यह नीति सार्वजनिक शिक्षा तंत्र पर ज़ोर नहीं देती। आप 66 पेज और 484 पेज वाले दोनों दस्तावेज़ों को पढ़ें तो साफ़तौर पर पाएँगे, नीति कहती है कि हमारे देश में और किसी भी देश में अच्छी शिक्षा का आधार केवल सुदृढ़ सार्वजनिक शिक्षा तंत्र ही हो सकता है। शिक्षा नीति इस बात को

my GOV

New pedagogical and curricular structure of school education (5+3+3+4): 3 years in Anganwadi/pre-school and 12 years in school

- Secondary Stage(4) multidisciplinary study, greater critical thinking, flexibility and student choice of subjects
- **Middle Stage (3)** experiential learning in the sciences, mathematics, arts, social sciences, and humanities
- Preparatory Stage (3) play, discovery, and activity-based and interactive classroom learning
- Foundational stage (5) multilevel, play/activity-based learning

कमिट करती है कि सार्वजनिक शिक्षा तंत्र को सुदृढ़ भी किया जाएगा और फैलाया भी जाएगा।

चौथा मुख्य सिद्धान्त है, अगर शिक्षा का उद्‌देश्य अच्छे इंसान और अच्छे समाज की संरचना है और वह एक सामाजिक मानवीय प्रक्रिया है तो हमारे शिक्षा तंत्र में सबसे अहम भूमिका शिक्षक की है। हमें वो सारे प्रयास, वो सारे निर्णय लेने पड़ेंगे जिनकी ज़रूरत है जिनसे शिक्षकों को सपोर्ट, इज़्ज़त, एक सामाजिक स्थान मिल सके। 'इज़्ज़त' को मैं गहरे अर्थ में कह रहा हूँ। इसका मतलब यह नहीं है कि हम कहते रहें कि शिक्षक को इज़्ज़त दें। इसका मतलब यह है कि शिक्षक को वो इज़्ज़त मिले। अगर समाज में शिक्षक को यह जगह देनी है तो उसे समर्थ करना पड़ेगा, उसको सपोर्ट करना पड़ेगा। फरक ढंग से कहूँ तो यह फ़्रेमवर्क कहता है कि विद्यार्थी-केन्द्रित शिक्षा होनी चाहिए, लेकिन उससे पहले हमें शिक्षक-केन्द्रित शिक्षा करनी होगी। अगर हम शिक्षा को शिक्षक-केन्द्रित नहीं करेंगे तो हम शिक्षा को विद्यार्थी-केन्द्रित कर ही नहीं सकते।

पाँचवाँ सिद्धान्त, बारीक़ी से देखें तो यह हमें अपनी ज़िन्दगी में रोज़ नज़र आता है। यह सिद्धान्त है– शिक्षा तंत्र में गुणवत्ता लाने के लिए समानता पर ध्यान देना ही होगा। समानता होगी तभी गुणवत्ता आएगी। समानता के ज़रिए गुणवत्ता की बात मुझे व्यक्तिगत तौर पर बहुत अच्छी लगी कि एक फ़्रेमवर्क ऐसा कह सकता है। जिस भी शिक्षा तंत्र में या जो शिक्षा तंत्र यह सुनिश्चित करता है या ऐसा माहौल बना पाता है कि सब बच्चों को बराबरी की शिक्षा मिले, ऐसी शिक्षा जिसकी उन्हें ज़रूरत है तो गुणवत्ता अपने-आप बेहतर होती है। ऐसे शिक्षा तंत्र जो सिर्फ़ गुणवत्ता पर ध्यान देते हैं वहाँ न तो गुणवत्ता बेहतर होती है न ही अधिकांश बच्चों के लिए बराबरी होती है।

इस पूरे दस्तावेज़ में क़रीब 19 या 20 मुख्य बुनियादी सिद्धान्त हैं। मैं सबका उल्लेख नहीं करूँगा। इस छठे सिद्धान्त के बाद मैं शिक्षकों की कुछ बातों पर चला जाऊँगा। छठा सिद्धान्त है– इस शिक्षा तंत्र की संस्कृति संस्थानिक सशक्तिकरण की हो। शिक्षा तंत्र लोगों को सम्बल दे, सशक्त करे, न कि इसमें रोक-टोक की संस्कृति हो, और यह न ही निरीक्षकीय

हो कि जो निर्देश दे रहे हैं वही करते रहिए। इसका एक बहुत ही आम उदाहरण है, अगर हम चाहते हैं कि हमारी शिक्षा से एक अच्छे मनुष्य की संरचना हो तो अच्छे मनुष्य का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि वो स्वयं सोचने की क्षमता रखता हो, प्रश्न उठाने की क्षमता रखता हो। यदि हमें ऐसे विद्यार्थी विकसित करने हैं तो इसके लिए विषयवस्तु, पाठ्यक्रम केवल ये ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, इसके लिए कक्षा की संस्कृति, वहाँ का बातचीत करने का माहौल, एक दूसरे से प्रश्न पूछने, सोचने, ग़लतियाँ करके सीखने का मौक़ा होना ज़रूरी है। ऐसी संस्कृति कक्षा में तभी आ सकती है, उसका संरक्षण तब ही हो सकता है जब पूरे स्कूल में वो संस्कृति हो। मान लीजिए स्कूल में संस्कृति है कि प्रश्नों को दबाया जाए, लोगों की बात न सुनी जाए, लोगों से बातचीत न की जाए तो कक्षा में स्वतंत्रता की संस्कृति कैसे होगी? उसी तरह यदि ब्लॉक में, ज़िले में पूरे शिक्षा तंत्र में ऐसी संस्कृति है कि किसी की बात न सुनी जाए, सब व्यक्तियों को संशय की नज़र से देखा जाए तो स्कूल में विश्वास की संस्कृति कैसे होगी?

जिस तरह की शिक्षा हम चाहते हैं उसके लिए बहुत सारे काम करने पड़ेंगे। एक प्रमुख काम यह है कि हमें कक्षा से लेकर पूरे शिक्षा तंत्र की संस्कृति को बदलना पड़ेगा। इसके लिए कई पहलुओं पर काम करना पड़ेगा, बीईओ, डीईओ की भूमिका क्या होती है? कमिश्नरेट, डायरेक्टरेट, नियामक तंत्र क्या करता है?, आदि। अब मैं शिक्षकों और उन मुद्दों के बारे में बात करता हूँ जिनका इन मूल सिद्धान्तों से सीधा वास्ता है–

पहला यह कि इस फ्रेमवर्क के अध्याय 'शिक्षक और शिक्षक शिक्षा' को आप ज़रूर पढ़ें।

अध्याय कहता है कि अगर शिक्षक का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण है तो यह बिलकुल बुनियादी बात है कि शिक्षा तंत्र द्वारा शिक्षक की आधारभूत आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिए। ये आधारभूत आवश्यकताएँ हैं– कक्षाएँ हैं कि नहीं, उनमें बैठने की जगह है कि नहीं, टॉयलेट है कि नहीं और उसमें पानी आता है कि नहीं, बच्चों को किताबें मिलीं कि नहीं। फिर इस तरह की आवश्यकताएँ, जैसे– शिक्षक की नियुक्तियाँ आदि। यह समझना कि एक शिक्षक 60 बच्चों को पढ़ा सकता है या एक शिक्षक जिसने ख़ुद गणित नहीं पढ़ी है वो 8वीं में गणित पढ़ाए, यह भी मुश्किल है। शिक्षा तंत्र को इन मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ेगा तब ही शिक्षकों को उनका वाज़िब स्थान मिलेगा और तब ही वो अपना काम पूरी तरह से कर पाएँगे।

इसका मतलब यह नहीं है कि एक ही दिन में इनको पूरा कर दिया जाए और इसलिए यह फ्रेमवर्क कहता है कि जब शिक्षा तंत्र की संस्कृति सशक्तिकरण की होगी तब शायद एक समय ऐसा आएगा कि हमारे शिक्षा तंत्र में इतने बदलाव होंगे कि स्कूल की पाठ्यचर्या भी शिक्षक ही तय करेंगे। ये आज ही हो सकता है ऐसा नहीं है, लेकिन दिशा यह है कि शिक्षक को इतना सशक्त होना चाहिए कि कोई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या हो उस आधार पर स्कूल ख़ुद अपनी पाठ्यचर्या को निर्धारित कर सके। यह रेखांकित कर दूँ कि मैं ऐसा नहीं कह रहा कि आज से ही ऐसा होगा इसके लिए बहुत काम करने की ज़रूरत है।

तीसरी चीज़ वो कहता है कि हमारे सार्वजनिक शिक्षा तंत्र के स्कूल को स्कूल कॉम्प्लेक्स के रूप में विकसित करना चाहिए। स्कूल कॉम्प्लेक्स का मतलब जिसमें 6-7 प्राथमिक स्कूल, 2-3 उच्च प्राथमिक स्कूल, एक उच्च माध्यमिक स्कूल हो। इन 8-10 स्कूलों के समूह को एक स्कूल कॉम्प्लेक्स मानकर चलना चाहिए और इनमें इस बात की समझ होनी चाहिए कि संसाधनों को साझा किया जाएगा, संसाधनों को कम नहीं किया जाएगा। उदाहरण के लिए, आज हम सरकारी स्कूलों में एक संगीत शिक्षक, एक स्पोर्ट्स शिक्षक चाहते हैं लेकिन सब जगह ऐसा हो नहीं पाता। क्या ऐसा हो सकता है कि (दरअसल इस मामले में जो बातचीत है वो तो 1968 की पॉलिसी में शुरू हो

गई थी) हर स्कूल कॉम्प्लेक्स में संगीत शिक्षक और स्पोर्ट्स शिक्षक नियुक्त कर सकते हैं भले ही हम हर स्कूल में न नियुक्त कर पाएँ।

चौथा यह कि शिक्षकों की दिशा हमेशा सतत पेशेवर विकास की है और इस सतत पेशेवर विकास के लिए शिक्षकों को तरह-तरह के अवसर मिलें यह बहुत ज़रूरी है। फ्रेमवर्क कहता है कि यदि स्कूल कॉम्प्लेक्स स्थापित होंगे तो वहाँ 25-30 शिक्षक एक साथ मिलकर बातचीत कर सकते हैं, एक दूसरे से सीख सकते हैं, सिखा सकते हैं। यह भी कहा गया है कि साल में कम-से-कम 50 घण्टे शिक्षकों के पेशेवर विकास के लिए मुहैया होने चाहिए और उन 50 घण्टों में उन्हें विकास के उत्कृष्ट मौक़े उपलब्ध कराने चाहिए।

अन्ततः यह एक सरकारी दस्तावेज़ है। इसमें सरकारी दस्तावेज़ की तरह की भाषा भी है लेकिन कई जगहों पर इसकी भाषा बिलकुल सच्चाई को दर्शाती है। एक जगह यह शिक्षा नीति हमारी शिक्षक शिक्षण व्यवस्था के बारे में, बीएड, डीएड, डीएलएड के बारे में बात करती है और साफ़ कहती है कि मौजूदा शिक्षक शिक्षण व्यवस्था में बहुत समस्याएँ हैं। बहुत सारे बीएड, डीएड कॉलेज दुकानें बन गए हैं जिनसे बिना वहाँ जाए डिग्रियाँ ख़रीदी जा सकती हैं। अतः यह ज़रूरी है कि शिक्षक शिक्षण तंत्र को पूरी तरह से, आमूलचूल रूप से बदला जाए। अगर समाज को यह मालूम है कि शिक्षक बनने के लिए ज़रूरी डिग्री को ख़रीदा जा सकता है तो समाज के मन में उस डिग्री का क्या स्थान होगा, और जो लोग ये डिग्री ले रहे हैं उनके लिए क्या स्थान होगा? यदि शिक्षकों को शिक्षा तंत्र में, समाज में उनकी सही जगह दिलानी है तो शिक्षक शिक्षण तंत्र को पूरी तरह सुधारा जाए यह ज़रूरी है। इसके लिए शिक्षा नीति कई महत्त्वपूर्ण कार्य कहती है। उदाहरण के लिए, यह कहती है कि 5 से 10 साल के वक़्त में सारा शिक्षक शिक्षण तंत्र बदल जाएगा। अब प्राइमरी, सेकेंडरी के लिए चार साल का एक समेकित कार्यक्रम होगा और इस तरह का चार साल का समेकित कार्यक्रम केवल मल्टी डिसिप्लीनरी इंस्टीट्यूशन्स के लिए होगा। मल्टी डिसिप्लीनरी का मतलब ऐसे कॉलेज और विश्वविद्यालय जहाँ बीए, बीएससी व अन्य सभी विषय भी पढ़ाए जाते हैं वहाँ से करना होगा, महज़ बीएड या डीएड कॉलेज से नहीं। ये भी कहती है कि नियम-क़ायदों को बदलना पड़ेगा, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) को पूरी तरह से बदलना पड़ेगा। आप लोगों ने सुना और पढ़ा होगा कि 2021 के अन्त तक या हो सकता है 2022 तक एक नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा आएगी, उसके आधार पर पूरी शिक्षा की पुनर्रचना होगी। उसे 5 + 3 + 3 + 4 कहा जा रहा है। इसका मतलब तीन साल की उम्र से पहली और दूसरी तक के पाँच सालों को साथ जोड़कर एक फ़ाउण्डेशन स्टेज कहा है। इसमें
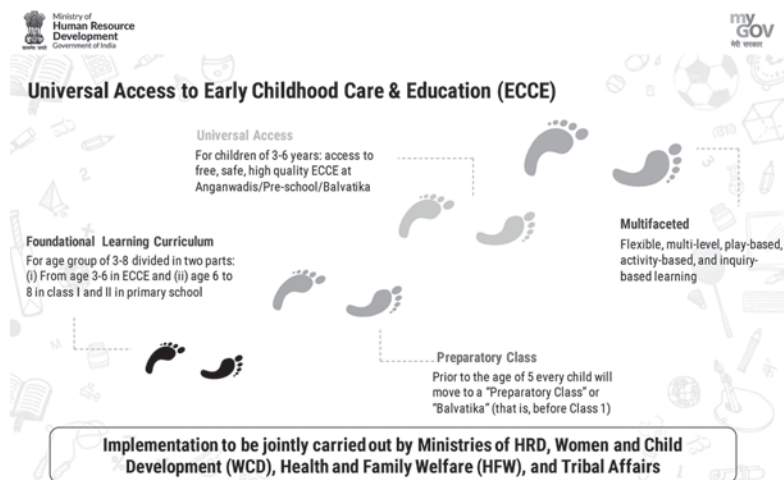
Ministry of Human Resource Development, Government of India

Universal Access to Early Childhood Care & Education (ECCE)

Universal Access
For children of 3-6 years: access to free, safe, high quality ECCE at Anganwadis/Pre-school/Balvatika

Foundational Learning Curriculum
For age group of 3-8 divided in two parts: (i) From age 3-6 in ECCE and (ii) age 6 to 8 in class I and II in primary school

Multifaceted
Flexible, multi-level, play-based, activity-based, and inquiry-based learning

Preparatory Class
Prior to the age of 5 every child will move to a "Preparatory Class" or "Balvatika" (that is, before Class 1)

Implementation to be jointly carried out by Ministries of HRD, Women and Child Development (WCD), Health and Family Welfare (HFW), and Tribal Affairs

एक तरह की शिक्षाशास्त्रीय अप्रोच है। उसके बाद आज की तीसरी, चौथी और पाँचवीं अगला चरण है; फिर छठी, सातवीं और आठवीं; उसके बाद नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं। यह किस तरह से होगा उसका बुनियादी सिद्धान्त तो शायद है लेकिन ठीक-ठीक कैसे होगा इसे जानने के लिए एनसीएफ़ 2021-22 के आने तक इन्तज़ार करना पड़ेगा।

पुरुषोत्तम : भारत की ग्रामीण संस्कृति है। ऐसा लगता है कि शिक्षा में जो आमूलचूल परिवर्तन होते जा रहे हैं उनका स्वरूप निजीकरण के माध्यम से व्यवसायीकरण की ओर जा रहा है। शिक्षा की संस्कृति को बदलना है क्योंकि शिक्षा बदलेगी तो समाज बदलेगा और समाज बदलेगा तो राष्ट्र बदलेगा। शिक्षा को केन्द्रीकृत नहीं होना चाहिए उसका विकेन्द्रीकरण होना चाहिए लेकिन आज के परिप्रेक्ष्य में जैसा माहौल मध्य प्रदेश में देखा जा रहा है यहाँ माध्यम विकेन्द्रीकरण से केन्द्रीकरण की ओर जा रहा है।

हम भारत के अन्तिम नागरिक को भी शिक्षित करना चाहते हैं। यही ध्यान में रखते हुए हमने टोले-टोले में जाकर केन्द्र खोले, हर 3 किलोमीटर पर माध्यमिक विद्यालय खोले, अब आज हम उन विद्यालयों को हटाकर एक स्कूल कॉम्प्लेक्स की बात कर रहे हैं। मुझे हमारा देश अप्रत्यक्ष रूप से बिकता हुआ लग रहा है समाज की शिक्षा को छीनकर व्यवसायियों के हाथों में सौंपा जा रहा है।

अनुराग : सार्वजनिक शिक्षा तंत्र से निजी स्कूलों की तरफ़ बच्चों का पलायन पिछले 15-20 सालों से, बहुत ज़ोर से चल रहा है। और चूँकि ये पिछले 15-20 सालों से चल रहा है तो हमको कुछ सवाल अपने-आप से पूछने चाहिए कि ऐसा होता क्यों है?

यह शिक्षा नीति स्पष्टता से कहती है कि अच्छी शिक्षा का आधार सार्वजनिक शिक्षा तंत्र ही हो सकता है, इसलिए सार्वजनिक शिक्षा तंत्र को सुदृढ़ करने और इसे फैलाने के लिए शिक्षा पर सार्वजनिक पूँजी का ख़र्चा दुगुना किया जाएगा क्योंकि इसे दुगुना किए बग़ैर सार्वजनिक शिक्षा तंत्र में बेहतरी, सुधार करना मुश्किल है। अब तक भारत सरकार और राज्य सरकारों के पूरे ख़र्चे का 10 प्रतिशत भाग सार्वजनिक शिक्षा पर निवेश होता था अब वह 20 प्रतिशत किया जाएगा। यह निवेश सारे पहलुओं में होगा, चाहे वो मूलभूत इन्फ्रास्ट्रक्चर की बात हो, चाहे शिक्षक नियुक्तियों की। कई राज्यों में अलग-अलग काडर के शिक्षक होते हैं जिनमें कुछ कॉन्ट्रेक्ट पर हैं कुछ परमानेंट, लेकिन काम सब एक ही तरह का कर रहे हैं। यह शिक्षा नीति कमिट करती है कि अगर शिक्षकों को एक ही तरह के काम के लिए नियुक्त कर रहे हैं तो सभी के लिए बराबरी की शर्तें लागू होनी चाहिए। इन सभी मुद्दों और उनपर निवेश को लेकर इस शिक्षा नीति में प्रतिबद्धता है। इस शिक्षा नीति का क्रियान्वयन कैसे होगा, यह देखना है। अगर शिक्षा नीति को फ़ॉलो किया जाएगा और अगर उसका 20%-30% भी क्रियान्वित किया जाएगा तो उसकी दिशा सार्वजनिक शिक्षा तंत्र को बेहतर करने, उसको सुदृढ़ करने की ही होगी।

मध्य प्रदेश में, अन्य कुछ राज्यों में जो हो रहा है इसको इसी धारा, जो पिछले 10-15 साल से बह रही है, के तहत देखना चाहिए। यह धारा इतनी तेज़ी से बह रही है तो इसे बदलने में वक़्त लगेगा, साथ ही धारा बदलने का मतलब महज़ यह नहीं है कि बच्चे वापस सार्वजनिक शिक्षा तंत्र में आने लगें जो इस महामारी के कारण होने लगा है। मुख्य बात यह है कि लोगों की मानसिकता में परिवर्तन कैसे होगा? हम जानते हैं कि उच्च स्तरीय ओहदों पर जो लोग हैं उनकी मानसिकता में यह बात आ गई है कि सार्वजनिक शिक्षा तंत्र को बेहतर नहीं कर सकते तो क्यों न प्राइवेट स्कूल ही ले लें। धारा परिवर्तन की बात शिक्षा तंत्र को सुदृढ़ करने की बात नहीं है न ही यह इस मानसिकता में बदलाव की बात है, लेकिन मानसिकता में बदलाव आने के लिए इस तरह की बातें ज़रूरी हैं। इस शिक्षा नीति से हमें नई ऊर्जा, एक नया बल मिलना चाहिए जिससे हम सार्वजनिक

तंत्र को बेहतर कर सकें और निजीकरण का फिनोमिना धीरे-धीरे ख़त्म हो सके।

टुलटुल : दो सवाल हैं– पहला 10 + 2 खण्ड को बदलकर 5 + 3 + 3 + 4 की बात नीति करती है, यह पूर्व प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र के महत्त्व को रेखांकित करती है। हमने भी देखा है कि आँगनवाड़ियों के प्रशिक्षण और अभी जो स्थितियाँ हैं उनमें पोषण को फिर भी थोड़ी जगह मिलती है, लेकिन शिक्षण वाला हिस्सा काफ़ी हद तक नज़रअन्दाज़ ही रहता है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान देना महत्त्व का लगता है, पर इसको ज़मीन पर उतारने में किस तरह की चीज़ें करनी होंगी? इस सन्दर्भ में किस तरह की चर्चाएँ इस नीति को बनाने में हुई हैं? आँगनवाड़ी अभी महिला एवं बाल विकास विभाग के तहत है, क्या वो शिक्षा विभाग के तहत आएगी? क्या शिक्षकों की पूर्व प्राथमिक शिक्षा के दायरों में प्रशिक्षणों की ज़रूरत होगी? अगर इस तरह के बदलाव की दिशा में हम जाते हैं तो इसके लिए किस तरह की तैयारी की, योजनाओं की, बातचीत की, चर्चा की, चिन्ताएँ इसमें आपको दिखती हैं? इसी से जुड़ा हिस्सा है जहाँ खेल, बच्चों के बीच संवाद को बढ़ाना, कला और क्राफ़्ट, थिएटर जैसी रचनात्मक गतिविधियों की बात

है जो काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। पर साथ ही इसमें अच्छा व्यवहार, आज्ञाकारी और इस तरह की शब्दावली भी शामिल हो गई है। बच्चे नैसर्गिक रूप से सवालिया होते हैं, लेकिन इस छवि पर आज्ञाकारी बालक की छवि फिर से पुरज़ोर उठती और हावी होती हुई दिखती है। अक्षर ज्ञान, साक्षरता और इन जैसी चीज़ों पर भी ज़ोर ज़्यादा है। हमारे अनुभव के आधार पर लगता है कि ये उम्र वो है जहाँ परस्पर संवाद, भागीदारी की समानता, बच्चों में स्वायत्तता का विकास हो सके इनको और जगह देने की ज़रूरत है। ये जो क्युरिअस मिक्स है इसपर कुछ कहें।

अनुराग : इस शिक्षा नीति का सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा पूर्व प्राथमिक शिक्षा या बुनियादी अवस्था है। नए पैडागॉजिकल स्ट्रक्चर 5 + 3 + 3 + 4 की बात बहुत आसान बात है। हम कई बरसों से जानते हैं कि बच्चों के विकास के आधार पर पाठ्यचर्या और शिक्षणशास्त्रीय अप्रोच को डिज़ाइन करना चाहिए। इसमें पहले 5 साल पर ज़ोर देना सबसे महत्त्वपूर्ण है और इसे खेल-आधारित होना चाहिए, इसमें सहजता होनी चाहिए। पढ़ने-पढ़ाने के तरीक़ों को नीचे खींचने की बात नहीं है बल्कि सहजता से पढ़ाने की ज़रूरत है। प्रारूप कहता है कि पहली दूसरी में खेल-खेल में पढ़ाना होना चाहिए और इस उम्र के बच्चों के विकास को देखते हुए संज्ञानात्मक, सामाजिक, भावात्मक, शारीरिक विकास के लिए यह सब करने की ज़रूरत है। पेचीदा समस्या मेरे ख़्याल से नीति के सामने यह है कि आँगनवाड़ी जो महिला एवं बाल कल्याण विभाग के तहत है उसे तंत्र के साथ जोड़ दिया जाए, लेकिन नीति ने ऐसा नहीं किया है। ये एक राष्ट्रीय नीति

है लेकिन बहुत सारे मुद्दे राज्य के क्षेत्र में हैं और इनपर राज्य ही काम कर सकते हैं। पिछले 50-60 सालों में, ख़ासतौर से स्कूलों के सन्दर्भ में राज्य की ज़िम्मेदारी और अधिकार के तहत ही काम हुआ है। नीति द्वारा इसके लिए चार रास्ते बताए गए हैं और चारों में से कौन-सा रास्ता अख़्तियार किया जाए वो राज्य पर निर्भर है : (1) आप आँगनवाड़ी को पूरी तरह से स्कूल में इन्टीग्रेट कर सकते हैं; (2) प्राथमिक स्कूल के साथ ये कक्षाएँ चल सकती हैं। यह इसपर निर्भर करता है कि आप क्या देखना चाहते हैं और नीति के हिसाब से संस्थागत एकीकरण के लिए बहुत लचीलापन होना चाहिए। ऐसा नहीं कि आँगनवाड़ियों को बन्द करके सब स्कूलों में दे दिया जाए या आँगनवाड़ियों को अलग-थलग रखा जाए या स्कूलों में पूर्व प्राथमिक शुरू किया जाए। ऐसा नहीं है।

स्थानीय सन्दर्भ के हिसाब से जो सही लगता है उस राज्य, ज़िले में वो करना चाहिए। साथ ही पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्रीय पहलुओं से उसका इन्टीग्रेशन होना चाहिए। दूसरा, शिक्षकों को सही व नियमित प्रशिक्षण मिले। आज आँगनवाड़ी में काम करने वाले को आँगनवाड़ी कार्यकर्ता कहा जाता है, उनको भी शिक्षक का ओहदा मिले क्योंकि जब हम कह रहे हैं कि बुनियादी स्तर एक साथ में ही है फिर प्राथमिक स्कूल के शिक्षक और इनमें फ़र्क़ नहीं होना चाहिए। आज से 15-20 सालों में 3 साल की उम्र से 8 साल तक की उम्र के बच्चों के लिए 4 साल के बुनियादी कार्यक्रम वाले ही शिक्षक होंगे। अगले 15 साल देखें तो संस्थागत एकीकरण चाहे कैसा भी हो लेकिन शैक्षणिक एकीकरण होता रहेगा। चाहे शिक्षक प्रशिक्षण हो, शिक्षकों का नौकरी की शर्तों के हिसाब से ओहदा हो, यह सब इन्टीग्रेशन होता रहेगा। आज अलग-अलग राज्यों में आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की स्थिति अलग-अलग है। कहीं उनकी न्यूनतम योग्यता 10वीं पास है, कहीं 12वीं। आज इन सारे आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को घर जाने को कह दें ये उनके साथ बहुत बड़ा अन्याय होगा, इसलिए उनके साथ काम किया जाए, उनका क्षमतावर्धन हो और जब तंत्र इस दिशा में चलने लगे तब नई नियुक्तियाँ पूरी शिक्षकीय योग्यता के साथ हों। संक्षिप्त में कहूँ तो मुख्य मुद्दा यह है संस्था कोई भी हो; आँगनवाड़ी, प्राथमिक स्कूल, या प्राथमिक के साथ पूर्व प्राथमिक स्कूल, शैक्षणिक दृष्टि ज़रूरी है कि हम उसको एक इन्टीग्रेटेड स्टेज के रूप में देखें जहाँ एक इन्टीग्रेटेड अप्रोच है जिसे मैं मोटेतौर पर प्ले बेस कह रहा हूँ, जिसमें चाक लेकर ब्लैकबोर्ड पर पढ़ाना, लिखाना शुरू न किया जाए बल्कि बच्चों को हँसाया-खिलाया जाए उनको मज़ा आए, उनको सहज बनाया जाए और उसके माध्यम से उनका विकास हो।

संस्थागत मामले को शैक्षणिक मामले से अलग रखना होगा, ऐसा इसलिए क्योंकि शिक्षा तंत्र में बहुत समस्याएँ हैं सारे संस्थागत मसले इतनी जल्दी ठीक नहीं हो सकते, शैक्षणिक मामले में न केवल पाठ्यचर्या निर्माण की बात है बल्कि यह भी बात है कि जो आँगनवाड़ी वर्कर पाठ्यचर्या को ट्रान्ज़ैक्ट करेंगे उनको आज सपोर्ट की ज़रूरत है। आज जो प्राथमिक और पूर्व प्राथमिक में फ़र्क़ है वो दस-पन्द्रह साल बाद नहीं रहेगा, क्योंकि शुरुआती स्तर के सभी शिक्षकों की योग्यता एक ही होगी। अब यहाँ कैसे जाएँगे, कब जाएँगे, किस तरफ़ जाएँगे, किस स्पीड से जाएँगे, इसके लिए मेरे ख़्याल से सारे राज्यों को अपनी योजना बनानी होगी। इस मामले में केन्द्र सरकार न तो कुछ कर सकती है और न ही करना चाहिए। जैसा मैंने उल्लेख किया, निवेश को 10% से 20% बढ़ाने की बात है उसमें से बहुत सारा निवेश बुनियादी स्तर को सुदृढ़ करने पर किया जाए।

दूसरा, हम सबको मालूम है कि कोई भी दस्तावेज़ एक बहुत जटिल वैचारिक निगोशिएशन का परिणाम होता है। मई 2017 से दिसम्बर 2018 में जब प्रारूप बना रहे थे उस दौरान हमने कम-से-कम 350 से 400 संस्थाओं से सलाह मशविरा किया होगा, कुछ हज़ार लोगों से बातचीत की होगी। जैसा मैंने

बताया, तीन लाख टिप्पणियाँ और सुझाव आए थे। इसकी भाषा भी एक जटिल निगोशिएशन का नतीजा है अतः हमें उसका बेहतर इन्टरप्रिटेशन करना चाहिए। अगर हम भय से इन्टरप्रेट करेंगे तो भयभीत ही होते रहेंगे और अगर हम सृजनात्मकता और साहस से इन्टरप्रेट करेंगे तो उसी तरह से इन्टरप्रिटेशन होता रहेगा।

अब सवाल यह है कि ये सृजनात्मकता और साहस कहाँ से आएगा? आप जानती ही हैं कि इन सवालों के जवाब देना बड़ा मुश्किल है। शायद इसलिए क्योंकि कोई सरल जवाब है ही नहीं। इस चेतावनी के साथ कहूँगा कि साहस तब मिलता है जब हम जानते बूझते हुए अहम का भाव छोड़ देते हैं। यह निस्वार्थ कार्य का भाव हमारी योग्यता से जुड़कर हमें आत्मविश्वास देता और साहसी बनाता है।

सृजनात्मकता तब आ सकती है जब हम अपने चारों तरफ़ फैली बदहाल वास्तविकता के यथार्थ को समझते हुए उसका सामना करते हैं। उससे उसी की शर्तों पर जूझते हैं और अपने मूल्यों के प्रति सच्चे रहते हुए, किसी भी प्रदत्त ज्ञान की बेड़ियों से मुक्त रहते हुए आगे की राह खोजते हैं। ख़ैर।

66 पेज के दस्तावेज़ में भी, और 484 के दस्तावेज़ में भी हर उस जगह पर जहाँ उसकी ज़रूरत है, इसका उल्लेख है कि संवैधानिक मूल्यों का विकास होना चाहिए, समीक्षात्मक सोच का विकास होना चाहिए। सवाल यह है कि कहीं अगर दो शब्द व्यवहारवाद के आ गए हैं तो हम उन्हें मूलभूत आधार क्यों मानें? मैं एक व्यवहारिक और प्रैग्मैटिक बात कह रहा हूँ। यह शिक्षा नीति 1986 के बाद पहली बार बनी है और यह एक बहुत जटिल संवाद, बहुत जटिल निगोशिएशन का आउटकम है। इस आउटकम में हर जगह पर ऐसे सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर अच्छी शिक्षा को ही क्रियान्वित कर सकते हैं। आज्ञाकारी के सम्बन्ध में बात उठी थी मुझे मालूम नहीं कि कहाँ आज्ञाकारी है कम-से-कम प्रारूप में तो कहीं पर नहीं है, 66 पेज के हिन्दी अनुवाद में हो शायद। लेकिन हमें उन शब्दों, विचारों को इनेबल, एन्करेजिंग, एनर्जाइज़िंग मानकर चलना चाहिए जो अच्छी शिक्षा के लिए ज़रूरी हैं, बजाय कि किन्हीं दो-चार शब्दों या पंक्तियों को पकड़कर भयभीत या सीमित हो जाएँ।
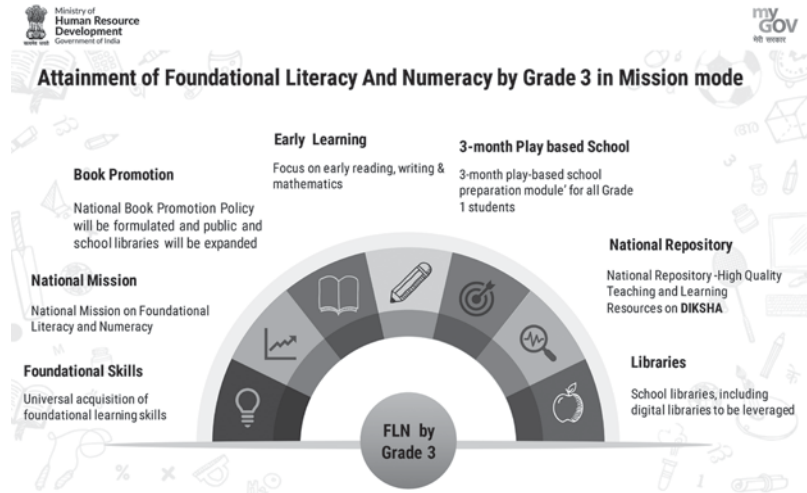
टुलटुल : नीति में बारम्बार रेखांकित किया गया है कि प्राथमिक स्तर की पढ़ाई में बहुभाषिता, मातृभाषा और घर एवं आस-पड़ोस में जो भाषाएँ मौजूद हैं उन भाषाओं को माध्यम के रूप में उपयोग किया जाए लेकिन कई जगहों पर बहुभाषिता की, बच्चे के घर की भाषा को प्राथमिक शिक्षा का आधार बनाने की बात करते हुए नीति व्हेनेवर, पासिबल जैसे लफ़्ज़ों का इस्तेमाल करती है और इस तरह की शब्दावली की वजह से ये चिन्ता ज़रूर उभरती है कि इसे सम्भव बनाने में जो दृढ़ विश्वास चाहिए, एक शिक्षक को जो आधार चाहिए कि अगर मैं नीति

का सहारा लूँ तो ये मुझे सपोर्ट करेगी, इसकी थोड़ी कमी-सी लगती है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है, शासकीय शालाओं में वहाँ के इलाक़े की भाषा / भाषाएँ बच्चे बोलते हैं हालाँकि कई बार उनका उतना उपयोग नहीं भी होता है। यदि हम पूरे देश की आगे की शिक्षा की बात कर रहे हैं तो ये एक सवालिया निशान या चुनौती की तरह सामने रहता है कि निजी स्कूलों में भी यह कैसे लागू हो पाएगा ताकि पूरी शिक्षा व्यवस्था पर बहुभाषिता के महत्त्व को हम अंजाम दे सकें।

अनुराग : भाषा का मसला शिक्षा के सन्दर्भ में ही नहीं बल्कि हमारे दि5'जहाँ तक हो सके की बात करूँगा', उसकी ख़ुद की भाषा से करना चाहिए। यहाँ पर मुद्दा केवल यह है कि हमारे यहाँ तरह-तरह की भाषाएँ हैं, जैसे– मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ में कह तो देते हैं कि माध्यम की भाषा हिन्दी है लेकिन बच्चे बहुत-सी भाषाएँ बोलते हैं। और फिर ख़ुद की भाषा छत्तीसगढ़ी का इस्तेमाल नहीं होता है। कक्षा में माध्यम की भाषा का मतलब केवल यह है कि व्यवहारिक रूप से हर भाषा तो निर्देशों का माध्यम नहीं हो सकती है। इसलिए जहाँ तक हो सके बच्चे की भाषा का इस्तेमाल करना चाहिए और उसे माध्यम की भाषा की मदद से ब्रिज करना चाहिए। आज मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ कई शिक्षकों को दुविधाओं में पाता हूँ कि क्या बच्चे की भाषा का इस्तेमाल करना ठीक है? एक हिचक नज़र आती है; माध्यम की भाषा हिन्दी है, हम मारवाड़ी में कैसे बात करें? हम भीली भी सीख चुके हैं लेकिन भीली इस्तेमाल नहीं करेंगे क्योंकि माध्यम की भाषा हिन्दी है। यह भी कि हर शिक्षक को स्थानीय भाषा इतने अच्छे से नहीं आ सकती।

दूसरा मुद्दा जिसको अहमियत दी गई है वह यह कि छोटे बच्चे बहुत सारी भाषाएँ एक साथ सीख सकते हैं। बहुत सारी भाषाएँ सीखना तरह-तरह से महत्त्वपूर्ण है। कुछ शोध कहते हैं कि यह संज्ञानात्मक विकास में महत्त्वपूर्ण है। शुरुआती दौर का पढ़ना-लिखना उनकी ख़ुद की भाषा में सीखा जाए लेकिन बच्चे को ऐसा माहौल मिलना चाहिए कि वो बहुत सारी भाषाएँ सीख सके।

तीसरी अहम बात है कि भाषा हमारी अस्मिता, सामाजिक, सांस्कृतिक अस्मिता का अभिन्न अंग है। इसके शिक्षा के लिए स्पष्ट मायने हैं अतः भाषा को नकारा नहीं जा सकता और न अलग-थलग किया जा सकता है। इसलिए चाहे तमिल हो, मणिपुरी हो या छतीसगढ़ी, उसका पाठ्यचर्या में स्थान होना चाहिए इसको झुठलाया नहीं जा सकता।

चौथी बात, हालाँकि बहुत लोगों से मेरी इस मामले में राय फरक है पर यह भी झुठलाया नहीं जा सकता कि हमारे समाज में, राष्ट्र में अँग्रेज़ी को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। अँग्रेज़ी सामाजिक आकांक्षाओं / तमन्नाओं की भाषा है और कोई अँग्रेज़ी सीखना चाहता है तो उसको उससे वंचित कैसे किया जा सकता है? सम्पन्न लोग तो वंचित नहीं रहते, अँग्रेज़ी सीखने की एक व्यापक सामाजिक चाह है और यह चाह है तो अवसर मिलने चाहिए। ऐसी स्थिति निर्मित नहीं की जाए जिससे सम्पन्न लोग तो सीखते रहें और वंचित लोगों को सीखने का मौक़ा न मिले। इसके व्यवहारिक निहितार्थ यह हैं कि उच्च शिक्षा की तरफ़ जाने पर भाषा की समस्या और बढ़ती है। उच्च शिक्षा में, अगर आप अँग्रेज़ी से वाक़िफ़ नहीं हैं तो तरह-तरह के नुक़सान होते हैं और इसलिए पॉलिसी कहती है कि अँग्रेज़ी सीखने से किसी को रोकना नहीं चाहिए, अँग्रेज़ी सीखने के अवसर सभी को मिलने चाहिए। उच्च शिक्षा में भी भारतीय भाषाओं का उपयोग होना चाहिए और इसके लिए तरह-तरह के व्यापक प्रयास होने चाहिए। ये चार चीज़ें महत्त्वपूर्ण हैं। इन चारों को सोच समझकर आप निर्णय कीजिए कि आपके लिए क्या ठीक है। पॉलिसी ने तो दरअसल इतना ही किया है, इससे ज़्यादा करना भी नहीं चाहिए क्योंकि हम कह रहे हैं कि स्वायत्तता और सशक्तिकरण होना चाहिए। क्या इस सबसे अहम मुद्दे पर उस स्वायत्तता

और सशक्तिकरण को हम खींच लेंगे?

सुदर्शन आयंगार : नई शिक्षा नीति में गाँधीजी द्वारा प्रेरित नई तालीम की झलक दिखाई देती है, आप नई तालीम की भावना को *शिक्षा नीति 2020* के साथ कैसे जोड़ेंगे?

अनुराग : इस पॉलिसी का गाँधीजी के व्यापक विचारों से, उनके सिद्धान्तों से, मूल्यों से पूरा सम्बन्ध है। शिक्षा को आम ज़िन्दगी से जोड़ना, आम ज़िन्दगी से शिक्षा का होना यह सिद्धान्त ज़रूर है, लेकिन इस सिद्धान्त का अन्ततः क्रियान्वयन ज़रूरी नहीं है कि उसी तरह से होगा जिस तरह से हम लोग नई तालीम को देखते हैं।

टुलटुल : कई इलाक़ों में, जैसे– बड़वानी, मंडला, धार, बैतूल, जहाँ हम काम कर रहे हैं वहाँ पर काम के कारण पलायन कर जाने वाले परिवार बहुत बड़ी संख्या में हैं। इन बच्चों की शिक्षा अविरत चले इसके बारे में कोई भी व्यवस्था अभी उस तरह से लागू नहीं हो पाती है। ये बच्चे एक जगह पर दाख़िला लेते हैं और फिर वो अपने परिवारों से साथ भट्टों में या काम की जगह पर चले जाते हैं।

क्या इसके बारे में नीति चर्चाओं में कुछ बातचीत हुई है? शिक्षा का अधिकार क़ानून आने के बावजूद इन बच्चों को अविरत शिक्षा नहीं मिल पा रही है, इसके बारे में आप क्या सोचते हैं?

अनुराग : इसके बारे में नीति निर्माण के दौरान बहुत चर्चा हुई कि क्या इसका कोई ख़ास हल हो सकता है? मेरे ख़्याल से आम सहमति थी कि स्कूलों को इस वस्तुस्थिति से डील करने के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराने होंगे और उसका मतलब यह भी हो सकता है कि जिन जगहों पर ऐसे छात्र आते हैं क्या वहाँ पर पर्याप्त शिक्षक नियुक्त किए जा सकते हैं। दूसरी बात यह कि स्कूल संस्कृति में इन्क्लूज़न को अहम स्थान दिया जाए। जो बच्चे इस तरह की स्थिति का सामना कर रहे हैं उनको स्कूलों में दाख़िला मिले और उनको पूरा सपोर्ट मिले और स्कूल सपोर्ट दे पाएँ इसलिए स्कूल को पर्याप्त संसाधन मिलें। मेरी समझ में यह बहुत ही गहन समस्या है और इस समस्या का कोई बहुत सीधा समाधान है भी नहीं। शिक्षा समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं और पहलुओं में से एक है लेकिन शिक्षा अपने-आप में समाज के सारे पहलुओं से या सारी समस्याओं से जूझ नहीं सकती। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया होते हुए भी यह अपने-आप में पूरी नहीं है लेकिन साथ ही शिक्षा को समाज की दूसरी प्रक्रियाओं से अलग देखना वाज़िब भी नहीं है और वास्तविक भी नहीं है। सरल शब्दों में, इसका निहितार्थ यह है कि सब चीज़ों का समाधान शिक्षा के अन्दर नहीं है या शिक्षा तंत्र के अन्दर ही नहीं है, बहुत सारी चीज़ों का पूरक समाधान शिक्षा तंत्र के बाहर और शिक्षा तंत्र से जुड़ी हुई चीज़ों से है जैसे प्रवास की बात हो गई। एक-दो उदाहरण और देता हूँ। हम जानते हैं कि बच्चों
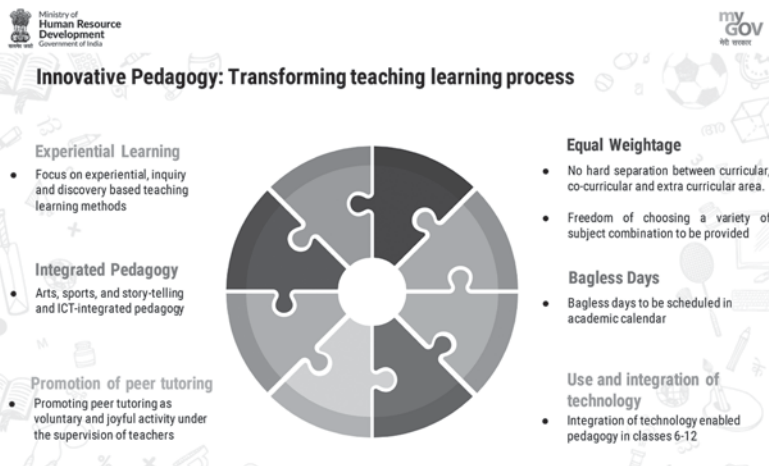
के लिए पोषण की भूमिका काफ़ी अहम है। नीति कहती है कि बच्चों को पोषक ब्रेकफ़ास्ट देना चाहिए वो यह भी कहते हैं कि मध्याह्न भोजन का व्यय मुद्रास्फीति (एक अर्थव्यवस्था में चीज़ों, सेवाओं की बदलती, बढ़ती दर) की दर को देखते हुए करना चाहिए वरना उसपर व्यय पर्याप्त दृष्टि से बढ़ता ही नहीं है। पर फिर हमें उस पोषण के सन्दर्भ में भी सोचना है जो पैदाइश से 3 साल तक के बच्चे यानी जब तक स्कूल नहीं आए उसके लिए है। उसके लिए आईसीडीएस सिस्टम है यानी ये पूरी तरह से एक शैक्षणिक मुद्दा नहीं है। ये शिक्षा तंत्र का बाहर के सिस्टम के सन्दर्भ से है। एक और बात नियामक संस्कृति की है। वर्तमान में शिक्षा की नियामक संस्कृति मतलब एनसीटीई की संस्कृति से है। ये नियामक संस्कृति सशक्त करने वाली होनी चाहिए। संस्थानों के निरीक्षण के बजाय उनकी स्वायत्तता, उनपर विश्वास होना साथ ही नियामकता की ये संस्कृति जो शिक्षा में है वो बाक़ी नियामकता की संस्कृति से अलग-थलग नहीं है। शिक्षा की नियामक संस्कृति से वो भी प्रभावित होगा लेकिन बाक़ी व्यापक संस्कृति से भी ये प्रभावित होगा। इसपर पॉलिसी कुछ बात करती है लेकिन मुझे लगता है कि केवल शिक्षा नीति से इसका कोई हल सम्भव नहीं है।

सानिया : इस नीति में प्राचीन भाषाओं ख़ासकर संस्कृत पर काफ़ी ज़ोर दिया गया है।

अनुराग : इस दस्तावेज़ को आप किस तरह से इन्टरप्रेट करेंगी, ये आप पर निर्भर करता है। जैसे संस्कृत की बात हुई है लेकिन संस्कृत को ज़रूरी ही करना है ये कहाँ है? फिर कह रहा हूँ कि ये सात साल की निगोशिएशन की प्रक्रिया है जिसमें इस समाज के हर तरह के लोग सम्मिलित थे। अब भाषा के लिए सुझावित नीति में सर्वोत्कृष्ट क्या होता है आपके हिसाब से उसको ढूँढ़ने की बजाय, जिससे हम सहमत हैं, जो अच्छी चीज़ है उसको लेकर आगे बढ़ना व्यवहारिक रूप से बेहतर होगा, ऐसा मेरा मानना है। नीति जो मंच देती है उस मंच को लेकर आगे बढ़िए और जो आपको पीछे खींच रहा है उस विचार को छोड़ दीजिए।

टुलटुल : समानता के ज़रिए गुणवत्ता की बात है, पर अब हमें समानता में ही गुणवत्ता है इस दिशा में भी आगे जाना है क्योंकि अगर अवसरों की समानता, एक दूसरे के साथ काम करके कुछ हासिल करने की समानता शिक्षा प्रक्रिया में न हो तो वो असल में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा है ही नहीं, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की परिभाषा में ही ये समानता निहित हो। दूसरी बात शिक्षकों के पेशेवर विकास की है, उनको पाठ्यचर्या के स्तर पर स्वायत्तता देने की बात है और ये दोनों ही काफ़ी महत्त्वपूर्ण हैं और इसमें और आगे हमें चर्चाएँ और काम जारी रखना होगा। बच्चों के सीखने के स्तरों के आकलन की बात होती है इस प्रक्रिया में भी शिक्षकों की स्वायत्तता शामिल हो, पाठ्यचर्या के साथ-साथ आकलन का एक बहुत गहरा जुड़ाव है और यही वह बल और दिशा प्रदान करता है कि कैरिकुलम के तहत किस तरह से नए प्रयास किए जाएँ। स्वायत्तता शिक्षकों को मिल पाए और इस स्वायत्तता को बहुत अच्छे से काम में तब्दील करने की अभिप्रेरणा शिक्षकों को मिल पाए, उसके लिए हम मिलकर काम करते रहेंगे।

आप राष्ट्रीय शिक्षा नीति का दस्तावेज https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf पर पढ़ सकते हैं।

सभी चित्र मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के प्रेज़ेंटेशन से साभार।

टुलटुल बिस्वास एकलव्य फ़ाउण्डेशन के शिक्षा कार्यक्रम में कोई तीन दशक से जुड़ी हुई हैं और मुख्यत: शिक्षक प्रशिक्षण के कार्यक्रम का समन्वयन करती हैं। वे एकलव्य की बहुचर्चित बाल विज्ञान पत्रिका *चकमक* के सम्पादन से जुड़ी रही हैं। रसायनशास्त्र और समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर टुलटुल की बाल साहित्य में विशेष रुचि और दख़ल है।
सम्पर्क : tultulbiswas@yahoo.com

बच्चों में पढ़ना–लिखना सीखने और बुनियादी गणितीय क्षमताओं के विविध आयाम

पत्रिका की संवाद श्रृंखला की यह छठवीं परिचर्चा है। पाठशाला के पिछले, यानी आठवें अंक में आपने इस संवाद का पहला भाग पढ़ा होगा। इसमें शुरुआती संख्यात्मक ज्ञान और पढ़ना-लिखना के सन्दर्भ में कक्षाओं में क्या करना सम्भव है और क्या-क्या किया जा सकता है, इसके बहुत-से ठोस उदाहरण शिक्षक साथियों ने साझा किए। बुनियादी गणितीय क्षमता और उसमें भाषा की बहुत बड़ी भूमिका लोगों द्वारा रखी गई, इस अंक में हम इसका दूसरा भाग प्रकाशित कर रहे हैं। इस हिस्से में ज़्यादा केन्द्रित रूप से बुनियादी साक्षरता और संख्या की समझ और उसकी ज़रूरत पर बात है। जैसे बुनियादी संख्यात्मक समझ से क्या आशय है? संख्या की अवधारणा से क्या आशय है? शुरुआती साक्षरता को कैसे समझें? यह क्यों आवश्यक है? सं.

हृदयकान्त दीवान : अभी तक साथियों ने जो बातचीत की है उससे आगे की चर्चा के लिए अर्धेंदु से आग्रह करूँगा कि वह अपनी बात रखें।

अर्धेंदु : बहुत सारे साथी अपने अनुभवों से बहुत सारी बातें रख रहे थे। मैं उनसे जुड़ता हुआ आगे जाऊँगा और गणित पर फ़ोकस करूँगा। पहली बात यह कि कोई किसी को सिखा नहीं सकता, जब तक कोई ख़ुद सीखना नहीं चाहता हो। बच्चे के बारे में बात करें तो बच्चे को अगर ख़ुद सीखना है तो उसको उस प्रक्रिया में ख़ुद शामिल होना पड़ेगा। जब तक बच्चा उस प्रक्रिया से जुड़ाव महसूस नहीं करेगा तब तक वह सीख नहीं सकता। तो एक मुख्य सवाल यह है कि बच्चा सीखने की प्रक्रिया में जुड़ाव कैसे महसूस करेगा। हम जानते हैं कि कुछ बच्चों को गणित पसन्द होता है कुछ बच्चे भाषा पसन्द करते हैं तो कुछ बच्चों को कोई दूसरा विषय भी पसन्द हो सकता है। इसके पीछे उनके कुछ विचार हैं, या तो इन विषयों के शिक्षक उनके साथ बहुत बेहतर तरीक़े से बात करते हैं, या जो संसाधन इस्तेमाल किया जाता है या जो उदाहरण दिया जाता है, उसमें वो जुड़ाव महसूस करता है। इसका मतलब है कि एक शिक्षक के नाते हमको यह ध्यान रखना होगा कि हर बच्चे को उसकी रुचि के हिसाब से कैसे पढ़ाया जाए। दूसरी बात यह कि एक शिक्षक के लिए ये बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी और चुनौती भी है क्योंकि आपकी

चित्र : के आर शर्मा

कक्षा में 30 बच्चे हैं और उन तीस बच्चों को आप पढ़ाना चाह रहे हैं, इन सभी को एक ही तरह की योजना या संसाधनों के साथ पढ़ाना मुश्किल है। जो सीखते हैं वो सीख जाएँगे लेकिन जिनके साथ कुछ दिक़्क़तें हैं या कुछ कारणवश जो समझ नहीं पाते हैं या कुछ संसाधन हैं जिनमें उनको रुचि नहीं आती है, तब इस परिस्थिति में क्या काम किया जाए और कैसे। तीसरी चीज़ है, समझ। बच्चे के जुड़ाव के लिए बहुत सारे काम होते हैं, संसाधन भी कक्षा में हैं, टीएलएम भी कक्षा में भरपूर है, बच्चे को कक्षा में बोलने का मौक़ा भी दिया जाता है उसके बावजूद बच्चे नहीं सीख पाते हैं। मैं कक्षा पहली का शिक्षक हूँ। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि कम-से-कम इतना तो सिखा दूँ कि बच्चा कक्षा दो में चला जाए। लेकिन गणित में एक दिक़्क़त है कि अगर पहली कक्षा में बच्चों ने कक्षा पहली की अवधारणाएँ ठीक से नहीं पढ़ी होंगी, तो कक्षा दूसरी में जाने के बाद उतनी ही समस्याएँ उत्पन्न होंगी। उसी तरह से वह जितना आगे जाएगा उतनी ही दिक़्क़त होगी। इसीलिए हमारी शिक्षा नीति में दिया गया है कि यह लक्ष्य लेकर काम करना है कि बच्चे को बुनियादी भाषा और गणित सिखाना बहुत ज़रूरी है। यह क्यों ज़रूरी है इसपर मैं दो-तीन बात कहना चाहूँगा। एक तो गणितीय कारण है कि बच्चे ने कक्षा एक या दो में जो दक्षताएँ हैं उनको ठीक से नहीं समझा होगा तो आगे की कक्षा में उसको बहुत सारी दिक़्क़तें होंगी। वह पढ़ नहीं पाएगा। बहुत सरल भाषा में बोलें तो बच्चा बहुत संघर्ष करेगा, थक जाएगा। हम उनको कहेंगे कि आप नहीं कर पाते हो। कितना भी काम करें जब तक उस समस्या को नहीं सुलझाएँगे, बच्चे भी परेशान रहेंगे और शिक्षक भी। दूसरी बात यह है कि जब बच्चे और शिक्षक परेशान रहेंगे तो बच्चे का स्कूल छोड़ देना बढ़ जाएगा। तीसरी बात, अकसर जब हम पूछते हैं कि गणित का इस्तेमाल कहाँ होता है, उपयोग कहाँ करते हैं तो अधिकांश का जवाब होता है कि हिसाब-किताब में करते हैं, दुकान में जाते हैं तब और भी बहुत सारे उपयोग होते हैं। माने ख़ासतौर पर यह बात संख्या और आधारभूत संक्रिया के इर्दगिर्द होती है। कक्षा एक, दो, तीन के अन्दर जितनी भी दक्षताएँ हैं इसके इर्दगिर्द ही हैं, चाहे वह संख्या को लेकर हों, जोड़, घटाव, गुणा, भाग को लेकर हों। अतः यह कैसे बेहतर तरीक़े से बच्चे के साथ किया जाए ताकि वो उसको समझ पाए, यहाँ गणित का उदाहरण देता हूँ। कभी-कभी पढ़ाते हुए गुणा करते हैं, जैसे– 215 को 35 से गुणा करना। यहाँ इकाई के 5 को पहले गुणा करते हैं, तीन अंकों के साथ, जब दहाई के साथ गुणा करते हैं तो बच्चे को कहते हैं कि एक घर छोड़कर गुणा करो या एक घर को क्रॉस करो। वहाँ उसको समझाते नहीं हैं कि हमने क्यों एक अंक छोड़ा है, दहाई के एक अंक के साथ गुणा करते हैं तो दहाई में लिखना क्यों शुरू करते हैं। उस संकल्पना को जब तक स्पष्ट नहीं करेंगे तो बच्चा इसी तरह की ग़लती करेगा। हमें इन सब चीज़ों पर ध्यान देना है।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

प्राथमिक स्तर पर बच्चे अवधारणा के बावजूद भूल जाते हैं। यहाँ अभ्यास और अवधारणा, दोनों की समझ एक साथ चाहिए। जैसे संसाधन की बात करते हैं कि हमारे पास विभिन्न प्रकार के संसाधन होने चाहिए, कोई गतिविधि होनी चाहिए, गाना, होना चाहिए, कहानी होनी चाहिए। कहानी से भी गणित शुरू कर सकते हैं। अलग-अलग बच्चे की रुचि को ध्यान में रखकर हम अलग-अलग तरीक़े से काम कर सकते हैं। यह भी कि हमारे ज़्यादातर संसाधन दिखाने के लिए होते हैं बच्चे

ख़ुद उसको करके सीखें, ऐसे मौक़े बहुत कम रहते हैं।

हृदयकान्त दीवान : मुझे आपकी तीन-चार बातें महत्त्वपूर्ण लगीं उन्हें रेखांकित करना चाहूँगा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात ये है कि गणित सीखने में, चाहे भाषा सीखने में, बुनियाद बनाना सबसे ज़्यादा ज़रूरी है। इस बात को कई तरीक़ों से कहते हैं, लेकिन जब तक बुनियाद नहीं बनेगी तब तक बच्चा आगे का नहीं सीख सकता। उसी सन्दर्भ में आपने एक और बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही कि हम अकसर बच्चों को सवाल हल करने के नियम बता देते हैं। न तो उनसे यह आग्रह करते हैं कि वो ख़ुद तर्क बताएँ या उसको समझें, और न ही आग्रह करते हैं कि सवाल बनाने की कोशिश करें।

दूसरी बात योजना या कक्षा से सम्बन्धित है कि कई स्तर के बच्चे कक्षा में होंगे। बच्चे कक्षा में एक दूसरे से सीख सकते हैं और इस वजह से आप कक्षा में इस तरह की बहुत सारी परिस्थिति बना सकते हैं कि एक दूसरे से सीखने का मौक़ा मिले। पर ऐसे भी अनियमित समूह बनेंगे जिनमें कुछ बच्चे अलग-अलग चीज़ों को करने में सक्षम होंगे। उन समूहों में काम करते-करते बच्चे सीख जाएँगे। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि यह एहसास शिक्षक को होना चाहिए कि कौन-कौन सी चीज़ें बच्चे अब ज़्यादा सक्षमता से पकड़ पाए हैं और कौन-सी चीज़ों पर अब और ज़्यादा गहरे अभ्यास की ज़रूरत है। एक और महत्त्वपूर्ण बात आपने कही कि अकसर हम ये कोशिश करते हैं कि बच्चों को हम कुछ प्रदर्शन करके दिखा दें, कुछ समझा दें, वो इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे ख़ुद उसको करके देखें, स्वयं समझें और अपने शब्दों में रखें या अपने ढंग से सवाल करें।

> गणित सीखने में, चाहे भाषा सीखने में, बुनियाद बनाना सबसे ज़्यादा ज़रूरी है। इसको लोग कई तरीक़ों से कहते हैं, लेकिन जब तक बुनियाद नहीं बनेगी तब तक बच्चा आगे का नहीं सीख सकता। उसी सन्दर्भ में आपने एक और बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही कि हम अकसर बच्चों को सवाल हल करने के नियम बता देते हैं। न तो उनसे यह आग्रह करते हैं कि वो ख़ुद तर्क बताएँ या उसको समझें, और न ही आग्रह करते हैं कि सवाल बनाने की कोशिश करें।

अब मैं अशोक से आग्रह करूँगा कि वो अपनी बात रखें।

अशोक : बुनियादी संख्यात्मक समझ और बुनियादी साक्षरता एक महत्त्वपूर्ण विषय है ही। अलग-अलग जगहों और नीति में इसपर बात आ रही है। ये बुनियाद है, आगे बच्चा ख़ुद सीख सकता है अगर ये समझ या स्तर वो हासिल कर लेता है तो। मैं अपनी बात को दो चीज़ों पर रखने की कोशिश करूँगा कि बुनियादी संख्यात्मकता को लेकर हमारी दिक़्क़तें या रुकावटें क्या हैं? ये केन्द्र में भी है, सभी नीति के स्तर पर भी इसपर बात कर रहे हैं लेकिन फिर भी इसकी रुकावटें कहाँ पर हैं, क्या-क्या दिक़्क़तें हैं।

मेरे ही उदाहरणों से कहूँ तो रुकावट के तौर पर मुझे लगता है कि कक्षा की प्रक्रिया और गणित पढ़ाने का उद्‌देश्य इनमें बहुत बड़ा बेमेल और अन्तर लगता है। जैसे कि अभी शिक्षिका ने उदाहरण दिया था कंचों को लेकर कक्षा में काम करने का। कक्षा एक और दो के बच्चों को गिनने के लिए कंचे दिए। जब एक सीध में उनको रखा तो बच्चे उसको आसानी से गिन पा रहे थे, लेकिन जैसे ही उन कंचों को मिला दिया और फिर गिनने के लिए कहा तो बच्चे यह तय नहीं कर पा रहे थे कि हमने शुरू कहाँ से किया और ख़त्म कहाँ। यह महत्त्वपूर्ण है।

इस तरह की रुकावटें या चुनौती आ रही है, वो लगता है कि प्रशिक्षण के जो कार्यक्रम बनाते हैं या प्रशिक्षण होते हैं वो काफ़ी नहीं हैं और उनमें गणित सीखन-सिखाने से सम्बन्धित वास्तविक विचार शामिल नहीं हो पाता। अगर मैं कहूँ कि मैं एक शिक्षक हूँ और मुझे शिक्षा

के तहत बच्चों के साथ कुछ काम करने हैं, तो बुनियादी साक्षरता को बच्चों द्वारा हासिल करने के लिए या हर बच्चा बुनियादी साक्षरता को समझ पाए तो मुझे चुनौतियों को पहचान कर काम करना होगा। जैसे कि इबारती सवाल में क्या करना है, बच्चे यह तय नहीं कर पाते हैं। शिक्षक समाधान के तौर पर बात करते हैं कि हम अगर कक्षा में बच्चों के साथ ऐसी बातचीत करते हैं कि इस प्रश्न में क्या दिया गया है, क्या करना है और कैसे करेंगे? अगर इस तरह के खाँचे बनाकर बातचीत करते हैं तो बच्चों को इबारती सवाल के अर्थ समझने, अर्थ बनाने और यह तय करने में, कि कौन-सी संक्रिया करनी है, मदद मिलती है।

बच्चों के साथ बातचीत करना सिर्फ़ इबारती सवालों तक ही सीमित नहीं है, पूरी गणित की कक्षा में इसे देखा जा सकता है। मुझे लगता है कि एक कक्षा में गणित की सार्थक बातचीत करना बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह लग रही है कि अगर गणित पढ़ाते-पढ़ाते साथ में निरूपण के काम किए जाते हैं, उपयुक्त निरूपण किए जाते हैं तो ये निरूपण बच्चों को उस गणितीय अवधारणा के मूर्त रूप को समझने को लेकर बहुत ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। तीसरी चीज़ ये साथ में करने से बहुत मददगार होता है। अगर हम साथ में पैटर्न पर काम कर रहे हैं, जैसे– 22, 27, 32, 37 और जब बच्चों के साथ पैटर्न पर काम करते हुए उनसे पूछते हैं कि अच्छा ये बताओ कि अगली संख्या कौन-सी होगी, ये बढ़ कैसे रहा है और इसके पीछे नियम क्या है। या मैं 15 में 25 जोड़ूँ या 25 में 15 जोड़ूँ तो क्या ये एक ही बात है। ढेर सारे अनुभवों के बीच में ये वाला मुझे सबसे महत्त्वपूर्ण लगता है, जहाँ पर शिक्षक कुछ सामान्यीकरण के काम कर रहे होते हैं और सामान्यीकरण केवल पैटर्न में ही नहीं है, यह संख्याओं में भी है, बीजगणित में तो है ही। अगर सामान्यीकरण के काम करवाए जाते हैं तो संख्यात्मकता के लक्ष्यों को हासिल करने में मदद मिलती है। कई सारे शिक्षक कहते हैं कि परिवेश का सन्दर्भ देना बहुत मददगार होता है। उदाहरण के लिए, उत्तराखंड के परिवेश में काफल है। काफल एक फल होता है और उस फल को कई बार बच्चे जंगल से लाकर बेचते हैं। अब जैसे वो काफल बेच रहे हैं और काफल का ही प्रोजेक्ट है कि आपने काफल बेचे हैं। काफल को लेकर जब बातचीत की जाती है कि कैसे बिके, क्या समस्याएँ आईं, कितने किलो थे और कितने भाव से बेचे। इस तरह से अलग-अलग प्रोजेक्ट दिए जाते हैं तो ये प्रोजेक्ट समस्या समाधान में मददगार होते हैं। अगर इस दृष्टि के साथ देते हैं तो काफ़ी मददगार होते हैं।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

हृदयकान्त दीवान: धन्यवाद अशोक। मैं आपकी बात को संक्षेप में करने की कोशिश नहीं करूँगा क्योंकि आपकी बातें बहुत ही विशिष्ट और अच्छी थीं, पर दो-तीन चीज़ें मैं रेखांकित करना चाहता हूँ। एक तो जो आपने बात कही सामान्यीकरण, बातचीत और एक प्रोजेक्ट के रूप में बच्चों को कुछ काम देना, जिसमें वो कुछ चीज़ करके लाएँ और उसपर चर्चा करें। और आपने कहा कि आप कुछ कथन दें और उस कथन के बारे में बच्चे जाँच करें कि वो सही है या ग़लत, और क्यों सही या ग़लत है। बच्चे भी ऐसे कथन बनाएँ जिसमें उनको भी सामान्यीकरण करने और उसकी जाँच का मौक़ा मिले। इसका अभ्यास करवाना और बच्चों को उसकी अभिव्यक्ति के मौक़े देना बहुत महत्त्वपूर्ण

है। धैर्य रखकर बच्चों के साथ बातचीत करना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

अब मैं पल्लवी से आग्रह करूँगा कि अपनी बात रखें।

पल्लवी : अभी मेरे दिमाग़ में संख्यात्मक समझ और साक्षरता को लेकर जो संवाद चल रहा है वो आपके सामने रखना चाहूँगी। इससे उन बड़े प्रश्नों के बारे में सोचने में शायद थोड़ी मदद मिलेगी जो इस बात पर ज़ोर देने से सम्बन्धित हैं कि आख़िर हम शुरुआती साक्षरता और शुरुआती संख्यात्मक समझ के विकास के बारे में आज के समय में इतनी संजीदा तरीक़े से क्यों सोच रहे हैं। दूसरा, हम समझ के विकास पर ज़ोर क्यों दे रहे हैं? हम एक तरह से समझते हैं कि संख्यात्मक समझ और साक्षरता के बाद ही बच्चे पढ़ना-लिखना समझते हैं। मौलिक रूप से बोलना क्या होता है और हम क्यों कहते हैं कि अगर वो आ जाएगा तो पढ़ना-लिखना भी आ जाएगा। ऐसा ही कुछ दिमाग़ में चल रहा था कि एक तरह से वो भी एक टूल है जो हमारे जीवन को आसान बनाता है। हमारे हाथ भी एक टूल हैं, हमारी भाषा भी एक टूल है जिसकी मदद से हम बहुत सारे काम आसानी से कर पाते हैं, जैसे— अच्छी भाषा, अच्छे तर्क या अपनी बात को ठीक ढंग से, संक्षेप में रखने से शायद हमें बहुत बोलने की ज़रूरत नहीं पड़ती है। लोग हमारी बात को सीधे ही ग्रहण कर पाते हैं। ये एक टूल को गहरा या पैना करने वाला मामला है। गणित और भाषा में कौशल को लेकर बहुत सारी समानताएँ भी हैं। अगर आप देखें तो हम भाषा में भी बहुत सारा अनुमान लगाते हैं। सीखने के दौरान, पढ़ने के दौरान और गणित पढ़ने के दौरान भी अनुमान लगाना पड़ता है। हम कल्पना करते हैं और प्रतीकों से भी समझने का उपक्रम करते हैं। प्रतीकों से समझने की कोशिश करना, मतलब हम एक तरह के अमूर्त में जाते हैं। जो चीज़ हमारे सामने नहीं है मगर हमारे दिमाग़ में है उससे कुछ चीज़ों को जोड़कर उसके आधार पर अपने दिमाग़ में कुछ बुनते, निष्कर्ष बनाते, कुछ मूल्यांकन करते हैं। हम ये गणित और भाषा, दोनों में करते हैं। तो ये दो सवाल जो शिक्षक को भी बहुत परेशान करते हैं कि सब बच्चे तो पढ़ना-लिखना और गणित सीख नहीं पा रहे हैं इसपर इतना ज़ोर क्यों? और दूसरा ये कि हम हमेशा समझ की बात ही क्यों करते रहते हैं क्योंकि जब एक शिक्षक समझ के विकास पर काम करता है तो उसके लिए बहुत सीधे, बहुत आसान रास्ते नहीं रहते हैं। उसको तैयारी करनी पड़ती है, उसको कक्षा में बहुत सारे अवसर बनाने पड़ते हैं। तभी जाकर हम ये जो गणित में टूल हैं गणितीयकरण के और ज़रूरत के अनुसार भाषा को किन्हीं अलग-अलग उद्देश्यों को पाने के लिए रूप में लाना और लिखने-पढ़ने को भी उसी तरह उपयोग में लाना, ये सब तभी हो पाता है जब हम उसके लिए अवसर प्रदान करते हैं। अमूर्त को समझने की क्षमता सबमें होती है लेकिन उन सबके लिए अवसर देने पड़ते हैं।

> गणित और भाषा में कौशल को लेकर बहुत सारी समानताएँ भी हैं। अगर आप देखें तो हम भाषा में भी बहुत सारा अनुमान लगाते हैं। सीखने के दौरान, पढ़ने के दौरान और गणित पढ़ने के दौरान भी अनुमान लगाना पड़ता है। हम कल्पना करते हैं और प्रतीकों से भी समझने का उपक्रम करते हैं। प्रतीकों से समझने की कोशिश करना, मतलब हम एक तरह के अमूर्त में जाते हैं।

अब समझ पर इतना ज़ोर क्यों? और ये नई-नई चीज़ें कहाँ से आ रही हैं कि बच्चा कल्पना कर पाता है या नहीं, अनुमान लगा पाता है या नहीं, तर्क कर पाता है, संक्षिप्त में प्रस्तुत कर पाता है, विश्लेषण कर पाता है, या नहीं, वग़ैरह-वग़ैरह। अगर हम इसको थोड़े बड़े परिप्रेक्ष्य में देखें तो हमको समझ में आता है कि वो कैसे बहुत ज़रूरी है। जीवन की जटिलता सबके लिए बढ़ रही है क्योंकि अब हमारा जीवन

सिर्फ़ एक गाँव या मोहल्ले तक सीमित नहीं रह गया है। बहुत सारी चीज़ें हो रही हैं और वो सिर्फ़ तकनीकी की वजह से ही नहीं हो रही हैं, वो जटिलता इसलिए भी आ रही है क्योंकि बहुत सारे लोग मिलकर एक साथ होकर बड़े काम कर रहे हैं, पूरे विश्व के लिए कर रहे हैं, मानव जाति के लिए करने की कोशिश कर रहे हैं, और ऐसे में हमें बहुत बड़े फ़लक पर चीज़ों को रखकर देखना पड़ता है। अगर हम वो नहीं करेंगे तो उसके लिए ज़िन्दगी को आसान और सुन्दर बनाने के जो उद्देश्य हैं, वो सब हम हासिल नहीं कर पाएँगे। हमें बड़े फ़लक पर रखकर देखना ही पड़ेगा। जब हम बड़े फ़लक पर रखते हैं तो हम देखते हैं जीवन की इस जटिलता में अगर हमारे बच्चे चार तरह की जानकारी को मिलाकर किसी निष्कर्ष को निकाल नहीं पाएँगे, वो जो पढ़ रहे हैं उसका मतलब क्या दिखाई दे रहा है और क्या वास्तव में व्यक्त किया गया है, मतलब निहितार्थ क्या है, सुझाया अर्थ क्या है, ये सब अगर वो नहीं समझ पाएँगे तो शायद वही होगा कि जो भी सामने आता है उसी को सच मानकर उसी में बहे जा रहे हैं। अगर हमें ऐसे लोग नहीं चाहिए तो हमें उनके अन्दर कुछ क़ाबिलियत भी पैदा करने के अवसर देने होंगे। मतलब आपको उनके अन्दर सब तरह के नज़रियों के बारे में सोचना पड़ेगा। आपको सब तरह की जानकारी को मिलाकर देखना होगा और उसके आधार पर यह तय करना होगा कि किसकी बात सही है, कौन सही तर्क दे रहा है, किसके प्रयास ज़्यादा निष्कपट नज़र आ रहे हैं और किसके नक़ली हैं।

चित्र : पुरुषोत्तम सिंह ठाकुर

और हम ये सब नहीं समझेंगे तो न सिर्फ़ प्रजातंत्र, बल्कि हमारे स्वंय के आगे का और आने वाले बच्चों का जीवन भी बहुत अच्छा तो नहीं बीत सकेगा। उसमें बहुत तरह के बेकार के संघर्ष होंगे, जो न तो हम अपने जीवन में चाहते हैं, न ही हम अपने बच्चों और उनके बच्चों के जीवन में चाहते हैं। अगर हम इसे बड़े फ़लक पर रखकर देखें तो हमें समझ में आता है कि हम संख्यात्मक समझ, साक्षरता पर बहुत ज़ोर दे रहे हैं, क्यों हम शिक्षा के सार्वभौमिकरण पर ज़ोर दे रहे हैं क्योंकि ये एक तरह की वंचना है। मतलब अगर किसी को बोलना नहीं आता है तो हम भले ही उसके प्रति कितनी भी सहानुभूति रखें, न बोल पाना एक नुक़सान तो है न। उस टूल से या उस बोलने से वो जितना कुछ कर पाता उससे वो वंचित रह गया। जिसको लिखना-पढ़ना नहीं आता है वो भी एक वंचना है। तो उसमें भी वो बहुत सारी चीज़ों से वंचित रह गया जो वह पढ़ने-लिखने से न सिर्फ़ ज्ञान, बल्कि उस ज्ञान की मदद से अपनी दुनिया में और समझ बनाना, अपने जीवन के बारे में, जीवन की उलझनों के बारे में, मुश्किलों के बारे में क़दम उठा सकता था, उससे वंचित रह गया। और पढ़ना-लिखना भी अब अगर एक सतही तरीक़े से आ गया तो वो समझ विकसित करने में वंचित रह गया जैसे हम बहुत सारे पढ़े-लिखे लोगों को आज देख रहे हैं। क्यों हमको उस समझ पर ज़ोर देना ज़रूरी है, जीवन को जीने और आगे की पढ़ाई को जारी रखने के लिए, बच्चों को स्वतंत्र शिक्षार्थी बनाना क्यों ज़रूरी है ताकि वो उसे ही सच न मानें जो हम उन्हें बताते हैं बल्कि वो ख़ुद भी सच की खोज कर सकें। एक तरफ़ हम देखते हैं कि जीवन को जीने के टूल के रूप में और दूसरा देखते हैं कि जीवन की जटिलताएँ जो बढ़ रही हैं, उनका सामना करने के लिए कैसे ये दोनों चीज़ें मददगार हैं। बस मुझे इतना ही कहना है। धन्यवाद।

हृदयकान्त दीवान : धन्यवाद पल्लवी। आपने तो कई ऐसी बातें कहीं जो लोगों ने पूछी भी थीं, उनका जवाब भी शायद मिल गया होगा। मैं सिर्फ़ दो चीज़ आपकी बात से दोबारा रखना चाहता हूँ। पहली बात जो बहुत महत्त्वपूर्ण आपने कही कि शिक्षा का लक्ष्य क्या है इसे हमें समझना पड़ेगा और ये बात कि जो हम सीखते हैं, जैसे कि भाषा एक तरह से हमारे हाथ के समान है, हमारे एक औज़ार के समान है। जैसे हम हाथ को पैना कर सकते हैं, हाथ की क्षमता को बढ़ा सकते हैं, उसी तरह से हम गणित में, भाषा में और अन्य विषयों में अपनी क्षमताओं को बढ़ा सकते हैं जिससे हम उनका बेहतर इस्तेमाल कर सकें। दूसरी बात आपने कही कि शिक्षा एक ऐसी चीज़ है जो समाज की वर्तमान स्थिति और दशा, दोनों के सन्दर्भ में समझी जानी चाहिए और आज के समय में जो लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ है जिनमें हम जी रहे हैं उस अवस्था में ये जो भी परिस्थितियाँ बन रही हैं उनमें ज़रूरी है कि हर बच्चा बड़ा होकर अपने आसपास के बारे में सोच पाए, समझ पाए और ये भी जान पाए कि जो उसके पास ज्ञान आ रहा है उसको जाँचने का तरीक़ा क्या होगा। ये बहुत महत्त्वपूर्ण है और इसलिए ही हम बुनियादी क्षमताओं पर ज़ोर दे रहे हैं क्योंकि ये एक लोकतांत्रिक समाज का अनिवार्य हिस्सा हैं और ये क्षमताएँ हासिल करने का मतलब है कि आप स्वतंत्र सीखने वाला और स्वतंत्र समझने वाला बन पाएँ जिससे कि जो भी आपके पास घट रहा है उसका आप विश्लेषण कर पाएँ।

> शिक्षा का लक्ष्य क्या है इसे हमें समझना पड़ेगा और ये बात कि जो हम सीखते हैं, जैसे कि भाषा एक तरह से हमारे हाथ के समान है, हमारे एक औज़ार के समान है। जैसे हम हाथ को पैना कर सकते हैं, हाथ की क्षमता को बढ़ा सकते हैं, उसी तरह से हम गणित में, भाषा में और अन्य विषयों में अपनी क्षमताओं को बढ़ा सकते हैं जिससे हम उनका बेहतर इस्तेमाल कर सकें।

मैं चाहता हूँ कि जो भी व्यक्ति पैनल में थे उनमें से कुछ यदि 1 मिनट के लिए कुछ कहना चाहते हैं तो कह सकते हैं। कुछ सवाल भी हैं। एक तो ये सवाल है कि बच्चे गणित से घबरा क्यों जाते हैं। बच्चे उत्तर बता भी देते हैं, लिख नहीं पाते हैं, ग़लती क्यों करते हैं और कॉपी-किताब वग़ैरह से घबरा जाते हैं। अगर इसके बारे में कोई कुछ बहुत संक्षेप में कहना चाहता है तो बताइए। जगदंबाजी आप बताना चाहते हैं, बताइए।

जगदंबा प्रसाद : मैं यह समझ सकता हूँ कि अलग-अलग दक्षताओं में बच्चे कुशल होते हैं। ख़ासतौर पर लिखते समय, पेन-पेंसिल का उपयोग करते समय वो ख़ुद को व्यक्त नहीं कर पाते तो शायद लिखने की उनकी तकनीक कमज़ोर होती है, उसको बढ़ाने के लिए हमको कई सारे प्रयास एक शिक्षक के तौर पर करने पड़ेंगे। जैसा कि हमारे कई सारे साथियों ने बता दिया है, मैंने भी यही सोचा है कि वो समझ तो लेते हैं लेकिन लिखित रूप में व्यक्त नहीं कर पाते हैं। बाक़ी शायद वो गतिविधियों में बहुत अच्छे होते हैं, बोलने में बहुत अच्छे होते हैं, सब चीज़ों में वो अच्छे होते हैं लेकिन लिखने में शायद वो कमज़ोर होते हैं।

संगीता : शिक्षण को लेकर कई सारी बातें की गईं। हम लोगों का जो सरकारी तौर पर प्रशिक्षण रहता है उसमें बहुत सारी ख़ामियाँ रहती हैं क्योंकि हम लोग जो सीखते हैं वो एक तरह से मौखिक ही रहता है। हम लोग जो बच्चों को सिखाते हैं उसे मूर्त रूप में सिखाना चाहिए, जिस तरह से हमें अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में सीखने को मिलता है। सरकार को भी उस तरह से कुछ व्यवस्थाएँ करनी चाहिए। और यह सिर्फ़ खानापूर्ति न हो।

हृदयकान्त दीवान : मैं दो-तीन चीज़ें कह दूँ। पहली बात लिखने के बारे में बात कही गई है जैसा जगदंबा प्रसादजी ने भी कहा कि ये आत्मविश्वास का प्रश्न है या उन औज़ारों को पैना करने का प्रश्न है। अगर बच्चे के लिए वो

सार्थक है, जैसा आप में से बहुत सारे लोगों ने कहा और उसको लगता है कि ये जो चीज़ है वो करना मेरे लिए सार्थक है। लिखने को या अभिव्यक्ति को कभी भी हम ऐसी क्षमता के रूप में बच्चे के सामने नहीं रखते जिससे उसको लगे कि इसके कुछ और लोगों के लिए मायने हैं। दूसरा मसला इसमें है कि लिखना एक तरह से ठोस चीज़ों के साथ से दूर हटकर एक अमूर्त स्तर पर और आगे जाना है। ये भी देखना पड़ेगा कि आप किस समय लिखना शुरू कराएँगे। अर्धेंदु और अशोक दोनों ने कहा कि ये पहचान होनी चाहिए कि किस समय बच्चा क्या कर सकता है। बहुत सारे उदाहरण भी लोगों ने दिए कि कितने सारे ऐसे खेल हम कर सकते हैं जिनमें बच्चे को वो सब गणितीय क्षमताओं में अभ्यास करने का मौक़ा मिले जो उसके सन्दर्भ में उसके लिए सार्थक हैं और जिनसे वो जुड़ सकता है और एक बार उसको वो समझ बने, उसके लिए उसका मक़सद बने, अर्थ बने और एक प्रोजेक्ट रूप में उनके साथ जुड़ पाए। उसके बाद अगर हम उसपर लिखने का कार्य करें तो बेहतर निष्कर्ष हमें मिल सकते हैं।

चित्र : के आर शर्मा

जैसा कि सब लोगों ने कहा है कि हमारे ऊपर अभी बहुत बड़ा दबाव इस बात का भी है कि कोरोना में ये साल लगभग चला गया है। बच्चे जब शुरू में आएँगे, तब जहाँ हमने छोड़ा था उससे बहुत पीछे होंगे। आपको स्कूल खुलते समय यह भी सोचना पड़ेगा कि कहाँ से शुरू करें। क्या हमें जल्दबाज़ी करके वो जो अन्तर है उसको भुलाकर आगे बढ़ना है या जैसा कई लोगों ने कहा है कि हमें चिन्ता करने की ज़रूरत है कि जहाँ से बच्चे पीछे चले गए हैं वहाँ से हम दोबारा शुरू करें, जिससे उनका आत्मविश्वास वापस आए। बहुत छोटे बच्चों के लिए तो जो स्कूल आने की नियमितता है, जो बैठकर सुनने का धैर्य है वो दोबारा से विकसित करना होगा।

सरकारी स्कूल के बच्चे तो इस दौरान शिक्षा से बिलकुल ही विलग रहे हैं, कैसे हम पूरी परिस्थिति में वापस उनको जोड़ पाएँगे और उनमें वो बुनियादी क्षमताएँ विकसित कर पाएँगे जो कि ज़रूरी हैं। मुझे लगता है कि पल्लवी ने हमारा ध्यान इस बात की ओर दिलाया है कि क्यों ज़रूरी है कि हम बच्चे की बुनियादी क्षमताओं को एक तरह से उसके जीने का अभिन्न हिस्सा और उतना ही उपयोगी हथियार मानें जितना कि हम उसके हाथ-पैर को समझते हैं और गणित हो, चाहे भाषा हो वो पूरे आसपास से, पर्यावरण, पर्यावरण अध्ययन, विज्ञान, सभी से जुड़ी हैं क्योंकि वो पूरे जीवन से ही जुड़ी हैं। इसलिए मुझे लगता है कि हमें इसके बारे में सोचने की ज़रूरत है।

अब हम लोग बातचीत को यहाँ ख़त्म करेंगे। इस संवाद में हिस्सा लेने और विचार रखने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद आप सबका। मुझे लगता है कि हम सबने एक दूसरे से बहुत कुछ सीखा एवं फिर कभी और मौक़ा मिलेगा तो कुछ हिस्सों पर और गहराई से हम बात कर पाएँगे। शुक्रिया।

पाठकों के विचार

मीनू पालीवाल के लेख 'लेखन ग़लतियाँ और उनका विश्लेषण' में बच्चों में लेखन सम्बन्धी जो समस्याएँ रहती हैं उनपर बहुत बारीक़ी से समझ बनाने की कोशिश की गई है। चूँकि लेखन कार्य का बच्चों की परिवेशीय भाषा के साथ जुड़ाव होता है, इसे भी समझने की आवश्यकता है। बच्चों को परस्पर आकलन का भी अवसर दिया जाना चाहिए जिससे वे आपस में मिलकर ग़लतियों को ठीक कर सकें।

लेख में बच्चों द्वारा लेखन में की जा रही ग़लतियों पर फ़ोकस किया गया है, लेकिन इन ग़लतियों के पीछे रहे महत्त्वपूर्ण कारकों पर शिक्षक समूह के साथ चर्चा कर समझने या ये स्वयं इनपर कैसे कार्य करते हैं? इनका लेखन में ग़लतियों पर क्या दृष्टिकोण रखते हैं? और इनपर कार्य कैसे हो सकता है? पर विचार-विमर्श की आवश्यकता लग रही है।

यह आलेख और भी उपयोगी होता जब बच्चों की इन लेखन सम्बन्धी त्रुटियों के सुधार के सरल तरीक़ों को भी शामिल किया जाता। बच्चों के साथ सीखने-सिखाने का काम कर रहे व्यक्तियों को लेखने प्रक्रिया की ख़ामियों को समझने और इस प्रकार प्रक्रिया को बेहतर करने में मदद मिलती है।

– मुकेश चंद शर्मा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, दमोह, म.प्र.

इस बात से सहमति है कि बच्चे आरम्भिक कक्षाओं में लिखने-पढ़ने की मूलभूत दक्षताओं से ही जूझ रहे हैं। इसके कई सारे कारण हैं। महत्त्वपूर्ण यह कि स्कूल में ही पढ़ने-लिखने को किस तरह से देखा जाता है।

लेखन एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है। इसके लिए ज़रूरी है कि बच्चों को लिखने-पढ़ने के प्रचुर मात्रा में अवसर मिलें। यह अवसर किताबों के अलावा भी सायास देना चाहिए। साथ ही लेखन के दौरान होने वाली ग़लतियों को थोड़ा नज़रअन्दाज़ करें। अन्यथा ज़्यादा शुद्धता का आग्रह बच्चों की लेखन में रुचि विकसित नहीं होने देता और वह इससे दूर होने लगते हैं।

– प्रेरणा मालवीय, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल, म.प्र.

'पैकिंग कवर (रैपर) और पढ़ना-लिखना' लेख में लेखिका श्रीदेवी ने बच्चों के साथ होने वाले आपसी संवाद को काफ़ी महत्त्व दिया है और रैपर को एक संसाधन के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है जो कि काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि बच्चे अपने आसपास रैपर के रूप में लिखित सामग्री से अनायास ही परिचित होते रहते हैं, अतः इसपर बच्चों से बातचीत करना पठन कौशल के लिए एक महत्त्वपूर्ण गतिविधि हो सकती है। लेखिका ने पढ़ना सीखने के परम्परागत तरीक़ों से इतर तरीक़ों पर बेहद प्रभावशाली ढंग से अपना नज़रिया रखा है। छह-सात रैपर पर किए गए

कार्य को विस्तार से लिखा जाता तो इस सम्बन्धित गतिविधियों को कक्षा में कराने के सन्दर्भ में और भी मदद मिलती।

– विमल मिश्रा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, रेहली, सागर, म.प्र.

बच्चे अपने साथ बहुत कुछ लेकर स्कूल आते हैं– अपनी भाषा, अपने अनुभव और दुनिया को देखने का अपना नज़रिया, आदि। बच्चे घर, परिवार एवं परिवेश से जिन अनुभवों को लेकर स्कूल आते हैं, वे बहुत समृद्ध होते हैं। उनकी इस भाषाई पूँजी का इस्तेमाल भाषा सीखने-सिखाने के लिए किया जाना चाहिए। लेख में ये बात स्पष्ट रूप से लिखी गई है कि बच्चों के सीखने में उनके परिचित सन्दर्भों की बहुत अहम भूमिका होती है। रैपर के माध्यम से शिक्षिका द्वारा कराई गई गतिविधियाँ अनेक भाषाई कौशलों के विकास की ओर बच्चों को ले जा रही होती हैं। जैसे– सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना, आदि। बच्चों के परिवेश से उनको जोड़ें तो कैसे वे अपने विचारों को व्यक्त करते हैं, वस्तुओं (रैपर) का विश्लेषण करते हैं, वर्गीकरण करते हुए अपने अनुभवों को साझा करते हैं, कुछ बातों पर तर्क भी देते हैं एवं अवलोकन करते हैं। ये कुछ पर्यावरण अध्ययन के कौशल भी हैं, जिनका साथ-ही-साथ विकास हो रहा है, ये भी ध्यान देने वाली बात है।

साथ ही शिक्षिका कक्षा में प्रिंट रिच वातावरण का निर्माण भी बच्चों द्वारा बनाई गई चीज़ों से करती दिखीं। इससे बच्चे सन्दर्भात्मक संकेत (जैसे– चित्र, स्थान, वस्तुएँ, रंग या आरेख) का उपयोग करके अपने परिवेश में मौजूद लिखित सामग्री का अर्थ समझना सीख लेते हैं, वे 'वास्तविक' पठन की ओर ज़्यादा आसानी से बढ़ सकते हैं। इस प्रदर्शन से अधिगम को बल मिल सकता है साथ ही अपने कार्य पर गर्व महसूस करने का अवसर मिलता है। बच्चे के स्वयं के लेखन को प्रदर्शित करने से उन्हें प्रेरणा भी मिलती है।

यदि वो रैपर पर लिखे दाम, तारीख़, वज़न, आदि को भी शामिल करतीं तो गणित के कुछ कौशलों पर भी काम किया जा सकता था। इस पूरी प्रक्रिया के दौरान उनके अनुभवों से काफ़ी कुछ सीखने, समझने को मिला। बच्चों के जीवन से जुड़ी वस्तुओं को अगर केन्द्र में रखा जाए और फिर बातचीत के माध्यम से बढ़ा जाए तो पढ़ना और लिखना सीखना आसान हो जाता है। ख़ासतौर से वो बच्चे जो पाठ्यपुस्तक पढ़ाने के दौरान ध्यान नहीं देते उनकी सहभागिता को बढ़ाया जा सकता है।

– सबा ख़ान, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, खुरई, सागर, म.प्र.

अव्वल तो आलेख के शीर्षक ने ही ध्यान खींचा। 'जब बच्चों ने मापी दोस्ती', लगा कि मापन की कोई गतिविधि होगी। जबकि नीतू सिंह का ये आलेख पुस्तकालय की गतिविधियों के इर्द गिर्द कक्षा अनुभवों पर आधारित है। रीड अलाउड गतिविधि के बारे में बहुत ही तार्किक और उपयोगी सामग्री दी गई है। रीड अलाउड के साथ कहानियों पर चर्चा का एक अच्छा सिलसिला दिखा। चर्चा के बाद सामूहिक गतिविधि कराना बच्चों को कहानी के अनुभव के साथ ही एक अगले स्तर पर ले जाता है। आलेख में यह भी समझ आया कि कोई भी कहानी उठाकर सिर्फ़ सुना देना पर्याप्त नहीं है। एक फुल प्रूफ़ योजना व तैयारी के साथ ही सुनाना और चर्चा की जा सकती है। इसके दोनों अच्छे उदाहरण लेखिका ने दिए हैं।

कहानी छोटी हो या बड़ी, किताब रंगीन हो या ब्लैक एंड व्हाइट, बच्चों की रुचि इस बात से बनती है कि आप उनसे बात क्या करते हैं, उनकी बातों को जगह कितनी देते हैं, और निजी जीवन से जुड़ाव के मौक़े कितने बनाते हैं। आलेख से रीड अलाउड गतिविधि के बारे में एक सम्पूर्ण समझ बनी है।

– भरत सिंह, शिक्षक प्रशिक्षक, सीएमएफ़ जयपुर, राजस्थान

‘बच्चे, कहानियाँ और बातचीत’ में लेखिका अलका तिवारी ने कहानियों को बातचीत का माध्यम बनाया, इस प्रक्रिया से भाषाई कौशल का विकास होता नज़र आता है। किताबों के साथ हिन्दी और अँग्रेज़ी के ऑडियो को भी शामिल किया ताकि बच्चों को विविध, रोचक सन्दर्भ मिल सकें। इन सन्दर्भों से बच्चे हँसें, गुदगुदाएँ, एक दूसरे को सुनें और दुनिया की ख़ूबसूरती की झलक देख पाएँ। इस काम को आगे बढ़ाने में बच्चों के साथ शुरुआती बात करना, उनकी सहमति से आगे बढ़ना कि हम रोज़ कोई-न-कोई किताब पढ़ेंगे, अनुभव साझा करेंगे, इससे कक्षा में लोकतांत्रिक मूल्यों की झलक मिलती है।

बच्चों के स्तर के अनुसार उन्होंने कहानियों का चुनाव किया। कहानी पढ़ने के बाद बच्चे अनुभव के साथ जोड़ते हुए उस कहानी के बारे में बात करते हैं। इस विमर्श में बच्चे अपने विचार स्वतंत्र रूप से रखते हैं जो तर्क पूर्ण और अनुभवजनित हैं। इस विमर्श में शिक्षिका मॉडरेटर की भूमिका में होती हैं और अन्त में विमर्श का समेकन भी करती हैं।

लेखिका अपनी बात उन उदाहरणों को शामिल करते हुए रखती हैं जो कक्षा-कक्ष में हुए। यदि बच्चों के सवालों के जवाब उन्हें नहीं पता होते तो वे मालूम करके बताने को कहती हैं, जबकि ज़्यादातर मामलों में देखने को मिलता है कि शिक्षक तुरन्त जवाब देते या डाँट देते हैं।

यह लेख कहानियों पर कार्य करने और उनपर बात करने का दृष्टिकोण देता है।

– सत्यप्रकाश, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, रेहली, सागर, म.प्र.

कमलेश जोशी के लेख ‘किताबों पर बातचीत’ में बातचीत करने के उद्देश्य, ज़रूरी सवाल, कहानी का बच्चों के जीवन व अनुभवों के साथ जुड़ाव बनाकर प्रस्तुत करके एक व्यवस्थित बात शिक्षक तक पहुँच रही है। जिन स्कूलों में पुस्तकालय है, वहाँ के शिक्षकों के लिए तो उपयोगी होंगे ही, जहाँ पुस्तकें नहीं हैं वहाँ के शिक्षकों के लिए भी एक विचार मिल सकेगा कि बाल साहित्य का मतलब क्या है और इसका उपयोग किस तरह से उपयोगी रहेगा?

– राम नरेश गौतम, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, खुरई, सागर, म.प्र

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी की पत्रिका *पाठशाला भीतर और बाहर* ने हिन्दी में गुणवत्तापूर्ण अकादमिक आलेखों की कमी को पूरा किया है। ‘शिक्षणशास्त्र’ और ‘कक्षा अनुभव’ स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाले इसके आलेख नए आइडियाज़ और पठनीयता की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी हैं। राजस्थान स्टेट काउंसिल फॉर एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग (RSCERT) ने स्कूल बन्द होने के दौरान शिक्षकों और बच्चों के लिए *हवामहल* नाम से साप्ताहिक रूप से ई-सामग्री उपलब्ध कराना शुरू की है। सामग्री चयन और उसकी प्रस्तुति में सीएमएफ़ संस्था की भागीदारी है। संस्था के प्रतिनिधि के रूप में हवामहल के लिए मैंने पाठशाला से कई आलेखों का इस्तेमाल किया है। शिक्षकों के लिए ये आलेख बहुत ही उपयोगी हैं। एक अच्छी पत्रिका के प्रकाशन के लिए सम्पादकीय टीम को बधाई।

– दिलीप शर्मा, सीएमएफ़ उदयपुर, राजस्थान

लेखिका संगीता फ़रासी द्वारा प्रस्तुत लेख ‘पढ़ना-लिखना और दीवार पत्रिका’ में सिर्फ़ प्रक्रिया, क्रियान्वयन का नहीं, अपितु इस प्रक्रिया में आई चुनौतियों और प्रक्रिया उपरान्त बच्चों में आए

बदलाव का लेखा-जोखा भी है। लेख प्रारम्भिक कक्षाओं में बच्चों को विद्यालयी प्रक्रिया से जोड़ने और उन्हें विभिन्न गतिविधियों द्वारा पढ़ना-लिखना सीखने के अवसर देने सम्बन्धी बिन्दुओं पर समझ प्रदान करता है। इस दौरान जो गतिविधियाँ की गईं वह दीवार पत्रिका रूपी एक प्रतिफल के रूप में समझी जाएँ। दरअसल हम दीवार पत्रिका को पढ़ने-लिखने से अलग प्रक्रिया के रूप में नहीं देख सकते क्योंकि यह समूची प्रक्रिया से गुज़रकर बच्चों की मुखर प्रतिभा को तराशने, निखारने का माध्यम है।

जब हम दीवार पत्रिका की बात करते हैं तो वह एकाकी प्रक्रिया न होकर विद्यालय की समस्त गतिविधियों एवं प्रक्रियाओं पर निर्भर करती है। यह विद्यालय असेम्बली से शुरू होकर कक्षा-कक्ष, मिड-डे मील, रीडिंग कॉर्नर और प्रस्थान सभा के साथ ख़त्म होती है। इन्हीं मौक़ों को हम सीखने-सिखाने का सक्रिय माध्यम बना सकते हैं। इन प्रक्रियाओं में शामिल होकर बच्चों में धैर्य से सुनने एवं अपनी बात रखने का कौशल विकसित हुआ। दीवार पत्रिका के सामूहिक वाचन द्वारा बच्चे एक दूसरे की ग़लतियों को समझते और सही करवाते हैं। इस तरह बच्चे स्वयं ही एक दूसरे को सीखने-समझने में मदद कर रहे हैं।

– लवकुश, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, रेहली, सागर, म.प्र.

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डेवलपमेंट के लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, E-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039 की ओर से प्रकाशित एवं गणेश ग्राफ़िक्स, 26-बी, देशबंधु परिसर, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1 भोपाल द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : गुरबचन सिंह

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर **पाठशाला भीतर और बाहर** में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं, जिसकी झलक आपको इस नवें अंक में भी दिखाई देगी।

प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार देने और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी उनके द्वारा किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तःक्रिया के नए तौर–तरीक़ों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में, जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने के या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें, आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला, और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि? इसी तरह कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे। गणित का एक उदाहरण, शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उसे सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह के लिए और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

इसी तरह, शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों और उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने में मदद मिले। लेखों की भाषा और विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उसमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि **पाठशाला भीतर और बाहर** का यह नवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ